

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182332

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University

Call No. H 81

Accession No. P 6 H 5757

Author T 83 P

Title

This book should be returned on or before the date
last marked below

पं० रामनरेश त्रिपाठी का काव्य

डॉ० कृष्ण दत्त पालीवाल

हिन्दी-विभाग, हिन्दू-कॉलेज

दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली ।

सन्मार्गप्रकाशन, दिल्ली-७

© डॉ० कृष्णदत्त पालीवाल

प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, ब्रेगुलो रोड, दिल्ली-७

मूल्य : ~~सोने के समान~~

प्रथम संस्करण : १

मुद्रक : ~~प्रिन्टिंग~~ नवीन शाहदरा ~~दिल्ली~~-३२

गुरु-उवाच

कृष्ण दत्त जी पालीवाल, छात्ररूप में, इधर दो वर्षों में मेरे सम्पर्क में थे। इन्होंने स्व० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य का, मेरे निरीक्षण में विशेष अध्ययन किया है तथा अपने अध्ययन के फल को एक निबन्ध रूप में एम० ए० की परीक्षा के लिए प्रस्तुत किया था। ये अध्यवसायी और अध्ययनशील है। हिन्दी के प्राचीन तथा आधुनिक साहित्य का इन्होंने मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया है। उनमें मैंने साहित्य के मर्म तक पहुँचने की प्रतिभा तथा मौलिक चिन्तन का सुयोग पाया है। इनकी लेखनी स्वच्छ तथा दृष्टि पैनी है और विषय की गहराई में जाकर ठोस निष्कर्ष निकालने का इनका अभ्यास अच्छा है। इन्हे प्रकृति से अभिव्यक्ति तथा वाग्मिता सहज रूप में प्राप्त है तथा इन दोनों को सतत् प्रयोग में लाकर इन्होंने अपने को एक सिद्ध वक्ता बना लिया है। स्व० राम नरेश त्रिपाठी के काव्य पर विचार करते हुए इन्होंने उनकी सर्जन-प्रक्रिया तथा अभिव्यञ्जनाशिल्प पर भी मन्तोपजनक कार्य किया है। द्विवेदी युग के इस महत्त्वपूर्ण कवि पर अभी तक कोई विस्तृत तथा गहन आलोचना का अभाव ही था। इन्होंने अपने इस तरुण-प्रयास में उसी अभाव को पूरा करने का कार्य किया है। वे अभी हिन्दी-समालोचना के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। अतः इस तरुण और प्रबुद्ध आलोचक का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ।

शुभाकाक्षी—
कृष्ण शंकर शुक्ल

समर्पण

पूजनीय कवका

एवं

ममतामयी काकी

के

श्रीचरणों में

सादर

अनुक्रम

अपनी ओर से	३
राष्ट्रीय उत्थान का परिवेश	१७
जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व	४३
काव्य कृतियों का आलोचनात्मक	७०
अध्ययन मिलन, पथिक स्वप्न, मानसी	
राष्ट्रीयता	१०६
गान्धीवाद का प्रभाव	११८
उदात्त-प्रेम	१२६
भावाभिव्यञ्जना	१३४
प्रकृति-चित्रण	१४०
अभिव्यञ्जना-शिल्प	१५७
छन्द-विघ्नान	१८०
द्विवेदी-युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ एवं	१८७
त्रिपाठी जी का काव्य	
उपसंहार	२०५
सहायक-ग्रन्थों की सूची	२१०

अपनी ओर से

रामनरेश त्रिपाठी मानवतावादी कवि है। उनका व्यक्तित्व करुणा से बना है तथा उनके विचारों पर गांधीवाद की गहरी छाप है। गांधीवाद यदि सफल जीवन की कुंजी है तो उनका काव्य उसकी समर्थ काव्यमय व्याख्या। काव्य में उत्पन्न सभी समस्याओं को उन्होंने गांधीवाद में समाधान दिया है। चाहे वे अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ हो, चाहे राष्ट्रीय हो, राजनैतिक हों या आर्थिक। यद्यपि विचार तो अपौरुषेय होता है वह न गांधी का है, न मार्क्स का—वह तो समस्त मानवता का दर्शन है। त्रिपाठी जी गांधीवादी विचारों में अपने को अर्पित करने हुए भी उसे कोई 'वादी' रूप कभी भी प्रदान नहीं करते हैं। उनके काव्य के प्रत्येक बोल से ध्वनित यही होता है कि मानव-जीवन में राजनैतिक या आर्थिक समस्या की उलझनपूर्ण स्थिति का मूल वैचारिक समस्या में ही निहित है। उनमें हुए विचार मुलमें हुए विचारों से ही सुलझाये जा सकते हैं।

उनका काव्य अन्याय, अपमान के प्रति विद्रोह की आवाज बुलन्द करता है। देश की दुर्गतिपूर्ण स्थिति को 'पथिक' में देखकर कवि क्षुब्ध है तथा उसकी व्यथा शत-शत धाराओं में आत्मा के बांध को तोड़कर व्यक्त हुई है। द्विवेदी-युग में उत्पन्न विषम परिस्थितियों का इस काव्य में सम्पूर्ण लेखा-जोखा है। यही कारण है कि उनका काव्य आज भी तत्कालीन इतिहास का सम्पूर्ण बोध पाठक तक पहुँचाने में सक्षम है। अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने की, जनमत को तैयार करने की, उनके काव्य में अथाह शक्ति है। अतः यह काव्य स्वैय विचारों से युक्त न होकर पौरुष का काव्य है।

त्रिपाठी जी पौरुष के कवि हैं तथा 'एक भारतीय आत्मा' के काव्य की तरह वे युग के विषपायी बनने को तैयार रहते हैं। जीवन का विष उनके काव्य में अमृत बन गया है। उन्होंने अन्याय और युद्ध की समस्या का हल सत्याग्रह तथा शान्ति में पाया है। लेकिन प्रत्येक स्थिति में उन्हें शान्ति काम्य नहीं है। कायरता को बढ़ावा देनेवाली शान्ति से तो युद्ध ही बेहतर है। अपने विचारों में वे व्यक्ति स्वातन्त्र्यवादी हैं। 'स्वतन्त्रता व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है।' इस नारे को उन्होंने आत्मा से

प्यार किया है। उनकी सर्जना में भी इस वाक्य की अनुगूँज विद्यमान है। सांस्कृतिक अनुभवों तथा क्रियाओं का भावात्मक दृष्टिकोण से प्रतिफलन उनके सर्जन में लगातार उद्देश्य के रूप में व्यक्त हुआ है। हमारे देश की भूमि तथा प्रकृति ने सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के विकास में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। प्रकृति के प्रति त्रिपाठीजी का सस्कार-गत मोह है। मनमोहिनी प्रकृति में बसा हिमालय वाला देश उनके काव्य में अबाध आत्मीयता के साथ व्यक्त हुआ है। 'पथिक' में रंग-बिरंगी प्रकृति के मधुर से मधुर चित्रों की भरमार है, जिनमें जीवन का रस झलका पड़ रहा है। द्विवेदी-युग के समस्त कवियों से उनका प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण नया तथा अलग है। द्विवेदी-युग के कवि हरिऔध, गुप्त जी, नवीन जी तथा एक भारतीय-आत्मा में जहाँ प्रकृति के प्रति आकर्षण है तथा उनके काव्य में प्रकृति साधन रूप में अवतरित हुई है। इसके विपरीत त्रिपाठी जी के काव्य में प्रकृति सहचरी, देवी तथा कल्याणी है। वह साध्य तथा साधना दोनों ही है। उनके प्रकृति-वर्णन पर स्वच्छन्दता-वादी कवियों की दृष्टि का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। छायावादी-युग में प्रकृति के प्रति जैसा मानवी सम्बन्ध व्यक्त हुआ है, ठीक वैसा ही सम्बन्ध 'मिलन' तथा 'स्वप्न' में सहज ही प्राप्त है। भारत का प्राकृतिकवैभव — वन, उपवन, लता गुल्म, वनस्पति-वृक्ष, उर्वर पहाड़ी क्षेत्र, प्राकृतिक शोभा का स्वर्ण काश्मीर या मध्यप्रदेश का पर्वतीय सौंदर्य — उनके में काव्य एक विस्तृत भूमिका अदा करता है। यहाँ के जीवन में ही मानव तथा प्रकृति के बीच आन्तरिक एकता का सूत्र अनुस्यूत रहा है। प्राकृतिक परिवेश की विभिन्नता तथा विविधता में निहित अखण्ड सांस्कृतिक एकता ही इस उद्भावना के मूल में है। आरम्भ से ही आर्य-संस्कृति, प्रकृति के प्रति नत होकर वन्दना करती आई है। वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक रागात्मकता को काव्यमय पाया तथा उसकी मुक्त मन से अर्चना की है। नीलाकाश, तारकदल, बादल, बिजली, इन्द्रधनुष, स्मितवदना, ऊषा, सूर्य-चन्द्र का प्रकाश क्रम, वनस्पति-जगत् का सौंदर्य सबमें अखण्ड सौंदर्य की सत्ता का सकेत मिला है। त्रिपाठी जी ने इसी कारण 'प्रकृति सदा सुन्दरी' कहकर अपने काव्यों में उसका अनवरत स्तवन किया है।

काव्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना का जयनाद करना भी हमारी एक सांस्कृतिक घरोहर है। पूर्वजों की घरोहर को जीवन्त तथा क्रियाशील रखना हमारा कर्तव्य है। सघर्ष, तनाव, घुटन, अनास्था, बैर, द्वेष तथा घृणा की परिस्थिति विश्वात्मा में हमारी ही कमजोरी का चिह्न है। अपने 'अहं' का उदात्तीकरण करते हुए विश्वात्मा में अपनी आत्मा को मिला देना ही सच्चा आत्म-उन्नयन है। क्षुद्रताओं से मुक्ति का तात्पर्य है—व्यक्तित्व-विस्तार तथा व्यापक फलक पर विकास का शिव-द्वार। व्यक्ति का अहं जब अखिल मानव-मात्र के अहं से अपना तादात्म्य तथा समात्म्य-भाव स्थापित कर लेता है तभी आत्मा का तेज जगता, निखरता है। त्रिपाठी

जी ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को एक नारे के रूप में नहीं अपनाया,^१ उसे प्रयोग का आधार दिया है। उनके खण्ड-काव्यों के सभी नायक इसी विश्वजनीन भावना के प्रतीक हैं। उनके मत से आत्मा ही परमात्मा या परमशिव है। आत्मा के प्रति प्रेम मानव-मात्र के प्रति प्रेम है। यह प्रेम आनन्दमय है, जिमकी लीला ही मोक्ष का द्वार है। त्रिपाठी जी 'प्रेम' को 'स्वर्ण' का नाम देते हैं। उन्होंने प्रेम के माध्यम से अपने आध्यात्मिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है।

उनके काव्य में स्वजाति-गौरव, आत्म-सम्मान, देश-प्रेम के साथ जीवन के शाश्वत-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास मिलता है। उन्होंने पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों के प्रति अपना सम्मान न दिखाकर काल्पनिक कथानकों की सृष्टि की है। यहाँ उनकी उर्वरक सर्जनात्मक कल्पना को खुला आकाश मिला है। उनके कल्पित प्रबन्ध अतीतोन्मुखी कम भविष्योन्मुखी अधिक हैं। उन्होंने वर्तमान के सघर्ष को वाणी दी है। यह सघर्ष सम्पूर्ण देश के तेज को व्यक्त करता है। पराधीन देश के उस तेज को उजागर करता है, जो आज हमारा गौरव है। यह तेज प्रत्येक जाति का गौरव है, इसी तेज से पौरुष की धार प्रखर तथा बलवान होती है। उनके सभी काव्य इसी तेज के कारण प्रेम-काव्य होते हुए भी राष्ट्रीय-काव्य हैं। स्वच्छन्द-कथा में लेखक जी खोलकर दीन-दुखियों की व्यथा को वाणी देता है। विश्वव्यथा में अपने व्यक्ति की व्यथा को मिला देना ही इस कवि का मोक्ष है।

रामनरेश त्रिपाठी का काव्यफलक उस अर्थ में व्यापक नहीं कहा जा सकता है, जिस अर्थ में हम उसी युग के महान् कवि गुप्त जी के काव्य को कहते हैं। गुप्त जी अतीतोन्मुखी हैं। वे अतीत के द्वारा वर्तमान को प्रेरणा देनेवाले कवि हैं तथा रामायण एवं महाभारत से उनका रागात्मक सम्बन्ध है। रामायण तथा महाभारत के भीतर से वे ऐसे पात्र तथा घटनाएँ निकाल ही लेते हैं, जिन्हें वर्तमान के अनुकूल प्रस्तुत किया जा सके। उन्होंने बौद्ध-काल तथा राजपूत-काल से अनेक कथानकों का चयन किया है। 'यशोधरा' तथा 'सिद्धराज' उनकी इसी दृष्टि का परिणाम हैं। अतीतोन्मुखी गुप्त जी पर वैष्णव-विचारों की छाप के साथ गाँधीवाद का प्रभाव भी गहरा है। जीवन का सर्वांगीण चित्रण उन्होंने राष्ट्रीय तथा सांस्कृतिक सन्दर्भ में किया है। उनके अनुज सियाराम शरण गुप्त में गुप्त जी कितनी प्रखरता तथा राष्ट्रीयता का अभाव मिलता है। सियारामशरण गुप्त तो करुण विचारों की पीठिका पर अपने को समर्पण के साथ रखने में समर्थ कवि हैं। वे किसी का दुःख नहीं भेल सकते तथा युद्ध की विभीषिका को मोचकर काँप जाते हैं। वे भी गाँधीवाद के समर्थक कवि हैं, परन्तु उनका गाँधीवाद त्रिपाठी जी तथा मैथिली शरण गुप्त जी की तुलना में सात्त्विक अधिक है। त्रिपाठीजी तथा गुप्त जी दोनों ने ही गाँधीवाद की विविध शक्तियाँ अपने काव्य में प्रस्तुत की हैं। राष्ट्रीय-चेतना के कारण ही उनमें विदेशी अत्याचार

के प्रति घृणा, आक्रोश, शोक, जनता के प्रति करुणा, अंग्रेजी की सम्पूर्ण व्यवस्था से विरोध, राष्ट्रीय आन्दोलनो का प्रभाव, साम्प्रदायिकता तथा जातिवाद का विरोध, भूखमरी के कारण त्रास, नारी की शक्ति रूप में पूजा आदि का आग्रह है। इस प्रकार का आग्रह गुप्त जी में भी है, लेकिन उनके काव्य में जीवन का बहुमुखी चित्रण है जो त्रिपाठी जी के काव्य में कम मात्रा में प्राप्त है।

सर्वोदय जिम क्रान्ति का पक्षधर है, वह क्रान्ति-दर्शन त्रिपाठी जी के काव्य का मूलधार है। सर्वोदय में मानवीय-मूल्यों को बहुत महत्त्व मिला है—वे कार्य सत्य और अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह, सर्व-धर्म समन्वय, मानव के श्रम की महत्त्व-प्रतिष्ठा, स्वदेशी व्रत का आग्रह, नारी-जागरण का स्वर आदि में स्वतः स्फूर्त होते हैं। गान्धी जी ने वैयक्तिक तथा सार्वजनिक जीवन की साधनाओं को सामाजिक मूल्यों का रूप दिया है। हृदय-परिवर्तन के द्वारा मानव को बर्बरता से दूर सात्त्विकता के लोक में लाया जा सकता है। इस दृष्टि को प्रधान मानकर ही त्रिपाठी जी ने सर्वोदय की मानवता को कर्तव्य के धरातल पर प्रचार-प्रसार दिया है। त्रिपाठीजी क्रान्ति चाहते हैं, लेकिन कृत्रिम क्रान्ति नहीं, जो लादी जाए। एक ऐसी क्रांति जो सर्वोदय तथा साम्यवाद पर आधारित हो। पूँजीपतियों तथा विदेशियों ने हमारा रक्त चूस लिया है, लेकिन मानवता का उद्धार कैसे हो ? क्रांति के लिए सामूहिक मानव-समुदाय को तैयार कैसे किया जाए ? जहाँ कहीं भी जन-शक्ति के प्रयोग की बात आती है वही मार्क्स का सन्देश गूँजने लगता है। मार्क्स ने शिक्षा दी है कि क्रान्ति के लिए गरीबों तथा मजदूरों में एक निश्चित मनोबल पैदा किया जाए तथा सगठित-शक्ति से पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध हो। हृदय-परिवर्तन तथा मत-परिवर्तन के द्वारा क्रान्ति में सफलता आती है। पुरुषार्थ की प्रेरणात्मक परिणति जागृति में होती है। साथ ही साथ उसमें वह नव प्रेरणा भी जागृति होती है, जो निर्माण तथा सृजन के लिये अपेक्षित होती है। क्रान्ति चाहे हिंसक हो या अहिंसक, उसमें विवशता तथा कायरता के लिए कोई स्थान नहीं है। मार्क्स तथा गाँधी दोनों ही कमजोर क्रान्ति के हामी नहीं हैं। जन-क्रान्ति तथा जन-शक्ति के परिवर्तन में उनकी अडिग आस्था है। बौद्धिक, वैचारिक, सामाजिक, वैयक्तिक तथा भावनात्मक भय को वहाँ कोई स्थान नहीं है। गाँधी जी ने डढ़-सकलपशक्ति को अहिंसा में प्रधान माना है। निर्भयता ही मुक्ति है, भय ही परतन्त्रता है। जिनके पास हथियार हैं, उनसे डरो नहीं, समर्पण मत करो, उनकी कुटिलता का उन्मुक्त मन से विरोध करना ही सच्ची विजय का संकेत है। 'पथिक' का नायक गाँधीवाद के इन्हीं विचारों का काव्यमय अनुवाद करता रहा है। गाँव-गाँव, नगर-नगर, गली-गली घूमकर उसने इसी अहिंसक क्रान्ति का नारा दिया है। उसने गरीब तथा असहाय जनता की दुर्दशा देखकर अपनी आँखें गीली अवश्य की हैं, लेकिन उनके मनोबल तथा तनोबल को

जाग्रत् करने का भरसक प्रयास किया है। वह दुःखदायी विदेशी-शासन से जनता को अपनी शक्ति हटा लेने का सन्देश देता है। पूँजीपति तथा शासक दोनों के स्वामित्व को समाप्त करना चाहता है। मार्क्स के शब्दों में वह कहता है कि राज्य उन लोगों का उपकरण हो जाता है, जिनके पास स्वामित्व है। मालिक तथा सत्ताधारी दोनों परस्पर पोषक तथा सहयोगी बनकर मिल जाते हैं। इस व्यवस्था को भग करने के लिए जन-मत तैयार किया जाए तथा सत्ता निरपेक्ष होकर उनका विरोध किया जाए। त्रिपाठी जी अपने इसी सन्देश को घर-घर पहुँचाने के लिए अपने काव्यों में अधीर दिखाई देते हैं। इसीलिए मैंने आरम्भ में कहा है कि वे सच्चे अर्थों में मानवतावाद के पोषक कवि हैं।

त्रिपाठी जी का जीवन-दर्शन किसी सकुचित मतवाद पर आधारित नहीं है और न ही वे कभी किसी अन्य के प्रचारक भोपू बने हैं। उनके जीवन का प्लेटफ़ार्म सभी के लिये खुला है। वे अपने चिन्तन में प्रगति-पन्थी तथा विकासशील हैं। रूढ़ियों से लिपटकर जीना उन्हें कभी प्रिय नहीं रहा, वे सायर, सिंह तथा सपूत की भाँति सदैव अपना मार्ग अपने-आप बनाते रहे। भ्रमणशीलता उनकी प्रवृत्ति थी—घाट-घाट का पानी पीने के कारण उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि में अनुभवों का एक बड़ा कोश तैयार हो गया था। अपने स्वतन्त्र विचारों में किसी का भी हस्तक्षेप उन्हें प्रिय नहीं रहा। यही कारण है कि उन्हें अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण माता-पिता, परिवार-सम्बन्धी तथा मित्रों का भी विरोध सहना पड़ा। लेकिन विरोध सहकर भी वे अपने पथ से डिगे नहीं। किसी भी विपत्ति के सामने घुटने टेककर रिरि-याना उन्होंने सीखा ही नहीं था। सिंह-सी निर्भयता उन्हें आर्यों से सस्कार-रूप में मिली थी। इसीलिए आजीवन सबका विरोध सहकर भी वे हताश नहीं हुए। उनके जीवन-दर्शन में निराशा तथा भय को कोई स्थान नहीं है। वैष्णव-सस्कारों का प्रभाव उन पर गहरा था तथा रामायण और गीता के प्रति उनके प्राणों में अतिरिक्त मोह था। आजीवन वे रामायण का पाठ करते रहे तथा मानस की मनोहारी टीका करने के उपरान्त ही उन्हें चैन मिला। लेकिन वे कट्टर वैष्णव-पथी नहीं थे अर्थात् साम्प्रदायिकता से दूर वे इस धर्म को मान्य-धर्म के अर्थ में ग्रहण करते रहे। माता-पिता से उनका विरोध भी शायद इसी कारण से गहरा रहा है कि वे मानवता के धरातल पर सकीर्णतावाद के कायल नहीं थे। देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन में अपना कन्धा लगा देना उन्हें अनिवार्य प्रतीत हुआ तथा तन-मन-घन से वे उसमें लग गये। जेल की महामना मालवीय जी के साथ रोटियाँ खाईं लेकिन स्वतन्त्रता-संग्राम में जूझने के प्रण से कभी विचलित नहीं हुए। युग-धर्म तथा अपने व्यक्ति की चेतना से जिस जीवन-दर्शन का निर्माण हुआ वह 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के ऊपर अधिक आधृत है। प्राचीन ऋषियों की भाँति वे अखिल मानव-मात्र के कल्याण की कामना करते

रहे तथा जन-सेवा के द्वारा अपने जीवन को धन्य बनाते रहे हैं ।

त्रिपाठी जी द्विवेदी-युग तथा छायावादी-युग दोनों के संगम पर स्थित है । द्विवेदी-युगीन उपदेशात्मक, इतिवृत्तात्मक, सुधारात्मक प्रवृत्ति के साथ उनमें आरम्भिक छायावादी-काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति भी है । इन दोनों काव्य-प्रवृत्तियों के प्रभाव के कारण उनकी काव्य-चेतना दोनों युगों के परिवेश से आक्रान्त है । युगीन आन्दोलनों के प्रभाव से सुधारवादी प्रवृत्ति उनके काव्य 'पथिक' तथा 'मिलन' में अधिक है । इन दोनों काव्यों को द्विवेदी-युगीन उपदेश-काव्य भी वह सकते हैं । 'स्वप्न' तथा 'मानसी' में रोमानी दृष्टि का प्राधान्य है । कवि यहाँ स्वच्छन्द प्रेम-लोक में विचरण करता है । उसकी कला पर यहाँ छायावादकी शैली का पूरा प्रभाव भी झलकता है । छायावाद के आरम्भिक काल में सौन्दर्य, प्रकृति तथा मानव तीनों के प्रति इस काल के कवियों में प्रबल आकर्षण था । रामनरेश त्रिपाठी का प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग है । यह अनुराग ही उन्हें प्रकृति का कवि भी बना देता है । द्विवेदी-युग का कोई भी कवि चाहे गुप्त जी हो या हरिऔध, नाथूराम शर्मा शंकर हो या नवीन, एक भारतीय आत्मा हों या त्रिशूल, प्रकृति-वर्णन में उनकी समता नहीं कर सकता है । उन्होंने काश्मीर की घाटियों के सौन्दर्य को छककर पिया है तथा मुक्तमन से उसी सौन्दर्य की अभिव्यक्ति भी अपने काव्य में की है । लेकिन प्रकृति-चित्रण में वे छायावादी कवियों से टक्कर लेने लायक नहीं हैं । सुमित्रानन्दन पन्त जी के प्रकृति-चित्रण के समक्ष उनका प्रकृति-चित्रण फीका है तथा प्रसाद जी की रूप-सौंदर्य उपासक दृष्टि के समक्ष भी वे टिक नहीं पाते हैं । महादेवी में कण-कण के प्रति अनुराग है, उपासना, अर्चना है । इस प्रकार के दुर्लभ चित्र भी त्रिपाठीजी के काव्य में एकदम नहीं है । वास्तव में त्रिपाठी जी को प्रथम कोटि के कवियों में स्थान नहीं दिया जा सकता है, वे द्वितीय श्रेणी में आते हैं । उनमें स्पष्टता, स्वच्छता के साथ जन-प्रिय होने की क्षमता ही है । रूप या सौंदर्य की वैसी पकड़ का उनमें सर्वथा अभाव मिलेगा जैसा कि छायावादी कवियों में सहज ही उपलब्ध है । त्रिपाठी जी तो सतही या बाह्य धरातल पर प्रकृति-सौंदर्य के उद्घाटक कवि हैं ; उसकी अन्तरात्मा में प्रवेश करने की शक्ति उनमें नहीं है । पन्त जी में योगी की 'परकाय प्रवेश क्षमता' विद्यमान है । वे मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म तथा अन्तर्निहित सकेतों को बड़ी बारीकी से स्पर्श करने में समर्थ कवि हैं । कथा को गढ़ने की भी उनमें वैसी शक्ति नहीं है जैसी दोनों गुप्त-बन्धुओं में है या प्रसाद जी में है । सियाराम शरण गुप्त त्रिपाठी जी की भाँति ही काल्पनिक कथा का निर्माण करते हैं, लेकिन उनकी कथा का सूत्र प्रायः विरल, सांकेतिक तथा प्रतीकात्मक होता है । लेकिन उन्हें पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रसंगों को कथा के चयन में समावेश करने में भी कोई आपत्ति नहीं है । वे 'उन्मुक्त' जैसा प्रतीकात्मक तथा काल्पनिक काव्य भी लिख सकते हैं तथा 'गोपिका' जैसा पौराणिक वृत्त भी अपना सकते हैं ।

काल्पनिक या पौराणिक कोई भी वृत्त अपनाने में उन्हें कोई बाधा नहीं है और न ही उनका काव्यत्व ही शिथिल पड़ता है। इसके विपरीत त्रिपाठीजी केवल काल्पनिक कथानकों पर अपने हाथ अजमाते रहे हैं तथा यह कथानक भी समसामयिक युग-बोध के लिए ही उपजे हैं। वे कभी भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रसंगों के पास फटके तक नहीं हैं। इन काल्पनिक प्रसंगों में भी उन्हें वैसी सफलता नहीं मिल सकी है जैसी सियाराम शरण गुप्त को मिली है। वे तो जान-बूझकर, सकल्प-शक्ति के साथ इन काल्पनिक काव्यों के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना उद्बुद्ध करना चाहते हैं। एव सबको गांधीवाद के रंग में रंग डालना चाहते हैं। निराला का विरट् काव्यलोक उनमें कहाँ, न वैसी भाषा न शक्ति, न विद्रोह न उदात्तता उनमें तो कथाकार के गुण अधिक हैं, काव्यकार के नहीं। निराला जी सच्चे अर्थों में काव्यकार है, कलाकार है। उनकी टक्कर का कोई कवि आधुनिक-काल में ही नहीं है तब बेचारे त्रिपाठी जी से उनकी तुलना करना हास्यास्पद ही होगा। छायावाद के सभी कवियों की दर्शन में गहरी पैठ है या यों कह सकते हैं कि दर्शन ने उनके काव्यों में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है प्रसाद तथा महादेवी का दार्शनिक आधार तो अपनी तुलना में दूसरा उदाहरण ही नहीं रखता, लेकिन पन्त जी तथा निराला जी की दार्शनिक दृष्टि भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वैसे द्विवेदी-युग के सभी काव्यों में दार्शनिक गम्भीरता का अभाव है। अधिकतर कवि युग-चारण हैं, जिनमें भावमयता तथा भावुकता ही अधिक है, ठोस चिन्तन कम। त्रिपाठी जी की वृत्ति जोशीले भाषण देने तथा क्रान्ति की प्रेरणा देने में ही अधिक रमी है। यही कारण है कि उनमें उदात्त-भाव तो है, पर चिन्तन की गहन गम्भीरता नहीं है। नारी-विषयक उनका दृष्टिकोण जागरणवादी तो है लेकिन मौलिक नहीं। 'सुमना' से नारी होते हुए पुरुष-वेश में युद्ध कराना काव्य में तो ठीक लगता है, लेकिन व्यावहारिक घरातल पर इसकी असफलता आज स्पष्ट है। उन्होंने गांधी जी के विचारों की नारी को ही काव्यरूप दिया है। गांधी जी का विश्वास था कि नारी केवल वासना-पूर्ति का साधन ही नहीं है, वह दिव्य है। गांधी जी की यह दृष्टि भी आर्य-संस्कृति की दृष्टि ही है, जिसमें नारी की पूजा को देवता के विकास का हेतु कहा गया है। द्विवेदी-युग में नारी-जागरण का आन्दोलन अपने यौवन पर था। अनेक सुधारक युग-युग से अपमानित नारी को सम्मानित पद देना चाहते थे, उसके त्याग का कर्ज गुणगन करते हुए अदा करना चाहते थे। ऐसे कवियों में मैथिली शरण गुप्त का नाम प्रथम आता है, जिन्होंने उपेक्षिताओं के उद्धार का बीड़ा उठाया तथा अपने प्रण को पूरा कर दिखाया। उर्मिला तथा यशो-धरा को नया व्यक्तित्व दिया तथा उनके त्याग को अमर कर दिया। त्रिपाठी जी ने गुप्त जी की भाँति किसी उपेक्षिता का उद्धार तो अपने काव्य में नहीं किया, लेकिन उन्होंने नारी को नया भविष्य अवश्य देना चाहा है। अपने पति की कायरता को दूर

करने के लिये नारी कैसे विद्रोह कर सकती है, इस भूमिका को उन्होंने तैयार किया है। उनके मन से नारी की शोभा मात्र कामिनी बनने में ही नहीं है, मानवी तथा क्षत्राणी बनने में है। अपने तेज को समेट कर जीने में नहीं है, अपने तेज को छिटकाकर जीने में है। उनकी नारियाँ ललकार के साथ विद्वेष का ज्वर नहीं बोती है, अपने 'वसन्त' ऐसे कामी पतियों का—जिन्हें युवती का वक्ष-स्थल ही स्वर्ग लगता है—उद्धार करना चाहती है। वे कलकिनी बनकर नहीं, वरदायिनी बनकर जीने के लिये उत्पन्न हुई है। त्रिपाठी जी ने प्रकृति तथा नारी के प्रति अपने दृष्टिकोण को पवित्र मन से व्यक्त किया है। अपने युग-धर्म का सचेष्टता से निर्बाह करने के कारण उनके काव्य का ऐतिहासिक महत्व इस स्वातन्त्र्यकाल में भी कम नहीं हुआ है।

साहित्य के क्षेत्र में त्रिपाठी जी की सफलता कथाकार प्रबन्ध-कवि के रूप में है। प्रबन्धकार के रूप में वे कथा-निर्वाह सफलता से करते हैं तथा काल्पनिक वृत्त में बहुत दूर की कौड़ी लाने का प्रयास उनमें नहीं है। मैथिली शरणगुप्त जी की भाँति वे घटनात्मक रूप ही अपनाकर चले हैं। सूक्ष्म तथा विरल कथानक में सिंभाराम शरण की भाँति कभी भी हाथ नहीं लगाते हैं। वे तो युग की आवश्यकता तथा युग-धर्म पर ध्यान देकर उसी के अनुकूल कथा का ढाँचा बनाते हैं। यहाँ उनकी कल्पना सचेष्ट होकर मार्मिक तथा हृदय-स्पर्शी स्थलों की नियोजना करती है। इस काल्पनिक कथा का फलक भी इतना व्यापक नहीं होता कि वे उसे सम्झाल न सके या कथा-सूत्र उनके हाथ से खिसक पड़े। उस क्षेत्र में वे सावधान तथा संयत कथा-शिल्पी हैं। तीरस घटना को सरस-प्रवाह देने में वे माहिर हैं तथा कथा व्यर्थ के भँवरजालों से मुक्त होकर तीर की तरह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ती है। कथा की गति में प्रवाह तथा प्रभाव बना रहे, एकरसता का परिहार भी होता चले, इस तथ्य से पूर्णभिज्ञ होने के कारण वे उसमें नाटकीय रजकता, उत्पाद्य कल्पना के लावण्य में रुझान तथा भावों की विविधता को स्थान देते हैं। उन्होंने अपने कृती जीवन में केवल तीन कथा-प्रबन्ध लिखे और तीनों ही अमर हो गये। तीनों ही खण्ड-काव्यों का प्रतिपाद्य गाँधी-वादी-दर्शन है, लेकिन घटनाओं की लीपा-पोती कही नहीं है। गुप्तजी की 'पंचवटी', 'हायर', 'सिद्धाराज' तथा 'नहुष' को आधुनिक अमर खण्ड-काव्यों में स्थान मिलेगा, तो त्रिपाठी जी के खण्ड-काव्य भी उनसे पीछे नहीं रहेंगे। गुप्त जी तो तुलसीदास की भाँति प्रबन्ध क्षेत्र में मूर्धन्य हैं लेकिन गुप्त जी की प्रबन्ध-परम्परा में त्रिपाठी जी के प्रबन्ध भी विस्मृत नहीं होंगे। क्योंकि उनमें विदग्ध कथाकार की शक्ति खुलकर प्रकट हुई है। काव्य-रूपों की दृष्टि से उन्होंने एक विद्या को ही अपनाया है। गुप्त जी की भाँति प्रबन्धों के क्षेत्रों में विविधता को वे नहीं अपना सके। 'यशोधरा' ऐसे प्रबन्ध-नाट्य तथा 'साकेत' ऐसे महाकाव्य को लिखने की शक्ति का उनमें अभाव है। 'मानसी' के मुक्त गीतों में उनका आत्म-उच्छलन नवीन तथा प्राचीन छन्दों में अपने को व्यक्त

करता है। अपने प्रगीत मुक्तको मे वे व्यंग्य-प्रधान है, लेकिन प्रगीत-कला का उज्ज्वल-रूप उनमे विकसित नहीं हो सका। गुप्त जी तुकबन्दीकार प्रबन्धकवि होते हुए भी 'साकेत' तथा 'यशोधरा' के प्रगीतो मे बड़ी सफलता प्राप्त करते है। इन प्रगीतो मे वे सभी तत्त्व उपलब्ध है, जो प्रगीत-कला के सामान्य सफल कवि मे खोजे जाते है। किन्तु प्रसाद के प्रगीतो की भाँति उनके गीत शुद्ध कला-गीत भी नहीं है, उनमे कथाश मिला होता है, जिसकी किरकिरी आवाज आती ही है। त्रिपाठी जी भी रसात्मक स्थलो की भावपूर्ण सृष्टि तो कर सकते है, लेकिन प्रगीत के लिए जिस भाव तथा उष्मा का होना अपेक्षित है उसका उनमे अभाव ही कहा जायेगा।

उनकी रसात्मक-दृष्टि स्थायीरूप से राष्ट्रीय-रस का सञ्चरण करती है। काका साहब कालेलकर ने इस युग मे राष्ट्रीय-भावना की प्रबलता तथा व्याप्ति को देखकर भरत, अभिनव तथा आचार्य शुक्ल जी की परम्परा मे इस नवीन रस की उद्भावना भी मानी है। आज जब प्रत्येक मानव राष्ट्र और धर्म के रक्षण की बात करता है तो राष्ट्रीय-रस की सत्ता न मानना वेङ्गमाफी है। इस राष्ट्रीय-रस का स्थायी भाव भी वीर-रस की भाँति देश-भक्ति से उत्पन्न अदम्य उत्साह है। इस प्रकार के उत्साही वीर या राष्ट्र-भक्तों की कभी भी इस देश के इतिहास मे कमी नहीं पड़ी है। आधुनिककाल मे तो राष्ट्र और राष्ट्रीयता एक विशिष्ट अर्थ तथा सन्दर्भ को प्राप्त कर गये है। इस युग मे राष्ट्रवाद की भावना को छोड़कर जी सकना सम्भव ही नहीं रहा। अनेक वर्गों तथा समूहों मे विभक्त मानव ने आज इसी वट-वृक्ष के नीचे शरण पाई है। इसलिए राष्ट्रीय-चेतना का भाव आज जन-जन के सस्कारों मे बस गया है। प्रत्येक सवासन व्यक्ति इस भाव से प्रायः तादात्म्यीकृत होकर जीता है एवं साहस की आनन्दपूर्ण उमग के साथ इसी मे निमग्न हो जाता है। इस दृष्टि से त्रिपाठी जी तो पूर्णरूप से राष्ट्रीय-काव्य के मृष्टा है तथा उनकी मूलभूत चेतना राष्ट्र-हित की कामना से एक क्षण को दूर नहीं हो पाती है। उनके काव्यों मे व्याप्ति के आधार पर अगिरस राष्ट्रीय-रस ही ठहराया जा सकता है, जिसका पोषण कर्षण, वीर, शृंगार, रौद्र तथा अद्भुत-रस ने किया है। उनकी रस-वृत्तना को प्राचीन शास्त्रीयता से परखना समीचीन नहीं होगा। उसे तो युग-बोध के अनुसार ही नवीन दृष्टि-बोध से समझना-समझना चाहिए। क्योंकि उन्होंने अपने युग-बोध को समसामयिकता के आधार पर व्यक्त करने का प्रयास किया है। राष्ट्रीय भावों का आवेग उनके काव्यों मे इतना अधिक है कि युग-मानव की सम्पूर्ण धडकन को हम कान लगाकर उनमे सुन सकते है।

खड़ीबोली के निर्मात्ताओं, सस्कारकों तथा उद्धारकों मे श्री रामनरेश त्रिपाठी का नाम मदैव बहुत गौरव से स्मरण किया जायेगा। भारतेन्दु-युग आधुनिक साहित्य का जागरण-काल है। इस युग ने जीवन के अनेक क्षेत्रों मे नवीन क्रान्ति की है।

अंगरेजित की जमती हुई नीव तथा विरोध करता हुआ समाज का कवि, नवीन आधुनिक-चेतना को लेकर आता है। रीतिकालीन मोह पूरी तरह से भंग नहीं हुआ, लेकिन उसका बिस्तर अवश्य बँध गया था। भारतेन्दु-युग से आरम्भ हुई अनेक नवीन विधाओं ने द्विवेदी-युग में अपना विकास किया। ब्रजभाषा के स्थान पर महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से खड़ीबोली काव्य-भाषा बन गई। इस काव्य-भाषा के उद्धार में द्विवेदी-युग के अनेक कवि प्रवृत्त हो गये। भारतेन्दु-युगीन जड़ता तथा आन्दोलनमात्र को छोड़कर कवि सक्रियता से देश तथा भाषा के सुधार की बात सोचने लगे। मैथिली-शरण गुप्त, रूपनारायण पाण्डेय, नवीन, एक भारतीय-आत्मा तथा त्रिपाठी आदि कवियों का उदय ऐसे ही काल में हुआ। त्रिपाठी जी ने अनुभव किया कविता शृंगार के विषय को चुनकर खिलवाड़ बन गई है तथा युग से पीछे जा रही है। उसे वही कहना चाहिए जो उससे समाज कहलवाना चाहता है। त्रिपाठी जी में कविता के सस्कार बहुत बचपन से ही विद्यमान थे। वे अभ्यास के नहीं, व्युत्पत्ति के कवि हैं। कविता उनके लिए व्यसन नहीं, आत्मा की भूख बनी है। इसी समय उन्होंने यह भी अनुभव किया कि हमें बिहारी नहीं तुलसी चाहिए। कविता मनोरंजन के लिए नहीं, लोकहित के लिए होनी चाहिए। यह समय भी वही था जब अनेक सुधारक नेता राष्ट्रीय सांस्कृतिक आन्दोलन में भाग ले रहे थे। पराधीनता की बेड़ियों से अपने को मुक्त करने के लिए सम्पूर्ण देश जाग पड़ा था। राष्ट्रीय नेताओं की ताकत को जनता का पूरा समर्थन मिला। प्रथम बार देश ने पूर्ण सगठित तथा जागृति अवस्था में अंग्रेजी-राज्य का विरोध किया। इन जन क्रान्ति का नयन गाँधीजी कर रहे थे तथा सम्पूर्ण देश की जनता में स्वाभिमान, जातीय-गौरव तथा अत्याचारों के प्रति जमकर सघर्ष करने की भावना घर कर गई थी। इन नेताओं की वाणी का प्रभाव कवि पर भी था। समसामयिक सभी कवियों ने राष्ट्रीय-भावनाओं की हृदय-स्पर्शी कविताएँ लिखीं। यथा—

१. अब लो, यही लगन लगी थी हर जवान को,
आजाद करके छोड़ेगे हिन्दोस्तान को।
क्या है ग़ज़ब कि कब्रों से मुँदें निकल पड़े,
जैहिन्द बोल-बोल कर दिल्ली को चल पड़े।
गुरबत में उनको शाही के समान मिल गये,
अंगद का पाँव मिल गया, मैदान मिल गये।
लाखों जवान होने को कुरबान मिल गये।
जिस पर कि लोकमान्य ने कुरबान जान की,
महिमा महान् बापू ने जिसकी बखान की।

- जिसके जिए सुभाष ने सीधी कृपाण की,
अपना के जिसे दूनी जवाहर ने शान की ।
२. मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेक ।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जाएँ वीर अनेक ॥
३. मन मे आग, आँख में मस्ती ओठों पर मन चाही ।
कैसे रुकूँ देश-सेवा मे मैं हूँ एक सिपाही ॥
४. कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए ।
५. जिसको न निज गौरव तथा निज-देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं है, पशु निरा है और मृतक समान है ।
६. मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद मे बसा है,
जिसका मुकुट हिमालय, वह देश कौन-सा है ?

कवियों ने समवेत स्वर से माँ भारती की वन्दना की तथा मातृभूमि की सेवा को ही जीवन का परम पुरुषार्थ स्वीकार किया । त्रिपाठी जी ने युग की इस चेतना को पहचान कर उसकी काव्यमय अभिव्यक्ति की है । पराधीन देश की पीड़ा को अपने प्राणों मे भरकर उन्होंने राष्ट्रीय सामाजिक जागृति की तेज आवाज लगाई है । त्रिपाठी जी की कविता स्वच्छ तथा सहज भाषा से स्फूर्त होने के कारण जनप्रिय बहुत रही है । 'कथ्य' मे उनकी जैसी स्पष्टता बहुत कम खड़ीबोली के कवियों मे देखने को मिलेगी । उनकी कला मे कसीदकारी कम सादगी अधिक है । यह सादगी ही उनकी कला का सौन्दर्य है । अपनी कला की अकृत्रिमता के कारण ही वे द्विवेदी-युग के कवियों मे ख्याति-लब्ध कवि रहे है । खड़ीबोली की आरम्भिक सैकत-राशि पर अभिव्यजना की नवीन रेखाएँ, जो त्रिपाठी जी ने अकित की वे हिन्दी-भाषा का शृंगार है । खड़ीबोली काव्य मे निर्मात्ता के रूप मे उनका ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण रहेगा । उनके लिए यह कहा भी जाता रहा है कि—

कविवर रामनरेश त्रिपाठी ।

लूटा यश मार कृति लाठी ॥

त्रिपाठी जी ने काव्य के क्षेत्र में ही अपनी लेखनी नहीं उठाई, अपितु नाटक, उपन्यास, अनुवाद, सम्पादन तथा सकलन का कार्य भी किया है । उन्होंने अथक प्रयास के साथ ग्राम-गीतों का सकलन तथा सम्पादन किया है । लोकगीतों मे हमारी लोक-चेतना का रूप रक्षित है । उस सांस्कृतिक थाथी को कठो से निकालकर लिखना धोर श्रमसाध्य कार्य है । लोक-विश्वास तथा लोक-परम्पराओं का सही रूप लोक-गीत में ही देखा जा सकता है । ये गीत बादलों की कालिमा को देखकर हृदय से उमड़-कर बाहर आये है तथा माता-पिता से विदाई लेती कन्या की प्रेम-कथा भी कहते हैं । —इन गीतों मे धर्म, दर्शन, अध्यात्म, कला, समाज, साहित्य तथा संस्कृति के

अन्तर्वर्तीतत्त्व विद्यमान है। लोकगीत मौखिक यात्री होते हैं, इसीलिए इनमें परिवर्तन-चलता है। लोक-कंठ का अमृत पीने के कारण ये पुष्ट तथा अपने प्रभाव में दुर्निवार क्रम लगातार हो जाते हैं, अतः इनकी सत्ता तथा महत्ता दोनों का ही महत्त्व है। त्रिपाठी जी द्वारा संकलित ग्राम-गीतों में उत्तरी-भारत की अनेक परम्पराओं का रूप रक्षित मिलता है। ग्रामगीतों को ही लोक-साहित्य कहते हैं, ये कई प्रकार के होते हैं— (१) लोक में प्रचलित गीत, (२) लोक निमित्त गीत (३) लोक-विषयक गीत। लोक-गीतों में लोक-मानस का अवचेतन आदिम रूप से सुरक्षित है। सहज भावोच्छवास तथा अकृत्रिम कला लोकगीत का वन्य-सौन्दर्य है। लेकिन इन गीतों को नारी-कठों से निकलवाना कठिन होता है। त्रिपाठी जी ने महान् श्रम के साथ इन लोकगीतों का संग्रह 'कविता-कौमुदी' के भागों में किया है। उन्होंने बगानी तथा उर्दू के काव्य का भी संकलन किया तथा भारतीय-भाषाओं के साहित्य को बहुत निकट से परखने का पाठक को अवसर दिया। अतः त्रिपाठी जी अपने सृजनात्मक तथा रचनात्मक साहित्य के लिए सदैव स्मरण किए जायेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

फिर भी त्रिपाठी जी के काव्य का मूल्यांकन करना कठिन काम है। आश्चर्य में डालने वाली बात यह भी है कि इतना सचेतन कलाकार उपेक्षित ही बना रहा और उन पर कम से कम लिखा गया। इसे आज तत्कालीन आलोचकों की उदासीनता ही कहा जा सकता है, क्योंकि उनके काव्य में भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का काव्यमय इतिहास छिपा है। त्रिपाठी जी के काव्य से मेरा सर्वप्रथम परिचय नवी कक्षा में हुआ था। भारत की गौरव गरिमा से मण्डित त्रिपाठी जी की ये पक्तियाँ पढ़ने का सौभाग्य भी तभी प्राप्त हुआ था। यथा—

शोभित है सर्वोच्च मुकुट से,
जिसके दिव्य देश का मस्तक ।
गूँज रही है सकल दिशाएँ,
जिनके जयगीतों से अब तक ॥

ये पक्तियाँ रह-रहकर तब से लगातार मेरे स्मृति-पटल पर उभरती रही हैं। कुछ दिनों बाद उनकी अन्य प्रख्यात एवं जनप्रिय रचनाओं से मेरा परिचय मेरे अग्रज श्रीचन्द्र दत्त पालीवाल ने कराया। इस प्रकार मैं त्रिपाठी जी के काव्य के साथ-साथ उनके समस्त साहित्य के प्रति सजग होता गया। उनके रचनात्मक तथा सृजनात्मक साहित्य की विशालता देखकर मैं चौकने लगा। लेकिन, अपने अन्वेषण को मैंने उस दिन सार्थक समझा, जब मुझे ज्ञात हुआ कि 'अन्वेषण' नामक कविता के साथ-साथ 'हे प्रभो ! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए' नामक ईश-प्रार्थना के रचयिता भी श्री त्रिपाठी जी ही हैं। तत्पश्चात् उनके काव्य के प्रति निरन्तर मेरा अनुराग बढ़ता ही

गया। एम० ए० में प्रबन्ध लिखने का अवसर पाते ही, उस महान् कलाकार के प्रति उपेक्षा भाव-सा देखकर मेरी अभिलाषा बलवती हो गई कि मैं भी त्रिपाठी जी के काव्य पर अपने भाव व्यक्त करूँ। मेरी यह कल्पना इस प्रबन्ध के रूप में साकार हुई, इसका मुझे आज पूर्ण आत्म-तोष है।

इस प्रबन्ध के लेखन में बयोवृद्ध गुरुवर प० कृष्णशंकर जी शुक्ल ने कठिनाइयों का समाधान बिना थके किया गया है। इसमें परिश्रम-मात्र मेरा है, शेष सब उनकी कृपा का फल है। अतः उन्हें कृतज्ञता ज्ञापन तो मेरी धृष्टता ही होगी। आचार्य डॉ० नगेन्द्र जी ने विषय की स्वीकृति देकर बड़ी कृपा की है। श्रद्धेय डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, डॉ० ओम प्रकाश जी का मैं विशेष ऋणी हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य सुझावों से उपकृत किया है। इन गुरुजनो के प्रति मैं श्रद्धावन्त हूँ। समय-समय पर दिए गए, डॉ० लक्ष्मीनारायण भारद्वाज, श्रीगिरिश बख्शी तथा श्री अश्वनी कुमार शुक्ल के सुझाव भी हितकारी सिद्ध हुए हैं। अपने मित्रों एवं सहयोगियों की जो शुभाकांक्षा रही, उसके लिए कुछ भी कहना अनौपचारिक होगा। अन्त में मैं उन सभी विद्वान् लेखकों के प्रति भी अपनी विनम्र कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनके विचारों तथा लेखों से लाभान्वित हुआ हूँ।

हिन्दी-विभाग,

हिन्दू-कॉलेज,

दिल्ली-विश्वविद्यालय, दिल्ली-७.

—कृष्णदत्त पालीवाल

राष्ट्रीय उत्थान का परिवेश

उन्नीसवीं शताब्दी भारतवर्ष के इतिहास में ही नहीं; विश्व-इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ आती है। घटनाओं, क्रियाओं, जातियों, भाषाओं तथा संस्कृतियों में इतना बड़ा परिवर्तन-चक्र प्रथम बार उठ खड़ा हुआ। उन्नीसवीं शती की इस क्रान्ति के लिए पूर्व-परिस्थितियाँ ही पूरी तरह जिम्मेदार हैं। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले भारत में सन्तवाद तथा धर्मवाद का बोलबाला था, धर्म ही सांस्कृतिक एकता के नाम पर आड़े आता था। जनता में राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना का अभाव था। उन्नीसवीं शती में धर्म का रूप बदल गया। भ्रमों का क्षितिज ध्वस्त हुआ तथा अंग्रेजों के आगमन से एक नया आसमान उभरता हुआ दिखाई दिया। अंग्रेजों ने धर्म की कटु से कटु आलोचना की तथा रीति-रिवाज में बंधे लोगों को अन्ध परम्परावादी कहकर उपहास किया। बात यह नहीं थी कि हिन्दू-धर्म, ईसाई-धर्म या मुसलमानी-धर्म की तुलना में कमजोर था या ईसाई-धर्म में कमियाँ, त्रुटियाँ नहीं थी। बात केवल यही थी कि ईसाई-प्रचारक कूटनीति के साथ अपनी धर्म की उदारता का जय-जयकार करते थे तथा जनता को अपने पक्ष में करने का अवसर देख रहे थे। लेकिन “भारत यूरोप के साथ आने वाले धर्म से नहीं डरा, बल्कि, भय उसे यूरोप के विज्ञान को देखकर हुआ, उसकी बुद्धिवादिता, साहस और कर्मठता से हुआ। अतएव, भारत में जो नवोत्थान का आन्दोलन उठा, उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासों का त्याग नहीं, प्रत्युत, यूरोप की विशिष्टताओं के साथ उनका सामञ्जस्य बिठाना था।”^१

इसी शताब्दी में राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आन्दोलनों का जोरदार दौर चला। इनके परिणामस्वरूप प्राचीन आस्थाएँ हिल गईं तथा आदमी ने अपने को एक नवीन परिवेश के समक्ष पाया। चेतना का यह व्यापक प्रसार, वैज्ञानिक दृष्टि का उदय, औद्योगिक क्रान्ति का बोलबाला, फ्रांसीसी क्रान्ति, बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा, विश्व-भर में झूठी आध्यात्मिकता का पतन, मार्क्स का अभिनव सामाजिक क्रान्ति-दर्शन तथा विद्रोही-मूलक सृजन-शीलता के कारण हुआ। मानव के इतिहास में मार्क्स-

वाद, अस्तित्ववाद, अति यथार्थवाद, फलवाद, अराजकतावाद तथा नवीन यथार्थवाद ने नया अध्याय आरम्भ कर दिया। मध्य-युग जबदी-युग की जड़ होती हुई मनोवृत्तियों का प्रतीक था।^१ यूरोप में इस अन्धकार-युग का अन्त हुआ तथा नव जागरण का शखनाद सुनाई दिया।

यूरोप में मध्ययुग के उपरान्त एक ऐसे युग का उदय हुआ जो इतिहास में नवजागरण, नवक्रान्ति युग या पुर्नजागरण काल के नाम से प्रख्यात है।^२ क्विण्टी-लियन के पश्चात् यूरोप के साहित्य में एक प्रकार से 'अन्धकार-युग' छा जाता है। लेकिन तेरहवीं शताब्दी तक यूरोप में रोमन साम्राज्य से उत्पन्न अव्यवस्था कम हो गई थी। इससे पूर्व का जीवन राजनीतिक तथा सामाजिक पाश में जकड़ा हुआ था। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी गड़बड़ उत्पन्न हो गई थी कि परिस्थितियों के दबाव के कारण सभी मूल्य बिखर गए थे। परन्तु धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन आया और व्यक्ति परलोक की चिन्ता को छोड़कर लोक की ओर उन्मुख हुआ। यूनानी आदर्श तथा जीवन-पद्धति के अनुकरण से नवीन सूर्य उगता हुआ दिखाई दिया। आक्रमणकारी त्यूतन जातियाँ लातीनी जातियों द्वारा सुसभ्य ईसाई-धर्म में मिला ली गई थी। युग में नवीन प्रयोगों से नए आविष्कार हुए, कला तथा विज्ञान की नई साधना हुई तथा कागज और मशीनों के आने से सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे में एक मौलिक परिवर्तन आया। साँस्कृतिक चेतना का प्रवाह इतना तीव्र रहा कि यूरोप का एक प्रकार से नवीन जन्म हुआ। यही पर अराजकतावादी तथा साम्राज्यवादी शक्तियों का ध्वन्मीकरण हुआ। पोप की सत्ता कम हुई तथा धार्मिक रवचछन्दता का प्रभाव झाँकने लगा। मानव अन्धकार से आकर प्रकाश की ओर लपका तथा राष्ट्रवाद तथा बुद्धिवाद की भावना प्रबल हो गई।

भारतवर्ष में मुगलों के पतन के साथ ही मध्ययुग का अन्त होता है। लेकिन हमारा मध्ययुग यूरोप के मध्ययुग की तरह अन्धकार-युग नहीं है। यह तो धार्मिक सन्तों की चेतना से सम्पन्न तथा समृद्ध काल है। मुगल बादशाहों की शासन-व्यवस्था भी अच्छी रही तथा देश में जनता सुख से जीती रही। भारतीय दस्तकारी की ख्याति पश्चिम में बहुत थी तथा वे इस देश में आने की तरस रहे थे। १५वीं शताब्दी में कोलम्बस ने नवीन दुनिया की खोज की तथा वास्कोडिगामा ने भारत का समुद्री द्वार खोल दिया। पुर्तगाल के लोग यहाँ व्यापारी बनकर आने लगे तथा व्यापार से लाभ उठाते हुए शक्तिशाली बनने लगे। तदुपरान्त, पुर्तगालियों को देखकर इंग्लैंड, फ्रांस तथा हॉलैण्ड की कम्पनियाँ भी व्यापार करने के लिए आने

१. मध्ययुगीन धर्म-साधना, पृ० १७

२. The Renaissance in England, P. 195—Hyden E. Rollings,

लगी। १६वीं शताब्दी में महारानी एलिजाबेथ ने 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी ऑफ मर्चेण्ट्स ऑफ लन्दन' को भारत के साथ व्यापार करने की सहमति प्रदान की। कम्पनी ने बम्बई, मद्रास, मछलीपट्टम, हुगली, कलकत्ता आदि बड़े नगरों में व्यापारिक केन्द्र स्थापित किए। लाभ बढ़ा तथा कम्पनी ने यहाँ 'यूनाइटेड ईस्ट इण्डिया कम्पनी' के नाम से एक नवीन व्यापारिक संस्था का और आरम्भ किया।^१ लेकिन शक्तिशाली मुगल-शासकों के नीचे दबकर इनका व्यापार चलता रहा। सन् १६८५ में मालावार-तट पर अग्रेजों के वेड़े ने भारतीय जहाजों को लूटा। औरंगजेब ने कड़ाई के साथ कम्पनी की सुविधाएँ समाप्त कर दी। बादशाह के पैरों पर अग्रेज गिड़गिड़ाकर गिर पड़े एवं क्षमा मिल गई। लेकिन औरंगजेब के मरते ही भारत में आपसी-कलह चरम सीमा पर पहुँच गई। पंजाब में मिक्खो और जाटों ने, महाराष्ट्र में मराठों ने, राजस्थान में राजपूतों ने, बुन्देलखण्ड में बुन्देलों ने, अवध में सादतख़ाँ ने तलवार खींचकर विद्रोह कर दिया। मुगल शासकों की निर्वीर्य सन्तानें पूर्ण असफल सिद्ध हुई तथा पूरा देश खण्ड-खण्ड हो बिखरने लगा। विदेशी कम्पनियों ने सुरक्षा के नाम पर सैनिक रखने आरम्भ कर दिए तथा अवसर आने पर घावा बोल बैठे। कम्पनी ने भीतर ही भीतर अपनी शक्ति का विस्तार किया तथा १८५७ की क्रान्ति तक समस्त देश उनकी शक्ति में आ गया था। कम्पनी ने संगठित रूप से योग्य व्यक्तियों का चयन किया तथा सस्ते दामों पर अपनी वस्तुओं को बेचकर भारतीय व्यापार का भट्टा बैठा दिया।^२ शेष व्यापारिक कम्पनियाँ भी चौपट हो गई तथा देश निर्धनता तथा पतन की ओर बढ़ने लगा।

कम्पनी की कमियों को ईसाइयत के धर्म-चारकों ने ढक दिया। दक्षिणी भारत में जमकर प्रचार शुरू हुआ लेकिन दाँव चल नहीं पाया। मजबूर होकर पादरी यहाँ बसने लगे तथा जनता को बरगलाना उनका धर्म बन गया। धर्म-प्रचार के लिए स्कूल तथा सस्थाएँ स्थापित की गईं तथा बाइबिल मुफ्त बाँटी जाने लगी। मिशनरियों ने छापेखाने खोलकर प्रचार साहित्य का ढेर इस देश में धकेलना आरम्भ कर दिया। पैसा उनके पास बहुत था, गरीबों को आर्थिक प्रलोभनों से वे अपना बनाने लगे। हालाँकि ईसाई-धर्म के प्रति इस देश की जनता ने घृणा ही व्यक्त की। तब आकर अग्रेजों ने इमारतों को बनवाना शुरू किया। एक आवाज उठी—

कदम अग्रेज कलकत्ते से अब दिल्ली में धरते है।

तिजारत देख ली, देखे, हुकूमत कैसी करते है।

कम्पनी का उद्देश्य धन कमाना तथा यहाँ जमा रहना था। इसके लिए आव-

१. Oxford History of India, P 340—V. A. Smith.

२. India in the Victorian age, P. 914—R. C. Dutt.

शक्य यही था कि यहाँ अंग्रेजियत का मठ स्थापित हो। भारतवर्ष में लार्ड विलियम बेटिक के समय से अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृति का प्रचार कार्य हुआ। इस कार्य में मेकाले सर्वाधिक अगुआ बना। नायकत्व ग्रहण किए मेकाले ने राजा राम मोहन का सहयोग प्राप्त किया। यूरोपीय विज्ञान तथा यूरोपीय शिक्षा-साहित्य को उसने घोषणा के साथ मच दिया। भारतीय लोगों को रूढ़िवादी तथा काहिल कहकर उच्च पदों से हटा दिया गया। इंग्लैंड के युवकों को ऊँचे पदों पर आसीन किया गया। भारतवासियों को यह वचन दिया गया कि जब वे उच्चपदों के योग्य हो जायेंगे तब उनको अवसर मिलेगा। पद देते समय रंग तथा जाति का भेदभाव नहीं होगा। किन्तु यह वादा व्यावहारिक रूप में कभी पूरा नहीं किया गया। जनता क्लर्क बन गई तथा अंग्रेजों के प्रति उसके मन में असन्तोष का भाव प्रकट होने लगा। अंग्रेजों के राजनैतिक छल, विश्वासघात, अनैतिकता, बर्बरता तथा घृणा को जनता धीरे-धीरे समझने लगी। जनता समझ गई कि उसे गुलाम बनाया जा रहा है तथा उनके ऊपर विदेशी शासन को लादने की कोशिश जारी है। हिन्दू-मुसलमान तथा सैनिक असन्तोष के अनुभव से विकल रहने लगे।^१ यद्यपि १७५८ का प्लासी-युद्ध असफल रहा था, लेकिन उसकी चेतना अब भी विद्यमान रह गई थी। भारत ने प्रथम बार इसी युद्ध से नया सबक सीखा तथा यही से आधुनिक चेतना का श्रीगणेश भी हो गया। सन् १७६४ में विद्रोही भारतीय सैनिकों को गोलियों से भून डाला गया। सैनिक भड़कते गये तथा १८२४ में बंगाली पैदल-दल ने कम्पनी के कहने पर भी वर्मा में युद्ध करने से इनकार कर दिया। बंगाल का यह विद्रोह १८४४ में भी हुआ, चारों ओर क्रान्ति की भूमिका तैयार होने लगी।

घोर असन्तोष के इस वातावरण ने ही १८५७ की क्रान्ति को जन्म दिया। यद्यपि यूरोपीय विद्वान् इस क्रान्ति को एक बड़ा दगा मात्र मानते हैं तथापि यह क्रान्ति दगा न होकर एक जन-विद्रोह था।^२ कारतूसों में चर्बी के प्रयोग के बहाने सिपाही बिगड़ गये तथा सम्पूर्ण देश में एक भयकर लड़ाई शुरू हो गई। विद्रोह के पीछे धार्मिक, ऐतिहासिक, नैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक कारण भी काम कर रहे थे। इस क्रान्ति में अंग्रेजी-शासन को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया गया। पण्डित नेहरू, वीर सावरकर, अशोक मेहता, श्री वृन्दावनलाल वर्मा आदि का दृढ़ विश्वास है कि यह एक राष्ट्रीय क्रान्ति थी, स्वतन्त्रता के लिए प्रथम बड़ा भयकर युद्ध था।^३ मंगल पाण्डे, नाना, धुन्ध, पन्न, नानिया, अहमदशाह, लक्ष्मीबाई आदि सभी ने

१. Young India, p 102-115—LalpatRai

२. वही, पृ० ११५

३. "It was much more than a military mutiny, and it spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of Indian Independence." Pt. Nehru, Discovery of India.

इसी क्रान्ति के समक्ष अपने को झोंक दिया। स्वाधीनता प्राप्ति का यह प्रथम सशस्त्र भयंकर किन्तु असफल प्रयास था। अंग्रेजी-राज्य के अफसरो ने विद्रोह का क्रूरता से दमन किया। महारानी विक्टोरिया ने एक अध्यादेश जारी करते हुए कहा कि धर्म, जाति आदि का भेदभाव छोड़कर सभी पद योग्य व्यक्तियों को प्रदान किए जायेंगे। सरकार धार्मिक अडचने नहीं डालेगी तथा भविष्य में राजा लोग गोद भी ले सकते हैं।^१ १८५८ के ऐक्ट के अनुसार कम्पनी का शासक हटा दिया गया तथा समस्त बागडोर रानी ने अपने हाथ में सँभाल ली। १८५७ की क्रान्ति दब अवश्य गई थी किन्तु उसकी चिनगारियाँ देश में लगातार दहकती रही। देश अपना अपमान भूल नहीं सका। अत्याचार की स्मृतियों में घाव हरा हो जाना तथा आदमी दाँत पीसकर अंग्रेजों से बदला लेने का निश्चय करने लगा। अंग्रेज सरकार भी सावधान थी तथा उसने 'पील कमीशन' के द्वारा सेना में भारतीय सैनिकों की संख्या कम कर दी। तोपखाना यूरोपियों के पूर्ण रूप से आधीन कर दिया गया। एक नया परिवर्तन 'इण्डियन आर्म्ड ऐक्ट' के द्वारा भी लाया गया—बिना सरकारी आज्ञा के शस्त्र रखना या लेकर चलना अपराध घोषित किया गया। भारतीय प्रेस ऐक्ट को भी जबरदस्ती थोपा गया जिसमें कोई भी व्यक्ति सरकार के विरुद्ध अनुमति लिए बिना लेख आदि नहीं छपा सकता था। इस समय भारतीय भाषाओं में लगभग सात सौ पत्र निकल रहे थे जिनकी मत्ता तथा स्वतन्त्रता खतरे में पड़ गई। इधर लार्ड लिटन को संतोष ही नहीं था उसने १८७८ में भारतीय लेजिस्लेटिव कौन्सिल द्वारा, वर्निक्यूलर प्रेस ऐक्ट पास कराया, जिसे 'गला-घोट ऐक्ट' नाम दिया गया था। इस ऐक्ट से देश में कपकपी दौड़ गई, जगह-जगह इसके विरोध में प्रदर्शन हुए तथा अन्त में लार्ड रिपन को इसे रद्द ही करना पड़ गया। 'इल्बर्ट बिल'^२ ने भी जले पर नमक छिड़क दिया। इस बिल के पास होते ही देश-भर में आन्दोलन हुआ। 'चार्टर ऐक्ट' का कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि उसमें सरकारी नौकरी पाने की आयु इक्कीस वर्ष रखी गई थी।^२ साथ ही यह परीक्षा भी इंग्लैण्ड जाकर पास करनी पड़ती थी। इस प्रकार सिविल सर्विस का मार्ग बन्द ही था। इस समस्त कारणों से भारतीय जनता का असन्तोष अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

यूरोपीय शिक्षा ने भी देश के युवकों को आँखें दी है। इस ज्ञान को पढ़कर भारतवासियों में आत्म-गौरव के लिए ललक तथा तड़प उठी है। अंग्रेजों ने भारत के अतीत पर अनुसन्धान आरम्भ किया, पीछे से भारतीय विद्वान भी जमकर उसी कार्य को कर उठे। संस्कृत इस देश में ज्ञान की भाषा रही है, उसका महत्त्व स्थापित किया

१. History of the Congress, p. 8—p. Sitaramayya.

२. भारत का इतिहास—भाग-२, पृ० ५२०-२१—डॉ० ईश्वरी प्रसाद

गया। संस्कृत ग्रन्थों का अनुवाद-कार्य सम्पन्न हुआ जिससे सम्पूर्ण यूरोप को भारत के अतीत की जानकारी हुई। भारतीय उपनिषदों से विदेशी इतने प्रभावित हुए कि जर्मनी का महान् दार्शनिक शापेनहावर भारत का शिष्य बन गया। फिक्टे तथा नीत्से ने भी भारतीय-दर्शन का लोहा माना। यूरोपवासियों ने यह भी स्वीकार किया कि “संस्कृत परम अद्भुत भाषा है, वह यूनानी से अधिक पूर्ण और लातीनी से अधिक सम्पन्न है।”^१ संस्कृत में निरुक्त तथा व्याकरण को देखकर वे चकरा गए तथा इनकी नक़ल पर ही वहाँ ‘फोनेटिक्स’ का काम शुरू किया गया। संस्कृत भाषा के अध्ययनसे भाषा-विज्ञान का नवीन इतिहास जर्मनी से आरम्भ हुआ। “मैक्समूलर के कामों से यह बात स्पष्ट हो गई कि ससार की प्राचीनतम भाषा हिब्रू नहीं, संस्कृत है और विश्व की प्राचीनतम जाति यूनानी तथा यहूदी नहीं, वरन् हिन्दू और ईरानी जातियाँ हैं। भारतीय साहित्य, दर्शन और धर्म का जो बखान जर्मन विद्वानों ने किया, उससे यह भी लाभ हुआ कि ईसाई-धर्म-प्रचारक भारत से बाहर भारतवासियों के विषय में जो मिथ्या प्रचार कर रहे थे, उसका खोखलापन चिन्तकों के सामने प्रत्यक्ष होने लगा एवं धीरे-धीरे अग्रेज यह सोचकर गौरव अनुभव करने लगे कि उनके साम्राज्य में भारत जैसा देश है।”^२

अतीत के अनुमन्धान से व्यक्ति ने गर्व करना सीखा लेकिन एक वर्ग, ऐसा गुलाम-वर्ग भी था जो अग्रेजों का दास बनने में ही अपने को धन्य मानता रहा। इस वर्ग को इस देश में कुछ भी श्रेष्ठ नहीं दिखाई देता था। पश्चिम का अन्धानुकरण करने वाला यह वर्ग देश के नाम पर सदैव कलक रहेगा। डाक्टर डफ का विश्वास था कि पाश्चात्य शिक्षा हिन्दुत्व को नष्टनाश कर देगी तथा हिन्दू ब्रह्मा, विष्णु को भूलकर ईसाई परमात्मा का ध्यान करेगा। इसी समय हिन्दू कॉलेज से निकला युवकों का दल हिन्दुत्व का घोर शत्रु तथा पाश्चात्य सभ्यता का घोर समर्थन करता हुआ झूम उठा। अपने पूर्वजों को रात-दिन कोसना तथा उन्हें महान् मूर्ख सिद्ध करना उनका धर्म बन गया। ईसामसीह के समर्थन में कह रहे थे “वह (ईसामसीह) तुम्हारे देवताओं के समान नहीं है जो मर-मिटे हैं। रामचन्द्र लक्ष्मण के शोक में सरजू नदी में कूद मरा। कृष्ण प्रवासतीर्थ के वन में भील के शर से मारा गया। ब्रह्मा का शिर शिव ने काटा। विष्णु को शिव, जो उनके काले बाल का अवतार था, निगल गया। शिव ने भीमसेन के डर के मारे हिमालय में प्राण तजा। इस रीति से सब देवता, जिन पर तुम मुक्ति की आशा रखते हो मर-मिटे।”^३ ईसामसीह के चरित्र को ऊँचा

१. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५१६

२. वही, पृ० ५१७-१८

३. आधुनिक साहित्य, पृ० ४० — श्री लक्ष्मी सागर वाष्णेंय

सिद्ध करने के लिए भी आकाश-पाताल के कुलावे मिलाये जाने लगे 'मैं बुरा तो हूँ, परन्तु, देवताओं से बुरा नहीं हूँ। वरन्, उनसे कही भला हूँ। शिव के समान जाति से अनादरित और अप्रतिष्ठित नहीं हुआ और ब्रह्मा की नाई कामातुर हो के अपनी कन्या से कुकर्म नहीं किया और विष्णु की नाई परायी स्त्री को नहीं ठगा और उनके अवतारों की रीति प्रतिज्ञा-भजक और निर्दोषियों को घातक और नास्तिकमत और अधर्म का उपजायक नहीं हुआ और इन्द्र के समान अपनी गुरु की पत्नी को भ्रष्ट नहीं किया।''^१

नवयुवकों में इस शिक्षा के प्रभाव से भ्रष्टाचार यहाँ तक बढ़ा कि माता-पिता के प्रति भी उनकी आस्था डिग गई। मांस-मदिरा तथा वासना-मूर्त्ति की तलाश में रात दिन वे एक करने लगे। लेकिन जनता में इन नवयुवकों के प्रति घृणा बढ़ गई। ईसाइयन के प्रचार से आदमी थक गया। हिन्दुत्व की जड़े इतनी जल्दी हिलने वाली नहीं थी। हजारों वर्ष तक परिवर्तन तथा पराजय भेलकर भी हिन्दुत्व का तेज मन्द नहीं पड़ा। "हिन्दुत्व पर आक्रमण का काम इसलिए भी कठिन है कि हिन्दू-धर्म रेजिमेंटेशन (जकड़ बन्दी) से घृणा करता है। इन धर्म का दार्शनिक-पक्ष अधिक से अधिक उदारता को मनुष्य का उत्तम गुण मानता है। अपने विचारों का उचित से अधिक आग्रह करना, दूसरों के धर्म, मत या विचार का निर्ममतापूर्वक अनादर करना अथवा अपने विश्वास पर कट्टर होकर खड़ा रहना, ये बातें हिन्दुत्व के खिलाफ हैं और प्रत्येक हिन्दू अपने अन्तर्मन में ऐसा काम करने वालों का अविश्वास करता है। ईसाई-धर्म-प्रचारक प्रचार के उत्साह में आकर इस प्रकार के काम खूब करते थे। अतएव, यहाँ की जनता का विश्वास उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता।''^२ हिन्दुत्व एक बार नहीं अनेकों बार विपत्ति में पड़ा लेकिन समूहला तथा युगों की तन्द्रा को तोड़कर उसने अंगड़ाई ली। देश में नवजागरण आ गया तथा अतीत को देखता हुआ भारतवासी कह उठा—

१. जातियों का उत्थान-पतन, आधियाँ चली प्रचण्ड समीर;
खड़े देखा झेला सब कुछ, प्रलय में पले हुए हम वीर।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यही;
हमारी जन्म भूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं। (प्रसाद)
२. रोबहु सब आवहु मिलिके भारत भाई।
हा, हा, भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥ (भारतेन्दु)

१. आधुनिक-साहित्य, पृ० ४०—श्री लक्ष्मी सागर वाष्ण्य, पृ० ६१

२. संस्कृति के चार अध्याय, पृ० ५३३—श्री दिनकर

राजा राममोहन राय इसी जागरण के अग्रदूत है। राय ने अरबी, फारसी तथा अंग्रेजी का गम्भीर अध्ययन किया तथा सुधारवादी आन्दोलन में सक्रिय हो गये। इन्हें राष्ट्रीय उत्थान के प्रथम पथ-प्रदर्शक तथा आधुनिक भारत का जन्मदाता कहा गया है। इन्होंने पाश्चात्य शिक्षा का सुधार के लिए उपयोग सिखाया। उन्होंने ईसामसीह के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों का उन्मूलन किया, ईसाई उनसे नाराज हो गये तथा नास्तिक कह कर उनसे दूर भागने लगे। उन्होंने कट्टर पादरियों को डांट कर कहा कि हिन्दुत्व का अपमान वे सोच-समझ कर करें। पहले अपना कोढ़ ठीक करो फिर मच्छर मारने की दवाई बाँटते रहना। वे हिन्दुओं की रूढ़वादिता के भी विरोधी रहे तथा भारतीय सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए कमर कसकर आगे बढ़े हैं।

सुधार का प्रथम राष्ट्रीय-आन्दोलन ब्रह्म-समाज का समाज था। इसकी स्थापना १८२८ में राजा राम मोहन राय ने की थी। हिन्दू-धर्म की पतित तथा दयनीय अवस्था में सुधार करने के लिए उन्हें ब्रह्म-समाज की स्थापना करनी पड़ी थी। राजनीति की दृष्टि से भारत ब्रिटिश-कूटनीति का शिकार बन गया था एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पश्चिमी सभ्यता हिन्दुत्व की क्रान्ति एवं धारा को दबाने का प्रयास कर रही थी। आर्थिक विषमता तथा साम्प्रदायिक दंगों से भरा देश शोचनीय स्थिति में गुजर रहा था। राजा राम मोहन राय बौद्ध, अशोक, महावीर तथा लक्ष्मीबाई के देश में कोई नया धर्म प्रचलित नहीं करना चाहते थे। वरन् प्राचीन हिन्दू-धर्म में पवित्रता लाना और उसमें जो दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनका परिहार करना चाहते थे। धर्म, हिन्दू-शास्त्रों तथा प्राचीन आर्य-सिद्धान्तों पर खुलकर विचार होता, प्रति सप्ताह सभा तथा वाद-विवाद होता तथा प्रामाणिक तथ्यों का बगला में अनुवाद किया जाता। हिन्दू-धर्म के अनेक मौलिक सत्यों से साक्षात्कार करते हुए उन्हें प्रतीत हुआ कि मूर्तिपूजा, रूढ़ रीति-रिवाज, पिछड़ा रहन-सहन, छूत-छात, बाल-विवाह, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति की समस्या, विधवाओं के प्रति अत्याचार, सती-प्रथा तथा भूत-चुड़ैलों के प्रति अंधविश्वास को समाप्त किया जाए। धार्मिक सिद्धान्त के रूप में ब्रह्म-समाज ने घोषित किया : परमात्मा एक है, अनन्त, अविनाशी, रूपहीन, अनादि, अगोचर तथा अदृश्य है। १८३० ई० में एक मन्दिर बनवाया गया जिसमें न तो ईश्वर की कोई मूर्ति थी न ही किसी धर्म के व्यक्ति के प्रवेश का निषेध था। यह मन्दिर सभी वर्गों तथा समाजों को समान भूमि पर लाने के कारण 'धार्मिक-सर्वोदय' तथा उदात्त-दृष्टिकोण का परिचायक था। धार्मिक उपदेशों में इस्लाम का एकेश्वरवाद तथा उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म का समन्वय किया जाता था। यह समाज स्त्रियों के उद्धार में गतिशील था, उन्होंने विलियम बैटिक से मिलकर सती-प्रथा का अन्त करवाया। राजा राम मोहन राय की असमय मृत्यु के बाद विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के पिता देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्मशास्त्र-सत्ता समाज का कार्य आगे बढ़ाया। उन्होंने कर्म-काण्ड

तथा अनुशासन के द्वारा 'समाज' में नवीन प्राणों की प्रतिष्ठा की। उन्होंने केशवचन्द्र सेन को 'धर्माचार्य' बनाया। उस समय केशवचन्द्र सेन केवल तेईस वर्षों के थे। इस नवयुवक के प्रवेश से नई पीढ़ी प्रसन्न हुई तथा युवकों ने अपना सक्रिय सहयोग देना आरम्भ कर दिया। सेन ने 'इण्डियन मिरर' नामक देश-भक्ति से पूर्ण पत्र निकाला। सेन ने भारत-भ्रमण किया तथा बम्बई में प्रार्थना-समाज और मद्रास में देव-समाज की स्थापना की। लेकिन केशवचन्द्र सेन का झुकाव ईसाई-धर्म की ओर अधिक था। अतः राम मोहन राय की दृष्टि में वे दूर जा पड़े तथा ब्रह्म-समाज असफल होकर बिखरने लगा।^१

"ब्रह्म समाज और उसके प्रवर्तकों के प्रभाव के कारण, पाश्चात्य सभ्यता एवं विद्याओं की भारत में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। इतिहास, साहित्य, न्याय, दर्शन विज्ञान, कला, धर्म आदि में नवीन जीवन का संचार हुआ और वे नये आवरण धारण करके, नई दिशा में विकसित होने लगे।"^२ किन्तु आंधी की भाँति आया यह परिवर्तन भी ध्वंसक ही हुआ, मृजन नहीं कर सका। हिन्दू-सभ्यता तथा संस्कृति का उद्धार करने वाला नेता अभी तक ओझल ही था। किन्तु करीमचन्द्र चटर्जी ने 'बगदर्शन' में हिन्दू-धर्म का नवनिर्माण करना चाहा तथा उत्तरी-भारत में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'आर्य-समाज' की स्थापना की तथा हिन्दुत्व की ढलती दीवारों को गिरने से बचा लिया। स्वामी जी का यह आन्दोलन वर्तमान हिन्दू धर्म में सबसे व्यापक तथा सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हुआ। स्वामी बिरजानन्द के इस शिष्य ने सदियों के अन्धकार को नष्ट करने की प्राण-प्रण से चेष्टा की, साथ ही वैज्ञानिक-चिन्तन पद्धति का विकास किया। उन्होंने ब्राह्मणों को ललकारा तथा वेदाध्ययन के लिए शूद्रों को भी अपनाया। इस सत्यान्वेषी देश-भक्त ने मातृ-भूमि को अन्ध-विश्वास तथा मानवीय अत्याचारों से मुक्त करने का प्रयास किया। 'सत्यार्थ-प्रकाश' के विचारों का प्रभाव इतना पड़ा कि उत्तरी-भारत में उनकी शिष्य-परम्परा बढ़ी तथा धूम मच गई। भारत का उद्धार करने के लिए स्वामी जी ने १८७६ में 'आर्य-समाज' की स्थापना बंबई में की। थोड़े ही वर्षों में इसकी शाखा लाहौर में खोली गई जिसमें सुधारवादियों ने बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। आर्य-समाज के धर्मोपदेशकों ने विदेश-यात्रा करने तथा गैर-हिन्दुओं को हिन्दुओं में सम्मिलित करने का प्रयास किया। स्वामीजी संस्कृति के उद्धारक तथा हिन्दी के निर्माताओं में से हैं। हिन्दी तथा हिन्दोस्तान के सुधार के लिए भारतीयकरण की तीव्र पद्धति अपनाकर मातृ-भाषा के प्रति प्रेम उत्पन्न करने की जी-तोड़ कोशिश की है। यह आर्य-समाजी जीवन-पद्धति सिन्ध तथा गंगा के मैदानों

१. Foundations of Indian Civics, P. 242—Puntambaker

२. भारतीय राजनीति शास्त्र और शासन-पद्धति, पृ० ३७—कन्हैयालाल वर्मा

में खूब पनपने लगी तथा एक जन-जागरण का आन्दोलन उत्पन्न हुआ। सस्कृति, मातृ-भूमि, मातृभाषा की रक्षा करने का जनता में विश्वास बढ़ा तथा पाश्चात्य सभ्यता से जन्मी हीन-ग्रन्थि का अन्त होने के कारण व्यक्ति में स्वाभिमान तथा स्वातन्त्र्य की भावना का विकास हुआ। अन्य धार्मिक-प्रचारकों के चैलेज का उत्तर दिया गया तथा हिन्दू-विरोधी भावना दफनाई जाने लगी। वैदिक-धर्म को मानव धर्म घोषित किया, निन्दकों को पछाड़कर सम्पूर्ण देश के सोये हुए तेज को जागृति किया। उन्होंने ईसाई-धर्म तथा इस्लाम-धर्म की कमजोरियों को जनता के समक्ष स्पष्ट रखा। विदेशी नकलची लोगों पर स्वामी जी ने इतनी व्यग्र-वर्षा की कि सभा में बैठे हुए लोगों का धैर्य टूट गया। खण्ड-खण्ड हिन्दुत्व ने इन धर्मों का नगपन देखा तथा अपने धर्म के प्रति आस्था सहज भाव से ही व्यक्त की। उन्होंने निष्पक्ष भाव से कहा कि “मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु, जो सत्य है, उसे मानना-पनवाना और जो असत्य है, उसे छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त के प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता। किन्तु, मैं आर्यावर्त व अन्य देशों में जो अधर्म-युक्त चाल-चलन है, उनको स्वीकार नहीं करता और जो धर्म-युक्त बातें हैं, उनका त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूँ, क्योंकि ऐसा करना मनुष्य-धर्म के विरुद्ध है।”^१ उन्होंने आर्य-समाज के प्रमुख नियमों की घोषणा इस प्रकार की है।

१. सब सत्य, विद्या और जो पदार्थ विद्या द्वारा जाने जाते हैं, उन सभी का आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर-सचिदानन्द रूप है—वह शाश्वत ज्ञान, मूर्त्त तथा आनन्द प्रमाता है। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान अमर, अभय तथा सृष्टि का पालक और उत्पत्ति-कर्ता है।

३. वेद ही सत्य-ज्ञान के आदि-स्रोत हैं। वेदों का अध्ययन-अध्यापन सबका परम कर्तव्य है।

४. असत्य का खण्डन तथा सत्य का मण्डन करने के लिए सदैव कमर कसे रहो।

५. कार्य करने से पूर्व परिणाम की सत्यता पर विचार करो।

६. ‘समाज’ विश्व से जुड़ा परिवार है।

७. प्रेम, न्याय तथा धर्म से पारस्परिकता उत्पन्न करो।

८. अविद्या नाश तथा विद्या का प्रचार-प्रसार करो।

९. सर्व-जन-हित या सर्वोदय की कामना करो।

१०. सर्व-हितकारी शाश्वत नियमों का आदर ही श्रेष्ठ होता है।

११. कर्म-काण्ड के द्वारा निर्वाण या मोक्ष की कामना करो।

१२. मुक्त ईश्वर को स्मरण करो। मूर्तियों तथा पुजारियों से बचो।

१३. अपनी सस्कृति में निष्ठा मत छोड़ो। ऋषियों का नम्र तथा साधना को ठुकराने में अहित होगा।

इस प्रकार आर्य-समाज ने राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक सभी क्षेत्रों में सुधार करते हुए, भारतीय राष्ट्रीयता का पुष्ट बीज रोप दिया। यही बीज पराधीनता में स्वाधीनता का मूल्य अकुरित कर सका। उन्होंने अनेक आन्दोलनों के द्वारा हिन्दू-समाज को सही दिशा प्रदान की तथा राष्ट्र, धर्म, सस्कृति तथा प्रेम का अर्थ जनता को समझाया। स्वामीजी के इन विचारों का प्रभाव भी त्रिपाठी जी पर गहरा है।

आर्य-समाज ने वेदों के प्रति जिम एकागी दृष्टिकोण का परिचय दिया, उसमें अनेक दोष इसमें आ गये। फिर भी इस धर्म ने मूर्तिपूजा का खण्डन, राष्ट्रीयता की जागृति में बुद्धिवाद का आधार ग्रहण किया। इन्हीं दिनों ब्रह्म-विद्या समाज या वियोमाफिकल सोसायटी ने एक और महान् सांस्कृतिक राष्ट्रीय आन्दोलन का आरम्भ किया। उस सोसायटी की स्थापना १८६५ में अमेरिका के न्यूयॉर्क नगर में की गई। इसकी स्थापना का श्रेय महान् रूसी महिला ब्लैवट्स्की तथा हेनरी स्टील आलकट को है। विश्वव्यापी मानव-समाज में मातृभाव उत्पन्न करना, रहस्य वस्तुओं की खोज करना, मानवीय शक्तियों को प्रकाश में लाना, धर्म, वेदना एवं विज्ञान का प्रसार ही इस सोसायटी का उद्देश्य है। यद्यपि इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हिन्दू-समाज या धर्म से नहीं है तथापि यह धर्म शिक्षित हिन्दुओं में अपने साहित्य एवं धर्म के प्रति जागृति उत्पन्न करता है।” इन महान् उद्देश्यों के कारण ही स्वामी दयानन्द ने भी इन दोनों संस्थाओं को भारत आमन्त्रित किया तथा देश का भ्रमण कराया। हेनरी आलकट ने यहाँ आकर ईसाई पादरियों की राष्ट्र-विरोधी तथा धर्म-विरोधी शिक्षा की निन्दा की। इन्होंने समस्त धर्मों में उदारता के कारण हिन्दू-धर्म तथा बौद्ध-धर्म की उच्चता स्वीकार की है। ब्रह्म-समाज कोई धर्म न होकर सभी धर्मों की सतोफला चटनी है। इसका जोरदार संचालन अग्रेज महिला एनीबीसेण्ट ने किया। जन्म से अग्रेज तथा हृदय से भारतीय हिन्दू बीसेण्ट के विचार मानवतावादी हैं। इन्होंने भारतीय सांस्कृतिक आन्दोलन में जीवन-भर कार्य किया तथा कुछ वर्षों तक कांग्रेस में सभानेत्री भी रही। वे हिन्दू-धर्म में अपनी अडिग आस्था रखती थीं तथा विश्व का सर्वश्रेष्ठ धर्म मानती थीं। उन्होंने यहाँ के तीर्थों का भ्रमण किया तथा अध्यात्म-दर्शन तथा कला के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त की। बनारस में रहकर सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज की स्थापना की जो आज हिन्दू-विश्वविद्यालय के रूप में विद्यमान है।

उन्होंने गीता का अनुवाद किया, रामायण तथा महाभारत पर कथाएँ भी लिखी। यही उनका यह विश्वास जागा कि हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है, जिसमें भारतवर्ष का मूल गढ़ा हुआ है। यदि यह मिट्टी हटा ली गई तो भारत-रूपी वृक्ष सूख जायेगा। भारत में प्रश्रय पाने वाले अनेक धर्म हैं, जातियाँ हैं, किन्तु, उनमें से किसी की भी शिरा भारत के अतीत तक नहीं पहुँची है। इनमें से किसी में भी यह दम नहीं है कि भारत को वे एक राष्ट्र के रूप में जीवित रख सकें। इनसे प्रत्येक भारत में से विलीन हो जाए, तब भी भारत भारत ही रहेगा। किन्तु, यदि हिन्दुत्व विलीन हो गया तो क्या शेष रहेगा? तब, शायद इतना याद रह जायेगा कि भारत नामक कभी भौगोलिक देश था। भारत के इतिहास को देखिये, उसके साहित्य, कला और स्मारकों को देखिये, सब पर हिन्दुत्व, स्पष्ट रूप से, खूदा हुआ है।” अखण्ड हिन्दुत्व का समर्थक करने के साथ-साथ उन्होंने ‘इण्डिया होम रूल लीग’ की स्थापना करते हुए आन्दोलनों में भाग लिया। इस दृष्टि से भारत के सांस्कृतिक राष्ट्रीय इतिहास में उनकी सेवाएँ सदैव स्मरणीय रहेगी।

राष्ट्रीय-जागरण की इसी परम्परा में ‘राम-कृष्ण मिशन’ का नाम भी गौरव-मय है। स्वामी रामकृष्ण ने आर्य-समाज, ब्रह्म-समाज की दुर्बलताओं को समझकर, उनसे देश को मुक्त करने की कसम खाई। श्री रामकृष्ण ने हिन्दू-धर्म में एक पूर्ण आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न की, लेकिन उनका जीवन तथा उनकी अनुभूतियाँ महान् सत्य का प्रत्यक्ष प्रमाण थी। उन्हीं की शिष्य परम्परा ने स्वामी विवेकानन्द ऐसे महान् तार्किक एवं उद्भट पण्डित को अवतरित किया। अपने गुरु की सन्तवाणी या अमृत-वाणी को उन्होंने इंग्लैण्ड तथा अमेरिका तक पहुँचाया। उन्होंने विदेशों में कई मिशन स्थापित किए तथा डटकर भारतीयता का प्रचार किया। “रामकृष्ण और विवेकानन्द एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उनकी व्याख्या बनकर आये। रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानन्द ने उसके क्रिया-पक्ष का आख्यान किया। स्वामी निवेदानन्द ने रामकृष्ण को हिन्दू-धर्म की गंगा कहा है, जो वैयक्तिक समाधि के कमण्डलु में बन्द थी। विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देवसरिता को रामकृष्ण के कमण्डलु से निकाल कर सारे विश्व में फैला दिया।”^१

विवेकानन्द के मुख से सम्पूर्ण भारत विदेशों में बोल पड़ा। राजा राम मोहन राय, देवेन्द्र नाथ ठाकुर, रानाडे, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द, एनीबीसेण्ट आदि ने जो भूमि तैयार की थी उसका पूरा उपयोग इन्होंने किया। उन्होंने समस्त विश्व की चिन्तना को झकझोर दिया तथा बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा करते हुए यूरोप के भारत-

विरोधी लोगों को पछाड़ कर छार-छार कर दिया। उनका कहना था, भारत विश्व को बहुत कुछ दे सकता है, उसके ज्ञान का मुरब्बा यूरोप के कई रोग ठीक कर सकता है। ताल ठोक कर भारत की विजय-गाथा को मुक्त रूप से गाया, आज भी उनके चिह्न विशेषकर यूरोप में अंकित हैं। अभिनव भारत के निर्माण में विवेकानन्द का बड़ा हाथ है, इस युग के प्रत्येक फूल पर उनका रंग तथा प्रत्येक शूल पर उनके पैर का अगूठा अंकित मिलेगा। स्वामी जी ने इस देश के नागरिक में आत्म-शक्ति, आत्म-गौरव, स्वाभिमान, राष्ट्रीयता, प्राचीन गौरव के प्रति श्रद्धा की भावना को उत्पन्न किया। योगी अरविन्द, सुभाष तथा गान्धी जी ने भी इस महान् चिन्तक को युग का सर्वाधिक मेधावी, तेजस्वी तथा राष्ट्रीय चरित्र स्वीकार किया है। भारत यदि प्रगति करना चाहता है तो उसे विवेकानन्द की शरण में जाना चाहिए तथा उनके सकेत से ही अपने भविष्य का निर्माण करना चाहिए।

भारत में धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों ने यह सिद्ध कर दिया था, हिन्दुत्व का सूर्य अब उदित हो चुका है, उसे दबाया नहीं जा सकता। इन आन्दोलनों ने सामाजिक तथा राष्ट्रीय उत्थान में प्राण फूँक दिए। बाल-विवाह, विधवा-विवाह, अनमेल विवाह, छूआ-छूत तथा साम्प्रदायिकता से मुक्ति आदि के सुधार इन्हीं के परिणाम थे। इन्होंने पाश्चात्य सभ्यता की कुरीतियों का भडाफोड़ करते हुए हिन्दुत्व के प्राचीन गौरव को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया। धार्मिक सुधारकों के साथ-साथ अनेक ऐसे भी महान् व्यक्तियों ने इसी समय जन्म धारण किया, जिन लोगों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उनमें बकिमचन्द्र चटर्जी, महादेव गोविन्द रानाडे; सरदार गोपाल हरि देशमुख, बाल गंगाधर तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, योगी अरविन्द, एन० जी० चद्रावारकर, जी० के० गोखले आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। देशमुख तथा रानाडे तो अंग्रेजों का सम्पर्क सौभाग्य मानते थे। इधर तिलक ने गीता के कर्मयोग-शास्त्र को अपने जीवन में अपनाया तथा अपनाने का सन्देश दिया। तिलक ने अन्याय के विरुद्ध विद्रोह करने की आवाज उठाई तथा देश में सुधार के लिए उन्हें एक नये महाभारत की अनिवार्यता प्रतीत हुई। वास्तव में राजाराम मोहन राय तथा विवेकानन्द के विचारों की तीव्र प्रतिक्रिया लोकमान्य तिलक में हुई।^१ तिलक हिन्दुत्व के पतन से आत्म कण्ट मे थे। उन्होंने 'गीता' के कृष्ण की वाणी को परिस्थितियों के अनुकूल पाकर 'गीता पर भाष्य' लिखा। गीता का दर्शन पराजित देशों में उत्साह का मन्त्र फूँक सकता है तथा गीता का कृष्ण ही सुधार कर सकता है। गीता पर अनेक टीकाएँ होती रही हैं। महान् दार्शनिक शंकराचार्य ने भी गीता पर भाष्य लिखा था तथा सन्यास की ओर जनता को प्रवृत्त करना चाहा

था। तिलक ने शंकर की व्याख्या का अनुकरण या पुनरावृत्ति नहीं की, इन्होंने तो नवीन दृष्टि से गीता पर गहन विचार किया तथा वर्तमान के सन्दर्भों से जोड़कर उसकी उपयोगिता को बहुत बढ़ा दिया। पराधीनता को कलक मानकर इन्होंने नया नारा दिया, “स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।” इस अधिकार को प्राप्त किए बिना जीवन कहाँ है ?

हिन्दुत्व के तेज को प्रखर करने के लिए योगी अरविन्द ने भी महान् कार्य किया है। उन्होंने अपने राष्ट्रीय-विचारों का वाहक ‘वन्दे मातरम्’ नाम का एक पत्र भी निकाला। इस पत्र ने देश-भक्तों में नवीन विचारों को जन्म दिया। अरविन्द ने भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के मध्य दिव्य-जीवन का सेतु जोड़ना चाहा है। वे मानस से अतिमानस का विकास चाहते हैं। मानव को अतिमानव बनाकर नवीन जीवन देना चाहते हैं। उनकी कल्पना का मानव क्षुद्रताओं से मुक्ति के बाद दिव्य-मानव बनेगा। अरविन्द के विचार बहुत ही कठिन तथा जनसामान्य के लिए दुर्बोध पड़े। उनका अधिक प्रचार नहीं हुआ। वे केवल दर्शन के क्षेत्र तक ही सीमित हो गये।

यातायात के साधनों में वृद्धि तथा छापाखाने की सुविधा ने भी इस नवजागरण में बहुत हाथ बढ़ाया है। राष्ट्रीय उत्थान के लिए महापुरुषों ने इनका जमकर उपयोग किया। रेल, तार तथा डाक की उचित व्यवस्था ने सम्पूर्ण देश को और अधिक निकट ला दिया। देश-भक्त देश-भर में आसानी से घूम-घूम कर अपनी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रसार करने लगे। अंग्रेजों के विरुद्ध जन्मी घृणा तथा अंग्रेजी भाषा के अध्ययन ने भी आदमी को प्रबुद्ध बनाया। जागरूक युवक अंग्रेजियत की बढ़ती हुई लहर को देखकर अपने देश का भविष्य सोचने लगा। उसे लगा हम अन्धकार की ओर ले जाए जा रहे हैं, इसलिए विवेक से कार्य लेना बहुत आवश्यक है। अंग्रेजी पढ़कर क्लर्क बना आदमी भी ऊब गया तथा परिवर्तन की कामना से प्रार्थना करने लगा। अनेक छोटी सस्थाएँ भी जाग गईं। बंगाल में ‘बंगाल ब्रिटिश इण्डिया सोसायटी’ की कूटनीति का खुलासा ‘इण्डियन एसोसियेशन’ नामक सस्था ने किया। श्री जगन्नाथ सेठ ने ‘बम्बई एसोसियेशन’ की स्थापना की। इस सस्था को दादाभाई नौरोजी से सहयोग प्राप्त हुआ। मद्रास में ‘मद्रास नोटिव एसोसियेशन’ तथा ‘मद्रास महाजन सभा’ ने भी अपना कदम आगे बढ़ाया। सन् १८८३ में ‘इण्डियन एसोसियेशन’ की अध्यक्षता में प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन (National Conference) हुआ। श्री आनन्द मोहन बोस इसके अध्यक्ष बने, बाद में इनका एक अधिवेशन कांग्रेस के जन्म के आस-पास भी हुआ।

ताराचन्द्र बनर्जी ने उन्हीं दिनों एक नवीन कल्पना की तथा बम्बई में भारतीय कांग्रेस का जन्म हुआ। कुछ लोग कांग्रेस की स्थापना का श्रेय लार्ड डफ्रिन को तथा गोखले साहब मि० ह्यूम को देते हैं। लेकिन निश्चित रूप से कुछ भी कहना

कठिन है। १८८४ में इण्डियन नेशनल-यूनियन (Indian National union) की स्थापना की गई। १९वीं शदी के मध्य में इटली स्वतन्त्र हुआ, जर्मनी को भी नया जन्म मिला। मिश्र, रूस, फारस तथा तुर्किस्तान में भी राष्ट्रीय आन्दोलन चला। समस्त विश्व एक जागरण की हिलोर से आक्रान्त हो गया। इन सफल, असफल आन्दोलनों ने भारतीय जनता को बड़ा प्रभावित किया। इटली का अनुकरण करने के लिए भारतीय नेता अधीर हो उठे तथा भेद-भाव भुलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने की चर्चा घड़ले से कर उठे। दादा भाई नौरोजी, रानाडे, सरफ़ीरोज शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, पं० मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल आदि ने उग्र तथा नरम विचारों के द्वारा देश के इतिहास को बदलने की तैयारी की। नेताओं की जाग्रत मनोवृत्ति के कारण राजनीतिक चेतना की चिनगारियाँ छिटकने लगी। 'बन्दे मातरम्' तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का स्वर धरती तथा आसमान पर गूँजने लगा।^१ भारतीय नेताओं ने सम्मिलित रूप से १८८५ में 'इण्डियन नेशनल कांग्रेस' (Indian National Congress) नामक संस्था का राष्ट्रीय स्तर पर गठन किया। सभा का प्रथम आयोजन बम्बई के गोकुल दास तेजपाल भवन में व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस प्रथम अधिवेशन ने वैधानिक शासन तथा पदों के पूर्ण भारतीयकरण का प्रस्ताव तेज़ी से बुलन्द किया। आरम्भ में सरकार ने ध्यान नहीं दिया, किन्तु १८८८ में इलाहाबाद अधिवेशन ने सरकार के कानों में गरम तेल डाल दिया। सरकार ने खुलकर विरोध किया, विरोध की प्रतिक्रिया अब यही हुई कि कांग्रेस की लोक-प्रियता दिनोदिन बढ़ने लगी। नरम दल के नेताओं ने कांग्रेस-आन्दोलन का घोर विरोध देखकर भी साहस कम नहीं किया एवं तिलक तथा मालवीय जी स्वतन्त्रता के लिए 'जनमत' तैयार करते रहे। तिलक ने महाराष्ट्र को अग्रणी बनाया तथा जन-आन्दोलन का बोलबाला हो गया। कांग्रेस-आन्दोलन में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, आग्ल भारतीय, ईसाई तथा यूरोप के लोगों ने सहायता पहुँचाई। अखिल भारतीय दृष्टिकोण को अपनाकर कांग्रेस समस्याओं का हल करने में अग्रसर हो गई। १९०६ में कांग्रेस ने 'स्वराज्य' का नारा लगाया, बाद में इस नारे का पूर्णरूप गांधी जी के आगमन पर उभरकर सामने आया। गांधी जी ने कांग्रेस की पुरानी नीतियों में परिवर्तन किया तथा अहिंसाधारी आन्दोलन की वैज्ञानिक भूमिका तैयार की। १८५७ की क्रांति असफल होते हुए भी सफल रही। बालदान व्यर्थ नहीं गया, कुचले हुए भारतीयों के भीतर स्वतन्त्रता की भावना लगातार बढ़ती ही गई। अंग्रेजों के अत्याचारों ने स्पष्ट कर दिया कि पराधीनता में

जीना पाप, कायरता तथा नरक है। कांग्रेस के जन्म के साथ ही राष्ट्रीय-चेतना में तीव्रता आ गई। अखिल भारतीय कांग्रेस ने राष्ट्रीय-भावना का विकास तथा आत्म-सम्मान के प्रति लोगो को सचेष्ट किया। भुखमरी तथा टैंकों से आदमी कराह उठा—

अगरेज राज, सुख-साज सजे अति भारी,
पर धन विदेश चलि जात यहै दुःख भारी।
सब के ऊपर टिकस की आफत आई,
हा, हा, भारत दुर्दशा न देखी जाई।

देश का नागरिक बाह्य रूप से ही दुःखी न होकर आत्मा से रो उठा। स्वामी दयानन्द का नारा उसे बार-बार याद आने लगा “भारत भारतीयों के लिए है।” भारत यदि भारत बनकर जियेगा तो इसका भविष्य उज्ज्वल है अन्यथा बुझ जायेगा। स्वामी विवेकानन्द ने सोती हुई जाति को सवेरा दिखाया तथा प्राचीन गौरव के प्रति पूर्ण सजग करते हुए उनकी हीन ग्रथि का जमकर इलाज किया। स्वस्थ पीढ़ी हिमालय के आँगन में गीत गा उठी—

जागो फिर एक बार।

अरुण किरण, तरुण पख, खड़ी खोल रही द्वार।

जनता में उत्पन्न धार्मिक चेतना भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुई। मैक्समूलर मोनियर, गेटे, विलियम्स राथ, मैसून आदि ने भारतीय प्राचीन ज्ञान की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यूरोप चौका तथा उसे आवाज मिली—

अरुण यह मधुमय देश हमारा।

जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

बरसाती आँखों के बादल, वनते जहाँ भरे करुणा जल।

लहरे टकराती अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा।

देश-विदेश के अनेक दर्शन यहाँ पाकर तट पाने लगे, वे पहले ही तट पाते चले आ रहे थे। इधर पाश्चात्य शिक्षा के अध्ययन से यूरोप के ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, कला, इतिहास, संगीत, साहित्य तथा संस्कृति के सम्पर्क में आ गये। नीत्से तथा शापेनहावर ने जब भारतीय प्राचीन साहित्य को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया तब देश को बड़ा साहस मिला। प्लेटो, अरस्तू, के साथ हारेस तथा वजिल मिल गए। शेक्स-पियर, मिल्टन वर्क, मिल, मैकाले, हरबर्ड रीड, स्पेन्सर, वनाड शॉ, ज्यां पाल सार्त्र, मार्क्स, लेनिन, हीगल, क्रोचे कान्ट, वरट्टाण्ड रसेल आदि सभी का सम्पर्क बड़ा उपयोगी हुआ। इस सभी के विचारों से देश में स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीयता की दृढ़ भावनाएँ उत्पन्न हुई। विश्व-इतिहास के दर्शन ने विश्व की क्रान्तियों से साक्षात्कार

कराया। धर्म, दर्शन तथा विज्ञान ने नया दृष्टिकोण दिया। यदि अंग्रेजी ने पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार तेजी से न किया होता तो देश में इतनी तेजी से भारतीयकरण की लहर भी नहीं दौड़ती। पाश्चात्य शिक्षा वरदान सिद्ध हुई तथा शिक्षित व्यक्ति ने जगकर अपने को टटोला। परिणामस्वरूप सुभाष ऐसा मेधावी व्यक्ति तन, मन से अंग्रेजों का उग्र विरोधी हो गया तथा आजाद हिन्द फौज का कार्य तेजी से चलाया गया। लोगों में आई० सी० एम० की परीक्षा पास करने की लालसा बढ़ी तथा नौजवान उधर सफल भी होने लगे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बैरिस्टरी पास की, साथ ही 'इण्डियन एसोसियेशन' नामक संस्था की स्थापना की। यह संस्था शिक्षित वर्ग में अत्यधिक जनप्रिय हुई तथा योग्य नेता ने इसका संचालन भी जी-जान से किया। १९०७ में सूरत अधिवेशन के पश्चात् कांग्रेस में दो दल हो गये। उग्र दल वाले कांग्रेस से अलग हो गये। कांग्रेस में जिस समय सभी भारतीय सम्मिलित थे उस समय भी सरसंयुक्त अहमद खाँ अलग बने रहे। लेकिन इसका परिणाम बुरा नहीं हुआ। उत्साही युवकों ने 'इण्डिया' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन किया, जिससे विचारों के क्षेत्र में राष्ट्रीय वातावरण का निर्माण किया। उग्र दल में बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल थे। इसी दल के कारण सूरत की प्रसिद्ध फूट हुई तथा बाद में समझौता हो गया। इसी समय बंगाल में भयंकर प्लेग का प्रकोप तथा अकाल पड़ा। गड़बड़ प्रबन्ध के कारण हजारों लोग मर गये। विदेशी दूर खिसक गये, जिससे जनता में अंग्रेजों के प्रति घोर अविश्वास जन्मने लगा। लोकमान्य तिलक सम्पादित 'केसरी' ने सरकारी अन्याय की इतनी ऊँची आवाज लगाई कि वहाँ दंगा हो गया। बग-विभाजन की घटना से घृणा तथा असन्तोष और बढ़ा तथा लोगों ने अपने अपमान का बदला लेने का प्रण किया। वाइसराय ने कांग्रेस के प्रति-निधि-मण्डल से मिलना अस्वीकार किया। नेताओं के इस अपमान ने उनका खून औटा दिया। तिलक तथा लाजपत राय को जेल हुई, इधर उग्र दल के पत्र 'सन्ध्या' तथा 'युगान्तर' ने सरकार के विरुद्ध प्रचार-कार्य भी अच्छी तरह किया। क्रान्तिकारी विदेशों तक में फैल गये तथा अंग्रेजों पर बम फेंकने का श्रीगणेश हो गया। सरकार ने क्रान्तिकारियों को बर्बरता से दबाना चाहा। लाला लाजपत राय, तिलक, सरदार अजीत सिंह को माण्डले जेल में कैद किया गया तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के व्यक्तियों को कुचलने की जी तोड़ कोशिश की गई। सन् १९०६ से लेकर १९१० तक बड़ा भयंकर समय गुजरा। सरकार ने 'सिटीजन मीटिंग ऐक्ट' तथा 'क्रिमिनल लाँ अमेण्डमेण्ट ऐक्ट' बनाकर लोगों को दबाना चाहा लेकिन जनता भड़क और गई। सरकार ने नेताओं को जेल से छोड़ दिया, बग-विभाजन का फैसला भी रद्द हो गया। जनता से आवाज आई—

हम देश के माली है, हम देश सजायेगे,
इसके कठोर सकट, हम शीघ्र हटायेगे ।

मुहम्मद अली जिन्ना ने कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग का समझौता करवाया ।
इकबाल ने आवाज़ लगाई—

सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा ।
मजहब नही सिखाता, आपस में बैर रखना,
हिन्दी है, हम वतन है, हिन्दोस्ताँ हमारा ।

‘होमरूल आन्दोलन’ ने सरकार को झटका दिया । उग्र तथा नरम दल के नेताओं ने प्रतिज्ञा की ‘स्वराज्य प्राप्त करना’ सभी का लक्ष्य है, भेद-भाव की बात बाद में आती है । इसी समय गांधीजी का महान् नेता के रूप में प्रादुर्भाव हुआ । गांधीजी, सत्याग्रह असहयोग तथा अहिंसा को आधार बनाकर आगे बढ़े । कांग्रेस ने गांधी के नेतृत्व में तिलक स्वराज्य-क्रोष का रूपया जमा किया, विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया, मद्यपान-निषेध का आग्रह, चर्खा तथा स्वदेशी वस्त्रों का आन्दोलन चलाया । गांधीजी ने विद्यार्थियों से राजनीति में आने के लिए अपील की । गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा नमक-आन्दोलन चलाया । इस प्रकार गांधीजी के कार्यों से सरकार काँप गई तथा सम्पूर्ण देश गांधीजी के एकता-सूत्र में बँध गया । राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में गांधी सबसे बड़े हस्ताक्षर बनकर आये । “महात्मा गांधी ने भारतीय सस्कृति पर इतनी अधिक दिशाओं में प्रभाव डाला कि उनके समस्त अवदान का सम्यक् मूल्य निर्धारित करना अभी किसी के लिए संभव नहीं दीखता । खान-पान, रहन-सहन, भाव-विचार, भाषा और शैली, परिच्छेद और परिधान, दर्शन और सामाजिक व्यवहार एवं अपने धर्म-कर्म, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता, भारत में आज जो भी आचार या विचार प्रचलित है, उनमें से प्रत्येक पर, कहीं न कहीं, गांधीजी की छाप है । यहाँ तक कि उनके आलोचकों और विरोधियों में भी ऐसे अनेक लोग हैं, जिनकी पोशाक नहीं तो, खान-पान में, विचार नहीं तो सामाजिक आचार में, महात्मा गांधी का प्रभाव मौजूद है । आज का भारत गांधी का भारत है और गांधी नाम आज के भारत नाम का पूरा पर्याय है, इसमें सन्देह नहीं । गांधीजी के इस महा-व्यापक प्रभाव को दृष्टिगत रखते हुए यह सरल कार्य नहीं है कि हिन्दू नवोत्थान के पृष्ठभूमि पर उनका समग्न रूप आँका जा सके । जन्म और विकास तो उनका भी सांस्कृतिक नवोत्थान के कारण ही हुआ, किन्तु, काल को खींचकर वे अपनी दिशा की ओर ले गये ।”^१ गांधीजी ने धर्म, दर्शन, साहित्य तथा राजनीति को एक कर

दिया। सर्व-धर्म-हिताय, सर्वजन-हिताय तथा सर्वदर्शन-हिताय उनकी दृष्टि रही। सांस्कृतिक-समन्वय तथा धर्म-समन्वय अर्थात् सारे सम्प्रदायो, धर्मों और सारी सस्कृतियों का समन्वय। उस सांस्कृतिक समन्वय का वाहन बनी हिन्दी भाषा और सर्व-धर्म-समन्वय का प्रतीक बनी हिन्दू-मुसलमानों की एकता।^१ उन्होंने धार्मिक पुनरुज्जीवन, राज-नैतिक आन्दोलन तथा समाज सुधार, तीनों का योग गांधी ने किया। यही रासायनिक योग राष्ट्रीय-एकता को स्वास्थ्य दे सका। राष्ट्रीय स्वाभिमान से आक्रान्त युवक ने आवाज लगाई—

१. जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं है, पशु निरा है, और मृतक समान है।
२. तुम अपने, सुख के, सुराज्य के, हो न पूर्ण अधिकारी,
यह मनुष्यता पर कलक है, हे प्रिय, बन्धु तुम्हारी।

सामाजिक तथा नैतिक-मूल्यों में गांधीजी की क्रान्ति से महान् परिवर्तन हुए।^२ मानव को नया जीवन-बोध मिला। अपने सकल्पों को अपने कन्धों पर उठाकर वह एक नवीन लोक की तलाश में निकल पड़ा। व्यक्ति-पूजा तथा प्रभुत्व-पूजा के स्थान पर जनपूजा को उसने आदर दिया। यही गांधी तथा मार्क्स अपने विचारों में एक हो गये। गांधी अहिंसात्मक ढंग से हृदय-परिवर्तन की बात करते रहे, मार्क्स बल-पूर्वक डडे से परिवर्तन की चर्चा करते हैं, लेकिन पद्धतियाँ अलग-अलग होते हुए भी दोनों का उद्देश्य एक ही है—सामाजिक-क्रान्ति। मार्क्स के शब्दों में क्रान्ति तब आती है जब जनता का क्रान्ति के साथ 'वास्तविक स्वार्थ' का सम्बन्ध हो। क्रान्ति का अवसर सभी व्यक्तियों को मिलता है, लेकिन क्रान्ति कर वे ही पुरुष पाते हैं 'जिनकी आँख में यह शक्ति है कि वे जमाने में छिपे हुए क्रान्ति के बीज को देख सकते हों।' सन्त, वीर तथा नागरिक सभी इस प्रकार की क्रान्ति में सहयोग दे तो सफलता चरण चूमती है—

द्वार बलि का खोल,
चल, भूडोल कर दे।
एक हिमगिरि, एक सिर का,
मोल कर दे।
मसलकर अपने इरादों-सी उठाकर
दो हथेली है, कि धरती गोल कर दें,
खून हो जाए, न तेरा देख पानी।

१. सर्वोदय-दर्शन, पृ० ३०३—दादा धर्माधिकारी

२. अकाल पुरुष गांधी, पृ० १०१—जैनेन्द्रकुमार

विश्व की अभिमान, मस्तानी जवानी,
कौन कहता है कि तू, विधवा हुई ।

विश्वात्मा तथा लोकात्मा के लिए भी मानव क्रान्ति नहीं करेगा तो किसके लिए करेगा । क्रान्ति के बिना जीर्ण व्यवस्था टूटती कब है एवं जब तक व्यवस्था नहीं बदलती, परिवर्तन आ नहीं सकता । इसी को सामाजिक क्रान्ति-दर्शन का नाम दिया गया है । मार्क्स ने अभिजात जर्मन दर्शन-शास्त्र, ब्रिटिश अभिजात राजनैतिक अर्थ-शास्त्र तथा फ्रांसीसी आदर्शवादी समाज को एकत्रित करके अपने सिद्धांत को जन्म दिया । मार्क्स ने सैनिक को समाप्त कर दिया, सबके गले में न्याय का ढोल बाँध दिया । उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी में गांधी तथा मार्क्स ने अपने विचारों से विश्व को हिला दिया । गांधी के लिए कवि के शब्दों में—

तू चला विश्व सब चौक उठा, तूफान उठाया आँधी है
भारत माँ ! का सच्चा सपूत, यह तो बेचारा गांधी है ।
सदियों का दैन्य तमिस्त्रतोम,
धुन तुमने, कात प्रकाश सूत ।
हे नग्न, नग्न वसुधा ढक दी,
बुन नव सस्कृति, मनुजत्व पृत ।

इस प्रकार आधुनिक भारत में जिस नव-सस्कृति, नव-निर्माण तथा पुनर्जागरण के दर्शन हुए, उसके पीछे समवन्त की भावना ही प्रबल थी । पूर्व तथा पश्चिम के विचारों से एक सामासिक सस्कृति का जन्म हुआ । इसमें वेदान्त, ईसाई-धर्म, ऐकेश्वरवाद सब कुछ मिल गया । धर्म का साम्प्रदायिकता से भरा ढाँचा टूट गया तथा विश्वमानव ने धर्म को बहुत व्यापक अर्थ में ग्रहण करना आरम्भ कर दिया । इस क्षेत्र में विवेकानन्द का कार्य सदैव अमर रहेगा । धर्म, अध्यात्म तथा विज्ञान के समन्वय ने अभिनव दृष्टि-बोध को अकुरित तथा विकसित किया । दुनिया के अनेक देशों में जिस वैचारिक क्रान्ति का जन्म हुआ, उमने जातीय-चेतना तथा स्वातंत्र्य के बीज अधिक बो दिए । आध्यात्मवाद, अस्तित्ववाद मार्क्सवाद, फलवाद, अराजकतावाद, व्यवहारवाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तों के पीछे भी युग का यही वैज्ञानिक बुद्धिवाद सक्रिय रहा । मनोविज्ञान ने मनोविश्लेषण के द्वारा आदमी को भीतर से परख कर ठीक करना चाहा । इस क्षेत्र में फ्रायड, एडलर, युंग आदि के नाम निश्चय ही उल्लेखनीय हैं । कलावाद तथा सौंदर्य-शास्त्र के बढते हुए क्षेत्रों ने मानव की रुचिका परिष्करण किया । भारतीयशास्त्रों के ज्ञान का आधुनिक विद्वानों ने नवीनीकरण किया । इसी जागृति के चिह्न भारतेन्दु-युग, द्विवेदी-युग, छायावादी-युग तथा प्रगतिवादी-युग में प्रकट हुए । ज्ञान के अनेक क्षेत्रों में प्रसरण के कारण अनेक विधाओं का नवीनी-

करण आरम्भ हुआ। सुधारवाद की भावना भारतेन्दु-युग तथा द्विवेदी-युग में अधिक प्रबल रही। छायावाद विश्राम-काल है। स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव के कारण इन कवियों ने कल्पना के साथ खिलवाड़ अधिक किया, वास्तविकता से टक्कर कम ली। भारतीय-साहित्य में रवीन्द्र नाथ ने नया मन्त्र पढ़ दिया। यह सिद्ध-मन्त्र के साहित्यकार थे, इनका प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय-चेतना पर पड़ा। द्विवेदी-युग के कवि उनके सकेतो पर उपेक्षिताओं का उद्धार करने लगे। इनके सकेत पर ही बगला तथा हिन्दी-साहित्य में अनेक विधाओं का सशक्त प्रयोग हुआ। परम्परा तथा रूढ़ि से थोड़ा हटकर सर्जक सर्जना के नये आयाम अपनाने लगा। लगातार घटित होती हुई अनेक घटनाएँ तथा निरन्तर बदलता हुआ युग, राष्ट्रीय-साहित्य को अधिक जन्म देने लगा। इस राष्ट्रीय-साहित्य के मूल में उद्धारवादी प्रवृत्तियाँ ही अधिक रही। समसामयिक राजनैतिक आन्दोलनों से प्रभावित साहित्यकार का सघर्ष एक व्यवस्था के विरोध में सीधा था—

१. मन में आग, आँख में मस्ती ओठों पर मन चाही
कैसे रुकूँ देश-सेवा में, मैं हूँ एक मिपाही।
२. आने दे मुझ पर मेघों की घोर घटा घिर आने दे,
जल ही नहीं, उपल भी, उसको लगातार बरसाने दे।
३. काली तू, कमली भी काली,
शासन की करनी भी काली।

लेकिन 'राष्ट्रीय-साहित्य' को सुकुचित अर्थ की कारा से मुक्त करना होगा। इसे राष्ट्रीय-आन्दोलन को बिम्बित करने वाले साहित्य तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। इसमें समसामयिक-बोध के साथ आधुनिक भाव-बोध भी छिपा होता है। 'आधुनिक भाव-बोध' क्या है, उस पर जमकर बहस हुई है तथा वैचारिक ताल ठोकने वाले पहिलवानों ने इसके साथ बहुत धक्का-मुक्का किया है। वैचारिक उल-झन कोई सन्तुलित हल नहीं दे सकी। अधिकांश 'आधुनिक' तथा 'आधुनिकता' की व्याख्या सैद्धान्तिक आलोचना से करना चाहते हैं। कुछेक 'आधुनिक' को एक 'जीवन्त-चेतना' का पर्याय मानते हैं। इनके मत से 'आधुनिक' शब्द नवीन तथा मौलिक दृष्टि का पर्याय है। वैसे यह शब्द कालवाची न होकर भाववाची या नवीन-जागृति का सूचक है। 'आधुनिक' शब्द जब कभी राष्ट्रीय साहित्य के साथ जुड़ जाता है या जोड़ दिया जाता है, उस समय भी ऐसी ही स्थिति उत्पन्न होती है। इनके मत से राजनैतिक आन्दोलन से प्रभावित विद्रोह का साहित्य ही राष्ट्रीय है, शेष अराष्ट्रीय। किन्तु हमें इस प्रकार की न तो धारणा बनानी चाहिए, न ही इस प्रकार की दृष्टि का निर्माण करना चाहिए, नहीं तो हम राष्ट्रीय तथा अराष्ट्रीय के चक्कर

में भटक जायेगे। पराधीन देश में जागरण की प्रेरणात्मक कविताएँ ही राष्ट्रीय नहीं होती, वे भी राष्ट्रीय होती हैं जिनमें हमारी संस्कृति की अनुगूँज व्यक्त की जाती है। उदाहरण के लिए 'पथिक' ही राष्ट्रीय नहीं है, दिनकर की 'उर्वशी', 'कुरुक्षेत्र' तथा कुँवरनारायण सिंह की 'आत्मजयी' भी राष्ट्रीय रचना है। 'राष्ट्रीय' शब्द का सङ्कुचित अर्थ लगाने वालों को मैथिलीशरण गुप्त तथा दिनकर तो राष्ट्रीय दिखाई देते हैं, किन्तु प्रसाद और निराला नहीं।^१ जबकि वास्तविकता यह है कि प्रसाद तथा निराला की दृष्टि से अराष्ट्रीय कभी नहीं है, हाँ अन्तर्राष्ट्रीय अवश्य हैं। इसलिए हमें राष्ट्रीय, राष्ट्रवादी तथा अन्तर्राष्ट्रीय आदि शब्दों का अर्थ गहराई से समझ लेना चाहिए अन्यथा दृष्टि-भेद साहित्य का व्यर्थ में अनर्थ करता है। 'राष्ट्रीय' शब्द कोई राष्ट्रवाद का पर्याय कतई नहीं है, यह तो एक विशेष प्रकार की दृष्टि है जो सम्पूर्ण देश को भावात्मक, सांस्कृतिक एकता तथा प्रेरणा में सजोने का प्रयास करती है।^२ राष्ट्रीय उत्थान की भावना तो चन्द्रवरदाई से मिलने लगती है तथा मध्यकाल के साम्प्रदायिक तथा तान्त्रिक जाल में भी जीवित रहती है। भक्तिकाल का साहित्य सांस्कृतिक भाव-भूमियों को आत्मसात् करने के कारण राष्ट्रीय बना, लेकिन, रीतिकाल का दरबारी तथा एकांगी साहित्य अवश्य दूर जा पड़ा। भारतेन्दु-युग पुनः भारत तथा भारतीयता की ओर उन्मुख हुआ तत्पश्चात् तो इस धारा का तेज ही अप्रतिहत बना रहा। द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय तथा राष्ट्रवादी चेतना प्रखर रही, परिणामस्वरूप कवियों ने ऐसे काव्य का सृजन किया जो किसी देश को कभी भी पराधीनता में प्रेरणा का दीप दिखा जा सकता है।^३

तुलसी, सूर, कबीर भी केवल भक्त या निराशा के ही प्रचारक नहीं हैं, उनमें भी आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक जागरण का स्वर ही प्रमुख रहा। भक्तिकालीन दृष्टि के मन्द पड़ते ही राजाओं तथा चाटुकारों ने उसे रौंद डाला। गवैया, नर्तक, कलाबाज, भाट, चापलूस तुक्कड़ राजा का मनोविनोद करते रहे। यही कारण है कि बिहारी तथा देव ऐसे महान् प्रतिभा के कवि भी काम-लोक से बाहर का लोक नहीं देख सके। १९वीं शताब्दी में अंग्रेजों के साथ भयकर टक्कर आरम्भ हो गई, यही से आधुनिक भारत का उदय हुआ। उस युग में अंग्रेजी के साहित्य का भी प्रभाव पड़ा विश्वजनीन घटनाएँ भी चौंकाने लगी, भारत को योग्य नायक भी मिले, स्वतन्त्रता अभियान भी शुरू हो गया। १९०० से १९१८ तक द्विवेदी-युग रहा लेकिन, इस युग ने अपने युग की प्रत्येक धड़कन को व्यक्त किया। यहाँ साहित्य सच्चे अर्थों में समाज

१. आलोचना—इतिहास विशेषांक—जनवरी १९५३, पृ० २

२. वही, पृ० ५

३. जनवरी १९५६ पृ० २५६

का दर्पण बनकर सामने आया है। यह साहित्य मर्यादावादी, आदर्शवादी, पुनरुत्थानवादी तथा घोर राष्ट्रीय है। सुधारवाद की चेतना इतनी अधिक है कि मैथिलीशरण गुप्त, एक भारतीय आत्मा, नवीन, त्रिशूल, रामनरेश त्रिपाठी तथा सुभद्राकुमारी आदि सभी एक व्यवस्था को बदलने में लगे हुए हैं।

पश्चिम का अनुकरण करते हुए हमने अपनी 'विरासत' को नहीं नकारा। राष्ट्रीय नेताओं की विरादरी में हम सब पेट या धोती पहन कर भी भारतीय मन से ही सम्मिलित हुए। कवि गीता, उपनिषद् तथा गांधीजी की आरती उतारने लगा, यह भी जन-इच्छा का ही अभिव्यक्तीकरण हुआ। हमने प्राचीन गौरवमय परम्पराओं के साथ खिलबाड नहीं किया। नीत्से की बात को सुनकर भी हम चौंके नहीं, गौतम की शरण में बैठे रहे। मार्क्स का इशारा पाकर भी हम पागल नहीं बने, गांधीजी के साथ सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेते रहे। हम शेक्सपियर, मिल्टन तथा टालस्टाय को पढ़कर ही नहीं चौंके, माइकेल, मधूसूदन दत्त, नवीन चन्द्र सेन, कवीन्द्र-रवीन्द्र तथा भारतेन्दुजी भी हमारी काव्य-प्रेरणाओं के प्रत्यक्ष आधार रहे हैं।

अधिकांश विद्वान् यह बात लगातार दुहराते रहे हैं कि भारतेन्दु-युग को नव-जागरण का प्रथम उत्थान तथा द्विवेदी-युग को नवजागरण का द्वितीय उत्थान कहना चाहिए। इन दोनों युगों में मध्ययुगीन जडता को तोड़ा गया है। साहित्य के नये प्रतिमान तथा मानदण्ड गढ़े गये हैं। गद्य-पद्य की भाषा में परिवर्तन हुआ है। भारतेन्दु युग में काव्य की भाषा तो पुरानी ब्रजभाषा ही बनी रही लेकिन गद्य की भाषा खड़ी-बोली हो गई। अयोध्या प्रसाद खत्री ने खड़ी-बोली आन्दोलन चलाया तथा भाषागत परिवर्तन आने लगा।^१ वैसे भाषा-विज्ञान की दृष्टि से 'खड़ी बोली' शब्द का दिल्ली-मेरठ की बोली के लिए प्रयुक्त किया जाता था। सुनीतिकुमार चटर्जी इसे 'जनपदीय हिन्दोस्तानी' का नाम देते हैं। भाषा-वैज्ञानिकों का विचार है कि खड़ी-बोली ही स्टैंडर्ड हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी की मूलधार बोली है। "साहित्यिक सन्दर्भ में कभी-कभी अवधी, ब्रज आदि बोलियों के साहित्य से अलगाव करने के लिए आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'खड़ी-बोली' साहित्य से अभिहित किया जाता है।" कुछ विद्वान् आरम्भ में खड़ीबोली को कर्कश, कटु, खरी आदि अर्थ देते रहे हैं।^२ लेकिन बाद में खड़ी बोली सुसंस्कृत, सुप्रचलित, परिष्कृत या परिपक्व का अर्थ देने लगी।^३ खरी तथा खड़ी का विवाद रोमन तथा देव नागरी लिपि के कारण उत्पन्न हुआ। यह सत्य है कि खड़ी-बोली को साहित्य क्षेत्र में ब्रजभाषा के विरोध में ही आना पड़ा। ब्रजभाषा के

१. हिन्दी साहित्य कोश, भाग १—पृ० २४६

२. हिन्दी-भाषा का इतिहास, पृ० ३४—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

३. दि हिस्ट्री ऑव उर्दू लिटरेचर, पृ० ३-४—दी गैहमबेली

प्रति विद्रोह का कारण खोजते हुए डॉ० श्री कृष्ण लाल लिखते हैं “ब्रजभाषा कविता का प्रवाह तरंगिणी भाँति न था वरन् वह एक सीमित सरोवर के तुल्य था जिसका जल अब गदला हो चला था। उसमें सड़े सेवार की दुर्गन्ध आने लगी थी। भाषा पर रूपक एवं उत्प्रेक्षा का अत्याचार बढ़ता जाता था। परन्तु इससे भी घातक और दोष थे जो ब्रजभाषा कविता को विनाश की ओर ले जा रहे थे। वे थे काव्य-विषय और साहित्यिक रूपों के प्रति सीमित दृष्टिकोण।”^१ खड़ीबोली-आन्दोलन में तीव्रता आते ही ब्रजभाषा कविता का तेज मन्द पड़ने लगा। ब्रजभाषा के प्रति बहुतों के मन में संस्कारिक रूप से अतिरिक्त मोह विद्यमान था, उन लोगों की आस्था को बहुत चोट लगी। लेकिन अयोध्याप्रसाद खत्री तथा आचार्य प्रवर महावीर प्रसाद द्विवेदी के निश्चित प्रयत्नों से खड़ी-बोली ने ब्रजभाषा की सत्ता को झकझोर दिया। द्विवेदीजी ने कमर कसकर खड़ी बोली को जमाया, सन् १९०० में उनका प्रवेश हिन्दी-साहित्य में बड़ी, महत्त्वपूर्ण तथा सौभाग्यशाली घटना है। अपने असाधारण-प्रेरणात्मक व्यक्तित्व से मण्डित इस स्वनाम धन्य युग-पुरुष ने भाषा तथा साहित्य की अनेक सम्भावनाओं को उजागर किया। व्याकरणनिष्ठ भाषा तथा प्रयोग की सहजता अपनाने का अनुरोध किया। ‘सादगी, असलियत तथा जोश’ को कविता के लिए अनिवार्य माना। उन्होंने नवीन विषयों पर कविता लिखने की प्रेरणा प्रदान की। अभ्यासी कवियों को उँगली पकड़कर पैदल चलना सिखाया तथा समूह-बद्ध होकर भाषा तथा साहित्य के विकास का सकल्प किया। उनके गम्भीर प्रयासों से ही खड़ी-बोली साहित्यिक खड़ी-बोली बन सकी। खड़ी बोली के साहित्यिक विकास में मैथिलीशरण गुप्त का योगदान सर्वाधिक रहा है। उन्होंने सहज तथा स्वच्छ भाषा में जन-प्रिय काव्य को लिखा है। उनकी ‘भारत-भारती’, ‘पंचवटी’, ‘द्वापर’ तथा ‘सिद्धराज’-सी कृतियाँ तो कम पढ़े-लिखे, लोगों का कठहार रही हैं। अन्त्याक्षरी की प्रतियोगिताओं में वे तुलसी के बाद दूसरा स्थान बनाते हैं। गुप्तजी के साथ-साथ अयोध्यासिंह उपाध्याय, हरिऔध, बालकृष्ण शर्मा नवीन, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, त्रिलोचन पाण्डेय, राय देवी प्रसाद पूर्ण, सियारामशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, गोपालशरण सिंह, गुरु भक्त सिंह, श्याम नारायण पाण्डेय, माखन लाल चतुर्वेदी तथा पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम खड़ीबोली के आरम्भिक निर्माताओं में सदैव स्मरणीय रहेगा। इन सभी के काव्य का स्वर राष्ट्रीय है तथा भाषा की सरलता, स्वच्छता, प्रौढ़ता एवं परिष्कार में सभी ने बड़ी भूमिका अदा की है। भाषा की प्रौढ़ता के साथ अनेक नवीन काव्य-रूपों का भी साहित्य-क्षेत्र में प्रौढ़ प्रयोग किया गया। हरिऔधजी तथा गुप्तजी ने खड़ी-बोली को ‘महाकाव्य’ से अलंकृत किया। ‘प्रियप्रवास’ तथा ‘साकेत’। इस युग के

गौरव-ग्रन्थ माने जाते हैं, यह उचित ही है। साथ ही “किन्तु, इन पच्चीस वर्षों में एक अद्भुत परिवर्तन हो गया। मुक्तकों के वन-खण्ड के स्थान पर महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानक-काव्य (Ballads) प्रेमाख्यान-काव्य (Metrical Romances), प्रबन्ध-काव्य, गीति-काव्य और गीतो (Songs) से सुसज्जित काव्योपवन का निर्माण होने लगा। गद्य में घटना-प्रधान, चरित-प्रधान, भाव-प्रधान, ऐतिहासिक तथा पौराणिक उपन्यास तथा कहानियों की रचनाएँ हुई, समालोचना और निबन्धों की अपूर्व उन्नति हुई।”^१ अचानक ही प० श्रीधर पाठक, प० नाथूराम शर्मा शंकर तथा राय देवी प्रसाद पूर्ण ब्रजी को छोड़कर खड़ीबोली के क्षेत्र में आये।^२ प० श्रीधर पाठक की कृतियों में पश्चिमी-स्वच्छन्दतावादी प्रभाव के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। ‘इस युग के काव्य में शुद्ध रोमांटिक धारा भी रही, श्रीधर पाठक, राम नरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय आदि में भाषा-शैली के साथ-साथ जीवन तथा जगत के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण मिलता है।’^३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी-मण्डल के कवि तथा मण्डलेतर कवियों की अलग से चर्चा की है। मण्डलेतर कवियों में देवी प्रसाद पूर्ण, प० नाथूराम शर्मा ‘शंकर’, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, प० सत्य नारायण कविरत्न, लाला भगवान दीन, प० सत्य नारायण पाण्डेय तथा प० राम नरेश त्रिपाठी का नाम गिनाया है।^४ उन कवियों की प्रवृत्ति काव्य-विषयों के चयन में स्वतन्त्र रही। काव्य में जिस स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन का आरम्भ श्रीधर पाठक ने किया था, उसका विकसित रूप द्विवेदी-युग में सर्वप्रथम रामनरेश त्रिपाठी में ही दृष्टिगोचर होता है। श्रीधर पाठक से आरम्भ होने वाली इस प्रवृत्ति के विकास को डॉ० श्री कृष्णलाल ने उत्थान की दृष्टि से विभक्त करना उचित समझा है।^५ यथा—

१. स्वच्छन्दतावाद का प्रथम चरण।

२. स्वच्छन्दतावाद का द्वितीय चरण।

द्वितीय चरण के तीन पक्ष स्वीकार किए हैं—

१. दार्शनिक पक्ष २. साहित्यिक पक्ष ३. कलात्मक पक्ष।

स्वच्छन्दतावाद के प्रथम चरण में रीतिकालीन सवैया, कवित्त आदि छन्दों का परित्याग कर हरिगीतिका, रूपमाला आदि छन्दों को अपनाया गया। प्रेम के वासनात्मक रूप को हटाकर उसका उदात्त-रूप ग्रहण किया गया। उदात्त-प्रेम की

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २, डॉ० श्री कृष्णलाल

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १३२, प० कृष्णशंकर शुक्ल

३. हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ, पृ० ८६, डॉ० रघुवश

४. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५६४, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

५. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १८

सर्वोत्तम अभिव्यक्ति इस युग में 'मिलन' तथा 'स्वप्न' नामक अपने खण्ड-काव्यों में त्रिपाठी जी ने की है ; इस उदात्त-प्रेम में देश, जाति तथा नारीतन भी सम्मिलित है । पराधीन देश के कवियों ने विदेशी शासन का अन्त करने के लिए लगातार आवाज़ उठाई । 'भारत-भारती' तथा 'पथिक' तो राष्ट्र-भक्तों को इतने प्रिय रहे हैं कि जेल जाते हुए भारतवासी इसकी प्रतियाँ अपनी छाती से लगाये रहते थे । यही कारण है कि पराधीन देश के राष्ट्रीय-आन्दोलन का सन्दर्भ आते ही ये दोनों काव्य कभी भी भुलाए नहीं जा सकेंगे ।

सच्चे अर्थों में, त्रिपाठी जी हिन्दी को द्विवेदी-युगीन नवजागरण (रेनाइसँ) की देन हैं । उनके ऊपर भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन की घटनाओं का गहरा प्रभाव है । ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, ब्राह्म-समाज, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन की छाप भी उनके साहित्य पर स्पष्ट परिलक्षित होती है । राष्ट्रीय-आन्दोलनों का पूरा-पूरा इतिहास छन-छन कर त्रिपाठी के काव्य में आया है ।

जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी का जन्म, स० १९४६ में फाल्गुन त्रयोदशी के दिन एक सरयूपारीप ब्राह्मण वंश में हुआ था। वे उत्तर प्रदेश में जिला जोनपुर के अन्तर्गत कोइरी नामक ग्राम में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम पं० रामदत्त त्रिपाठी था। उनके पिता धार्मिक कार्यो, धार्मिक ग्रंथो में बड़ी दृढ़ निष्ठा रखते थे। वे कर्मकाण्डी, धर्मनिष्ठ तथा संस्कृत के पण्डित थे। पूजापाठ एवं जपतप में उनकी गहरी आस्था थी। विष्णु सहस्रनाम और 'रामचरित-मानस' का प्रतिदिन पाठ करते थे एवं बड़ी कठिनाई से परिवार की जीविका चलाते थे। धार्मिक परिवार के इस वातावरण का बालक त्रिपाठी के बाल संस्कारों पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा जो जीवन पर्यन्त उनके ऊपर छाया रहा। इस प्रभाव का संकेत उन्होंने एक स्थान पर दिया है।

“मैं तो एक किसान का लड़का हूँ। उन्नीस वर्ष की आयु तक मैंने जोनपुर और फैजाबाद दो ही शहर देखे थे। मेरा गाँव आस-पास के शहरों से कम से कम ३० मील की दूरी पर था। इससे वर्तमान सभ्यता की कोई किरण शायद ही वहाँ पहुँची हो।”^१ इनके जीवन पर पिताजी का बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। वे रामायण के बड़े प्रेमी थे। “और, मुझे याद आता है कि सवेरे चार बजे वह मुझे माँ की गोद से उठवा मगाते थे और रामायण की चौपाइयाँ रटाते थे। मुझे यह अच्छा नहीं लगता था लेकिन पिता के इस अप्रिय प्यार का लाभ यह हुआ कि आज तक मैं रोज़ चार बजे उठता हूँ चाहे तीन बजे सोऊँ और उससे भी विलक्षण बात यह है कि ‘गंगा-लहरी’ का एक श्लोक जो उन्होंने गलत याद करा दिया था आज भी उस श्लोक को गलत बोलकर दुबारा शुद्ध करना पड़ता है। इस प्रकार मेरा जीवन-काल जैसा किसान के घर में बीतना चाहिए वैसा ही बीता। जंगल खेत का प्रभाव जीवन पर पड़ा ही।”^२ “जब मैं अपर प्राइमरी में पढ़ता था तब एक दोहा मैंने याद किया था, उस दोहे का प्रभाव मेरे ऊपर बहुत पड़ा है—

१. मैं इनसे मिला—श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० १७-१८

२. वही, पृ० १९ लेखक—श्री पद्मसिंह शर्मा ‘कमलेश’

तुलसी कर पर कर धरो, कर तर कर न धरो ।

जा दिनकर कर तर कर धरो, ता दिन मौत खरो ॥^१

जौनपुर जनपद शताब्दियों तक मुसलमानी सल्तनत एव सस्कृति का प्रमुख केन्द्र रहा है। फलतः जौनपुर जिले में आविर्भूत त्रिपाठी जी की शिक्षा उर्दू से आरम्भ हुई और बाद में ब्राह्मणोचित सस्कृत विद्या पढ़ने के लिए वे सस्कृत पाठशाला में भेजे गये। आपने कक्षा आठ या मिडिल तक अपने ग्राम में ही शिक्षा पाई तथा कुछ समयोपरान्त हिन्दी लेकर मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने पर वे आग्लभाषा के अध्ययनार्थ जौनपुर भेजे गए। प्रथम तो अभावों से भरी गृहस्थी में त्रिपाठी जी को पढ़ने-लिखने की पूर्ण सुविधा प्राप्त न हो सकी, दूसरे उनके पिता जी आग्लभाषा के कट्टर विरोधी थे। पिता जी की इच्छा अंग्रेजी पढ़ाने की न होने से मुश्किल से नवी कक्षा तक उनका अध्ययन कार्य चल सका। इस कारण उनकी स्कूली शिक्षा ६वीं कक्षा पर आकर ही समाप्त हो गई थी। किन्तु, स्वाध्याय के बल पर उन्होंने अंग्रेजी ही नहीं, उर्दू, फारसी, बंगला, सस्कृत तथा गुजराती आदि भाषाओं का भी अध्ययन किया। इस प्रकार उनके छात्र-जीवन का अन्त अल्प समय में ही हो गया। किन्तु उस अल्प समय के छात्र-जीवन में ही घटित एक घटना ने, प्रतिभा-सम्पन्न त्रिपाठीजी को हिन्दी की ओर खींचा, वही घटना भविष्य में इनके लिए जीवन पथ को प्रशस्त करने वाली सिद्ध हुई।

कविता लिखने का प्रथम प्रयास इन्होंने तेरह वर्ष की अवस्था में ही, जब वे ग्राम की पाठशाला में पढ़ते थे आरम्भ कर दिया था। जैसा वे स्वयं अपने एक इण्टरव्यू में सकेत देते हैं, “गाँव के स्कूल में पढ़ते समय ही मैं कविता लिखने लगा था। उन दिनों मेरी उम्र तेरह वर्ष की थी। उन दिनों ‘कवीन्द्र-वाटिका, रसिक-रहस्य’ आदि मासिक-पत्र गाँव के अध्यापक के पास आया करते थे। उन मासिक-पत्रों से मुझे कविता का रस मिलने लगा था। मुझे याद आता है कि उस समय की रीडर ‘हिन्दी शिक्षावली’ के चौथे भाग के अन्तिम पृष्ठ पर मैंने एक समस्या की पूर्ति कर दी थी। इस समय मुझे इसकी समस्या ही याद है जो यो थी—

पेटी न दिखाओ कोऊ

पेट मारि मरि है ।

तब मैं ‘पेट मारना’ तथा ‘पेटी’ का अर्थ नहीं समझता था। इस समस्या-पूर्ति पर अध्यापक ने मुझे पीटा भी खूब था।”^२

१. मैं इनसे मिला, पृ० १८ लेखक—श्री पद्मसिंह गर्मा ‘कमलेश’

२. वही, पृ० १६

आरम्भिक शिक्षा, पिता से विरोध तथा गृह-त्याग—

जिस समय वह जौनपुर में अध्ययन कर रहे थे, उसी समय उनके पिता जी (जो अंग्रेजी के विरोधी थे) से स्वच्छन्द-स्वभाव के बालक रामनरेश वातीव्र विरोध हो गया। कारण, पिता जी की इच्छा थी कि नौकरी करके धनोपाजन आरम्भ कर दे। पिता से रूढ़ता के कारण उन्हें बिना मूचित किए हुए वे कलकत्ता भाग गये। अलीगढ़ से निकलने वाली एक पत्रिका 'शिक्षा प्रभाकर' में एक उनका लेख प्रकाशित हुआ था, जिसकी प्रशंसा भी हुई एवं डिप्टी-इन्स्पेक्टर रामनारायण मिश्र ने उन्हें पारितोषिक भी दिया था। कक्षा में सुन्दर लिखावट से भी प्रभावित होकर शिक्षा-विभाग के डिप्टी-इन्स्पेक्टर ने इनको पुरस्कार दिया था।^१ इस प्रकार अनेक घटनाओं से स्पष्ट है 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' की कहावत उन पर चरितार्थ होती है।

कलकत्ता का जीवन—

कलकत्ता में पहुँचने पर त्रिपाठीजी के हाथ कोई धन तो विशेष न लगा, किन्तु, इनकी सरलता, सरसता, सहृदयता, सहज कवित्व प्रतिभा, सौम्य एवं आकर्षक व्यक्तित्व का प्रभाव यह हुआ कि इनके मित्रों एवं परिचितों की सख्या विशाल हो गई। युवावस्था में ही इनकी घनिष्ठता अनेक श्री-सम्पन्न परिवारों से हो गई जहाँ पहुँचकर इनके कवि-कर्म और स्वाध्याय को बड़ी सहायताएँ एवं प्रेरणाएँ मिली। प्रतिभा के वरदान से मण्डित त्रिपाठी जी कई वर्षों तक निरन्तर अध्ययन रत रहे और धर्म, इतिहास, आधुनिक-काव्य-साहित्य आदि विविध विषयों की सैकड़ों पुस्तकें उन्होंने पढ़ डाली। "बीस वर्ष की अवस्था में कलकत्ता गया। वहाँ पर मेरा साथ एक पंजाबी सज्जन से हुआ। उनका नाम टेकचन्द आर्य था। वह कलकत्ता आर्य-समाज के प्रधान थे। बाबू राधा-मोहन गोकुल जी जो उन दिनों 'सत्य-सनातन' पत्र निकालते थे, कलकत्ता के दूसरे व्यक्ति थे जिनसे मेरा परिचय हुआ। उनके वहाँ रोज़ शाम को जाकर मैं मासिक, साप्ताहिक आदि पत्र पढ़ा करता था। इस प्रकार से कलकत्ता ही मेरी साहित्यिक परिधि के विस्तार का कारण हुआ। वहीं मेरा परिचय सस्थाओं से हुआ और मुझे दूर-दूर तक प्रकाश दिखाई देने लगा। वहीं मुझे सग्रहणी हुई मेरे माता-पिता मुझे लिवाने गये। मुझे लौटने में लज्जा का अनुभव हुआ। माता तो बिना कुछ कहे रोकर घर लौट आई लेकिन पिता का दर्द जागा और उन्होंने कहा 'असल हो तो घर वापस न आना' मुझे यह वाक्य तीर की तरह लगा। यही कारण है कि मुझे जब डाक्टरों ने यह कह दिया कि तुम पन्द्रह दिन से

अधिक जिन्दा न रहोगे तब भी मैं घर न जाकर राजस्थान जा पहुँचा—एक राजस्थानी सज्जन का पत्र लेकर । फतेहपुर (सीकरी) में जाकर मेरी सग्रहणी दूर हुई । इसके बाद मैंने वहाँ एक पुस्तकालय खोला । ब्राह्मण मेरे विरोधी हो गये एवं जब मैं रास्ते में जाता होता तो वे मेरे ऊपर व्यग्य करते थे—

“देखो चण्डाल आ रहा है”

इतना होने पर भी दृढ-प्रतिज्ञ त्रिपाठी जी वहाँ पाँच वर्ष तक निर्भीकता से रहे क्योंकि उनका विचार है—

विघ्न समस्त करे पद पद पर,
मेरे आत्म-तेज को जाग्रत ॥
निष्फलता मुझको अधिकाधिक,
करे सचेष्ट सतर्क दृढवत् ॥
पश्चात्ताप मार्ग दिखलावे,
भय रक्खे चौकसी निरन्तर ॥
करे निराशा इस जीवन को,
शान्त स्वतन्त्र सरल शुचि सुन्दर ॥^१

विरोध सहकर भी उन्होंने झुकना नहीं सीखा । उनकी आत्मा का तेज विषम स्थितियों तथा विरोधों में जाग उठता था । प्रकृति ने उनमें स्वातन्त्र्य-भावना उत्पन्न की थी कि वे बचपन से ही मुक्तिकामी रहे । माता-पिता से उनका बचपन में विरोध रहा तथा परिवार वालों से तो वे आजीवन झूझते रहे । परिवार के स्नेह से वंचित रहने का एक लाभ यही हुआ कि उनका हृदय मानव-मात्र से स्नेह माँग उठा । उन्होंने परिवार की सीमा को तोड़कर देश तथा विश्व-परिवार के प्रति अपने को अर्पित किया है । उनकी विचारधारा का मूल स्वर यही रहा कि आत्म-गौरव तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग भी अधिक नहीं है ।

अध्ययन—

यद्यपि उनके विद्यार्थी जीवन का अन्त असमय ही हो गया था तथापि उन्होंने अध्ययन की ओर अपनी रुचि को अधिक प्रवृत्त रखा । स्कूली-परीक्षा की चक्की में बिना पिसे, वे स्वाध्याय पर आधारित हो गये । उन्होंने किसी भी परिस्थिति में अपने आत्मबल, आत्म-विश्वास का आँचल नहीं छोड़ा है । यहाँ रह कर उन्होंने व्यापक अध्ययन किया जिनमें ३०० रुपये का ऋग्वेद-भाष्य भी सम्मिलित है । उस समय

तक उनकी अवस्था इक्कीस वर्ष की थी। उन्होंने वही पर सर्वप्रथम 'हिन्दी-महाभारत' लिखा जो 'हिन्दी-प्रेस' तीर्थराज प्रयाग से प्रकाशित किया गया। इसकी भाषा-शैली इतनी पसन्द की गई कि वह 'ऋषि-कुल ब्रह्मचर्याश्रम' के कोस में रखा गया था। वही पर आपने यह लोक-प्रचलित प्रार्थना लिखी थी जो शायद जनसाधारण में सर्वाधिक प्रचलित प्रार्थना है—

हे प्रभो ! आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए।

शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हम से कीजिए ॥

लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बने।

ब्रह्मचारी, धर्म-रक्षक, वीर-व्रतधारी बने ॥

उनके भाव अनुकूल वातावरण पाकर अकुरित हो पल्लवित हो चले। लेकिन, वे इसका श्रेय रामनारायण मिश्र को देते हुये लिखते हैं कि "मैंने हिन्दी काशी-नागरी प्रचारिणी सभा के एकमात्र कर्णधार श्री रामनारायण मिश्र की प्रेरणा से सीखी। वह यदि न होते तो मैं या तो मुन्शी होता या अहमद या मुख्तार-आम।"^१ सौभाग्य से इस कलाकार को अनुकूल वातावरण मिला और हिन्दी के साहित्याकाश में वे ऊँचे उठने का प्रयास करने लगे। उनकी इच्छा बलवती होकर कर्मरत जीवन के कण्टकाकीर्ण पथ पर राह बनाती हुई अग्रसर हुई—

यह इच्छा है कुँज-कुँज में वायु बना विचरूँगा,

कुम्हलाये पौधों में फिर से चेतनता वितरूँगा ॥^२

देश-भक्ति की उताल तरंगों उनके मानस-पटल पर जन्म से ही उभार मारती रही थीं। जननी जन्मभूमि की, विदेशी साम्राज्यवाद के कारण, अधोगति देखकर भावुक कवि का हृदय द्रवित हो उठता था—

देश-भक्त का हृदय बड़ा ही होता है बलवान।

शैथ्या काँटों की लगती है उसको फूल समान।^३

वास्तविकता भी उनके देश-प्रेम की यही थी कि वे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक उत्थान के लिए जीवन की कुर्बानी तक को सदैव तत्पर रहते थे।

कलकत्ता में रहने से आपने बंगला का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया एवं राजपूताने में निवास करने से गुजराती आदि को भी सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। त्रिपाठी जी के साहित्यक जीवन का आरम्भ राजस्थान से ही होता है। वहाँ आपने अपने

१. मैं इनसे मिला, पृ० २१—लेखक पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

२. पथिक, पृ० १२

३. मिलन, पृ० ५६

साहित्यिक जीवन का आरम्भ किया तथा नाटक, उपन्यास तथा अनुवाद के क्षेत्रों में अनेक प्रयोग भी वही किये। कारण, वे अनेक विधाओं का नवीनीकरण चाहते थे, जिससे साहित्य समृद्ध हो।

स्वतन्त्रता संग्राम में भाग—१९१५ ई० में पिता के देहान्तोपरान्त वे अपनी जन्मभूमि में लौट आये तथा दो वर्ष के उपरान्त १९१७ ई० में पुनः वह प्रयाग में जाकर रहने लगे। यौवनावस्था की उमरों से उमंगित त्रिपाठीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। आन्दोलन में आपको कठोर कारावास का दण्ड भी सहना पड़ा।

उन दिनों आन्दोलनकारी गरम-दल तथा नरम-दल में खुलकर शामिल हो रहे थे। तरुणों की टोलियाँ, गोलियाँ खाने को सहर्ष तैयार थी। पूरा देश विदेशी सरकार के काले कारनामों से आतंकित तथा दुःखी था। दुःख सहते-सहते आदमी ने तिलक तथा गाँधी का नेतृत्व स्वीकार किया। गाँधीजी ने अन्याय के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया। पूरा देश गाँधी की वाणी तथा उनके भ्रमण से प्रभावित हुआ। गाँधी जी के मन का एक चित्र 'पथिक' में देखिये—

उसने बाहर से समाज की अति विषादमय पाया।

तब भीतर की दशा देखने वह समाज में आया।

तब उसने भीषण समाज के दारुण दृश्य विलोके।

उसका हृदय-विदीर्ण हो गया, आँसू रुके न रोके।

उसने कहा, मुनो हे मेरे प्यारे देश-निवासी।

छाई है जो आज तुम्हारे मुख पर घोर उदासी।

इसका क्या कारण है, तुमने कभी ध्यान से सोचा ?

कौन तरह जनता का जीवन है, जा रहा दबोचा।

जेल से बाहर आकर १९२५ ई० में आपने 'हिन्दी-मन्दिर-प्रयाग' की स्थापना की। इस समय तक वे 'मिलन' एवं 'पथिक' दो अमर खण्डकाव्यों के यशस्वी कलाकार बन चुके थे। उनकी लेखनी के जादू से हिन्दी ससार परिचित हो चुका था। प्रयाग उस समय हिन्दी साहित्य के नव-जागरण का प्रमुख केन्द्र-स्थल बन रहा था। यही पर त्रिपाठी जी का मदन मोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तम टण्डन, डा० काटजू, प्रधान-मंत्री जवाहरलाल नेहरू, सरतेज बहादुर सप्रू, श्री सी० वाई० चिन्तामणि आदि प्रयाग के गण्यमान राजनीतिज्ञों तथा साहित्यिकों से उनका घनिष्ठ परिचय हुआ। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मन्त्रिपद पर भी चुने गये। उनके उत्साह तथा साहस की प्रशंसा स्वयं राजर्षि टण्डन ने प्रयाग सम्मेलन में मुक्त-कंठ से की थी।

मुलतानपुर से आपने 'उद्योग' नाम की 'मासिक' पत्रिका भी निकालना आरम्भ किया था, किन्तु धनाभाव के कारण यह कार्य चल नहीं सका। फिर भी

१९३१ ई० में आपने 'बानर' का सम्पादन किया। तभी कुछ समय तक 'सम्मेलन पत्रिका' का भी आपने कुशलता से सम्पादन किया। इस समय तक आपने सुलतानपुर में अपना निवास स्थान बना लिया था तथा उनका परिवार आजकल वही पर रहता है। इस प्रकार बचपन से ही वे सघर्ष की अट्टालिकाओं को अपने दृढ़ साहस से सदैव नतसिर करते रहे हैं।

जीवन पर प्रभाव—त्रिपाठीजी को स्वाध्याय के बल पर हिन्दी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, उर्दू, मराठी और गुजराती का अच्छा ज्ञान था। उनके ऊपर बंगाली कलाकारों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा था, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है। अपने ऊपर पड़े प्रभावों का उन्होंने बड़े ही स्पष्ट शब्दों में व्यक्तीकरण किया है।

“सबसे पहला प्रभाव तो मेरे ऊपर बंगला-साहित्य का पड़ा। उसमें भी 'बकिम' मुझे सर्वाधिक प्रिय लगते हैं। तब 'रवीन्द्र' का भी उदय हो रहा था। उनका प्रभाव भी मेरे ऊपर है। 'शरत्' के प्रभाव से भी मैं इन्कार नहीं कर सकता। शरत् और बकिम में कला की दृष्टि से शरत् श्रेष्ठ है, परन्तु बकिम का स्थान विस्तृत दृष्टिकोण के कारण शरत् से ऊचा है। बंगला की चित्र-कला मुझे कभी पसन्द नहीं आई है। मैं बंगाल के चित्रों को 'आर्त बंगाल के चित्र' (Material Bengali picture) कहा करता हूँ।”^१

देश की राजनीतिक, सामाजिक आदि परिस्थितियों का प्रभाव कवि पर अवश्य पड़ता ही है। समाज में घटित होने वाली घटनाओं से जब पूरा का पूरा समाज प्रभावित होता है, तब उसीमें सासे लेता हुआ कवि कैसे छूट सकता है। कवि तो सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है तथा उसकी चेतना पर घटनाओं की रेखाएँ अकित न हों, यह सम्भव ही नहीं है। सहृदय व्यक्ति अधिक रागी होता है। उनका रागी मन जीवन में अधिक रमता है एवं वह सभी को जीवना में और अधिक रमाना चाहता है। सृजन के मूल में सामाजिक-चेतना के कशाघात का प्रभाव ही अधिक होता है। सर्जक जीवन-मूल्यों को समाज से ही छीनता भी है तथा सड़े-गले मूल्यों को समाज से छीनकर नष्ट भी करना चाहता है। वह रचना के द्वारा युग-बोध को व्यक्त ही नहीं करता, नवीन दृष्टि-बोध का प्रकाशन भी करता है। कवि का मन तो कार्बन की भाँति होता है, जो दबाव पड़ते ही निशान छोड़ देता है। त्रिपाठी जी के सम्बन्ध में भी यही सत्य है। त्रिपाठी जी ने जिस समय साहित्य में प्रवेश किया उस समय गांधीजी की निष्ठा और तपश्चर्या उनके सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त का प्रभाव देश पर अत्यधिक पड़ रहा था।

“कविवर रामनरेश त्रिपाठी पर गांधी जी के जीवन और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा है। गांधीवाद के दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विचारों की छाप

उनकी कविता में पदे-पदे मिलती है। उनके तीनों खण्ड-काव्य मिलन, पथिक एवं स्वप्न में गांधीवाद की सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति होती है। इसका कारण त्रिपाठीजी के कविकर्म का आरम्भ भी गांधी-युग के आरम्भ में हुआ। सौभाग्य से गांधी जी के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध आजीवन अच्छा रहा और वह समय-समय पर गांधी जी द्वारा संचालित राजनीतिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग भी लेते रहे।^१

स्पष्टरूप से गांधीवाद का उनके जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। परिणाम-स्वरूप उनके समस्त साहित्य से गांधीवादी आदर्श की मधुर-ध्वनि निकलती रहती है।

भारतीय सस्कृति, साहित्य, दर्शन एवं कला का उनपर बहुत प्रभाव पड़ा है। विदेशी कलाकारों का प्रभाव उनके ऊपर उस मात्रा में नहीं है। प्रथम तो उन्हें विदेशियों से घृणा थी, दूसरे उनकी कला उन्हें अच्छी भी नहीं लगती थी। उनकी रुचि का परिष्करण तो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास एवं तुलसी एवं सूर की रचनाओं से ही हो सकता था। 'रामचरित-मानस' का नित्यप्रति पाठ उनका तुलसी में अनन्य श्रद्धा-भाव का प्रतीक है। इसी कारण "कहा नहीं जा सकता कि त्रिपाठी जी तुलसी के अधिक भक्त थे या राम के, और तुलसी कवि के या तुलसी सन्त के।"^२

त्रिपाठी जी के व्यक्तिगत जीवन पर सरजान ल्यूबक की पुस्तक 'यूज ऑफ लाइफ' का प्रभाव गहरा था। उन्होंने स्वयं इसका समर्थन किया है कि—

"मेरे व्यक्तिगत जीवन पर 'यूज ऑफ लाइफ' नामक पुस्तक का व्यापक प्रभाव है। यह पुस्तक सरजान ल्यूबक की लिखी हुई थी। मैंने सभ्य समाज के नियम इसी से सीखे हैं। मैं आज भी उसी नियमों का पालन करता हूँ। उदाहरण के लिये पहली मुलाकात में थोड़ा समय देना अधिक से अधिक पाँच या दस मिनट, और दूसरी मुलाकात गहरी करना। मुझे कालिदास का 'मेघदूत' भी प्रिय था—कला की दृष्टि से। वर्णन की दृष्टि से वाल्मीकि मुझे भाते हैं। कालिदास की कविता निरुद्देश्य है। उन्होंने वही बात कही है जो कवि को कहनी चाहिए। वाल्मीकि ने जनता के लाभ की बात कही है। तुलसी की 'रामायण' ने मेरे जीवन पर अधिक प्रभाव डाला है। इसका कारण है कि मुझे वही कलाप्रिय है, जिससे जनता का अधिक हित हो। हिन्दी के अन्य कवियों में महाकवि नाथूराम शंकर शर्मा की कविता मुझे अच्छी लगती थी। उनकी 'शंकर-सरोज' पुस्तक मैंने पैसे से खरीद कर पढ़ी। विदेशी-काव्य का प्रचार तब कम था और उन दिनों विदेशियों से घृणा भी थी। इसी कारण उनका प्रभाव मेरे ऊपर नहीं पड़ा। वैसे भी कला की दृष्टि से वे फीके हैं।"^३

१ हिन्दुस्तान—गुरुवार-६ अप्रैल, सन् १९७१ ई०—रामप्रताप त्रिपाठी

२. वे लोग वे दिन—लेखक रामानुज लाल श्रीवास्तव

३. पत्रिका-नई धारा, पृ० ४२, जून १९६२, अंक ३

अपने बचपन में ही उन्होंने 'नीति-तरंगिनी' नामक पुस्तक में एक श्लोक पढ़ा था, जो सदा सर्वदा उनका मार्ग-प्रदर्शक रहा एवं जिसके प्रभाव से कभी भी पथ-भ्रष्ट नहीं हुये। वह श्लोक यह है—

“प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा, गौरव घोर रौरवम्।

अभिमान सुरापान, त्रय त्यक्ता सुखी भवेत्॥

व्यक्तित्व—प० रामनरेश त्रिपाठी—लोकप्रिय कवि, सच्चे देशभक्त, प्रभावशाली वक्ता, स्पष्टवादी, प्रतिभा-सम्पन्न उच्चकोटि के कलाकार थे। इसी कारण डा० राम कुमार वर्मा लिखते हैं—“श्री रामनरेश त्रिपाठी का व्यक्तित्व क्या है? एक कवि, आलोचक, नाटककार, उपन्यासकार, टीकाकार, कहानी लेखक, अनुवाद और संपादक।”^१

वास्तव में त्रिपाठी जी का व्यक्तित्व आधुनिक कलाकारों में अनूठा है। मौलिक प्रतिभा से मण्डित, उनका स्पष्टवादी व्यक्तित्व अपनी समता नहीं रखता। उनके सस्कारों में वैष्णव-प्रभाव, विचार-धारा में गांधीवाद एवं राष्ट्रीयता, लेख पर लोकहित 'सुरसरि सम सब कह हित होई' की कला का प्रभाव विद्यमान है।

विचारधारा—त्रिपाठी जी 'सादा जीवन उच्च विचार' की साक्षात् मूर्ति थे। स्वच्छ धवल परिधान के ऊपर गोल टोपी उन्हें अतिशय प्रिय थी। बन्द गले का कोट मानो उनके हृदय में छिपे आदर्श भावों को बाह्य विषाक्त वातावरण से बचाने का प्रयत्न करता रहता था। गौरवर्ण, उन्नत जगमगाता ललाट, छोटे-छोटे सफेद बालों से युक्त-अनुभव का इतिहास कहने वाला बड़ा गोल सिर, सदैव मुस्कराता हुआ सौम्य मुख मंडल, गहरी गम्भीरता, तीव्रता, अनुभूतियों और उदारमना की सहृदयता की ज्योति से ज्योतिर्दो तेजोदीप्त नेत्रों से परिवक्वता छलकती रही थी। नातिस्थूल, नातिदीर्घ, नातिकृश, नातिलघु, मुपुष्ट अगोवाले, त्रिपाठीजी अपने प्रिय मदैवश्वेत शुभ्र धवल परिधान में दूर से ही कोई रईस तबीयत गुजराती सेठ प्रतीत होते थे। उनकी मधुर रस से पूरित रसवन्नी वाणी में उनकी सरसता, मृदुता एवं विदग्धता छलकती रहती थी। उनकी ईषन् मर्म भेदिनी चितवन में प्रौढता, बुद्धिमत्ता एवं सजगता हस-हस कर झाँकती थी। 'सागर सिंह, सप्रूत' की भाँति उन्होंने अपना जीवन-पथ जिसमें अमानिशा का अन्धकार झाँक रहा था उसे अपने तेज से विदीर्ण कर स्वयं अपने पथ को आलोकित किया था। इसी कारण से इनके पास जीवन के विशाल अनुभूतियों की एक विशाल थाती थी। ईश्वर की कृपा से उनकी सोसायटी सदैव उच्च परिवारों, उच्च व्यक्तियों एवं कर्मठ नेताओं के साथ रही। अतः उनकी रहन-सहन, चाल-ढाल, वेश-भूषा, सस्कारों एवं विचारों पर इनका प्रभाव व्यापकता से पड़ा। यद्यपि वे विदेशी बहुमूल्य परिधान के प्रेमी तो न थे लेकिन सदैव उन्हें श्वेत, स्वच्छ परिधान ही विशेष प्रिय थे। आरम्भ से ही उदारमना

त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय आकर्षण था, जो भी उनके सम्पर्क में आता, उसपर उनका अमिट प्रभाव अवश्य पड़ता था ।

त्रिपाठी जी का हृदय-विशाल एव स्वभाव अत्यन्त कोमल एव मधुर था । वे इतने सीधे, अभिमानरहित मिलनसार व्यक्ति थे कि चाहे छोटा या बड़ा कोई भी व्यक्ति उनके पास जाये सदैव उनसे प्रभावित होकर लौटता था । अपने मित्रों एव हितैषियों से तो आपका मिलना बड़ा ही प्रिय था । ‘मालवीय जी के साथ इक्कीस दिन’ इसके प्रमाण हैं । दीन-हीन व्यक्तियों को देखकर उनका कोमल हृदय यह ‘आकांक्षा’ कर उठता है—

होते हम हृदय किसी के विरहाकुल जो,
होते हम आँसू किसी प्रेमी नयन के ।
पूरे पतझड़ में वसन्त की बयार होते,
होते हम जो कहीं मनोरथ सुजन के ॥
दुःख-दलितों में हम आशा की किरण होते,
होते पछतावा अविवेकियों के मन के ।
मानते विधाता का बड़ा ही ऐहसान हम,
होते धन गाठ जो कहीं भी दीन जनके ॥^१

त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व में देशभक्ति एव गांधीवाद का अद्भुत समन्वय पाया जाता है । प्रेम, त्याग, करुणा, उदारता, क्षमा, विनय, सहनशीलता, कर्त्तव्य-परायणता एव अहिंसा के भाव उनके व्यक्तित्व में घुल-मिल गये थे । ‘पथिक’ के नायक के मुख से गांधीवाद में परिपुष्ट यही वाणी निकलती है—

सद्गुण, साहस, सत्य, शूरता, लोकोत्तर उत्तमता,
पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुता, परपालन क्षमता ।
क्षमा, शक्ति, करुणा, उदारता श्रद्धाभक्ति विनयिता,
सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा मन निर्भयता ।^२

कविता के क्षेत्र में वे राष्ट्रीय हैं । स्वदेश-सेवा के उच्च आदर्शों का निरूपण उन्हें प्रिय है । किसी महात्मा से उपदेश सुनकर देश-भक्ति के लिए प्रोत्साहित होकर, देश-सेवा के लिये आत्मोत्सर्ग का आदर्श उनकी रचनाओं में पाया जाता है ।

त्रिपाठी जी वाणी एव लेखनी दोनों के ही धनी कलाकार थे । उनकी लेखनी में एव वाणी में जनसमूह को मन्त्र-मुग्ध करने का गुण था । उनका भाषण जब कभी होता तो लोगों के मुख विस्मय से खुल जाते थे । इसी कारण रामप्रताप त्रिपाठी

१. मानसी, पृ० ३४, तृतीय संस्करण

२. पथिक, पृ० ३०

लेखते है “उनमें रस सृष्टि का अद्भुत चमत्कार है। कारुणिक प्रसंगों को वे इतना जीवन्त बना देते थे कि लोग विह्वल हो जाते थे। एक बार हिन्दू विश्वविद्यालय के उपाधि वितरणोत्सव समारोह पर बोलने के लिए मालवीय जी ने इन्हे बुलाया था। बहुत थोड़ा समय शेष था जब वे बोलने खड़े हुये थे तो सहस्रो छात्र-छात्राओ, प्राध्यापकों तथा सम्मानित अतिथियों के बीच मालवीय जी महाराज इनके सन्दर्भ पर इतने द्रवित हुये कि कण्ठारोध के कारण थोड़ी देर तक बोल ही न सके।”^१

कुशलवक्ता—वे अपनी भाषण-कला के लिए परिचितो तथा मित्रों में ऋतु प्रख्यात रहे है। अपने इस कथन को मैं एक उदाहरण से स्पष्ट करूंगा। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के एक अधिवेशन मे गाँधी जी ने केवल पन्द्रह मिनट बोलने का इन्हे समय दिया, कारण अनेक वक्ताओ ने समयातिक्रमण करके बापू को ऐसा करने को विवश कर दिया था। जब त्रिपाठीजी बोलने खड़े हुए तो तेरह मिनट के अन्दर ही सम्पूर्ण वक्तव्य इतने सुन्दर सुव्यवस्थित और प्रभावोत्पादक ढंग से प्रस्तुत किया कि अनेक बार तालियाँ बजी। अन्त मे अपना दो मिनट का समय गाँधी जी को दान करने की घोषणा करके साथ जब इन्होंने अपना भाषण समाप्त किया तो गांधी जी के साथ सभी लोग हँसकर लोट-पोट हो गये। अन्त मे गांधी जी ने उठकर उनके भाषण, समय-समय एव समय-दान की बड़ी प्रशंसा की।

आत्मप्रशंसा से दूर—त्रिपाठी जी के व्यक्तित्व की सर्वोत्कृष्ट विशेषता थी कि वे झूठी-प्रतिष्ठा से सदैव दूर रहते थे। अपने मित्रो, श्रद्धालुओ द्वारा भी अधिक प्रशंसा सुनकर वे क्षमा माँग उठते थे। सन् १९५४ ई० में प्रयाग के सुप्रसिद्ध दैनिक ‘भारत’ मे ‘आचार्य रामनरेश त्रिपाठी’ नामक प० गौरी शंकर गुप्त का एक लेख प्रकाशित हुआ था। त्रिपाठी जी ने अपने ‘आचार्य’ शब्द पर गम्भीरता से विचार किया एव ‘भारत’ मे ‘शब्दों की मान रक्षा’ शीर्षक निबन्ध जो उनकी दूरदर्शिता, सूझ-बूझ तथा सरलता का परिचायक है लिखकर अपना आशय स्पष्ट किया है। श्रद्धालु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए लिखा “मुझे जो बात प्रिय नहीं लगी वह मेरे नाम के आगे ‘आचार्य’ शब्द। बहुमानास्पद प्राचीन शब्दों को जहाँ कहीं चिपका देना मेरी राय में उनका अपमान करना है। आचार्य तो बहुत बड़ा शब्द है” पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी को आचार्य न कहकर इससे भी बड़ा कोई विशेषण दिया जाता तो सार्थक होता। पण्डित हजारी प्रसाद द्विवेदी को आचार्य शब्द खूब प्यार है।”

इसी कारण उन्होंने आगे लिखा “अतएव मुझे तो माता-पिता का दिया हुआ स्वच्छ नाम ही प्रिय है। इसी से मैंने अपना कोई उपनाम नहीं रखा, जो आजकल के हिन्दी कवियों का एक रोग-सा हो रहा है। जिनके असली नाम उपनाम से सुन्दर

हैं, वे भी इस रोग से ग्रस्त है। अपनी रचनाओं में वे अपना उपनाम का उपयोग भी नहीं करते तो भी लटकाये रहते हैं। विचित्र शौक है !”^१

वास्तव में आजीवन त्रिपाठी जी प्रचार से दूर रहे। “मैं आचार्य तो बिल्कुल नहीं हूँ। और अब कवि भी नहीं हूँ। कभी कवि था तब जानता नहीं था कि कवि किसे कहते हैं, अब जानने लगा हूँ तो कवि शब्द ऐसा भारी लगने लगा है कि मैं उसका बोझ उठाने में असमर्थ हूँ, कविवर शब्द का तो कहना ही क्या। कवि तो वाल्मीकि, व्यास, कालिदास एवं तुलसीदास थे। वर्तमान काल में रवीन्द्रनाथ भी कवि थे। मेरी राय में अन्य कवि तो कवि-वृक्ष की शाखाएँ हैं। शाखाओं को वृक्ष नहीं कहा जा सकता।”^२

प्रकृति-प्रेम—त्रिपाठी जी के हृदय में प्रकृति के प्रति बड़ा अनुराग था। प्रकृति की सुरम्य गोद उन्हें अतिशय प्यारी लगती थी। उन्होंने सम्पूर्ण भारत वर्ष का भ्रमण किया था। भ्रमणशीलता के कारण उनके प्रकृति-वर्णन में अनुभव का पुट एवं सजीवता मिलती है। वे लिखते भी हैं “मैं प्रकृति का पुजारी हूँ”^३ उनका प्रकृति-प्रेम तीनों खण्डकाव्यों में उमड़ता रहा है। इसी कारण ‘पथिक’ में एक स्थान पर वे लिखते हैं—

परम तुच्छ जड़ खग पशु का उपमेय तुम्हारा तन है।

प्रकृति सदा सुन्दरी तुम्हारी यौवन अस्थिर धन है॥

प्रकृति-प्रेम उनके व्यक्तित्व में घुलमिल गया है। वास्तव में प्रकृति के सुकुमार तन्तुओं से मिलकर ही उनका व्यक्तित्व बना था। इसी कारण डा० रामेश्वर लाल खडेलवाल का कहना है कि “पं० रामनरेश त्रिपाठी का हृदय भी उत्ताल-तरंगों से तरंगित है। उन्होंने स्थल-स्थल पर प्रकृति-सौन्दर्य जन्य बड़ी गहरी, विह्वल एवं रसीली व्यञ्जना की है।”^४

अन्तिम दिन—सरस्वती पुत्र रामनरेश त्रिपाठी ने अल्प-काल में ही भारती के भण्डार को बहुत समृद्ध बनाया है। वास्तव में वे हृदय से कवि, लेखनी से आलोचक-सम्पादक, मस्तिष्क से विचारक, वाणी से वक्ता एवं अभिव्यक्ति से युगदृष्टा थे। महान् कलाकार त्रिपाठी जी ने लगभग पचास वर्ष की अवस्था में सन् १९४१ ई० से ही साहित्य से संन्यास-सा ले लिया था। वे अक्षय सौन्दर्य कोश प्रकृति की चिर लुभावनी गोद में विश्राम ले गये थे। अपने मित्र गौरीशंकर गुप्त को एक पत्र के उत्तर में लिखते हैं—

१. आजकल जनवरी—१९६२

२. वही

३. स्वप्न, पृ० १—रामनरेश त्रिपाठी

४. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, पृ० २७६

जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व

“यह जरूर जानता हूँ कि जन्म-भर लिखते रहना ही कोई काम नहीं है। वर्षों से जी ऊबता है तो रामचरित-मानस या वाल्मीकि-रामायण पढ़ने लगता हूँ। वाल्मीकि-रामायण छः सात बार पूरा पढ़ गया। रामचरित-मानस के बार की तो गिनती ही नहीं।”^१

तुलसी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा लगातार बढ़ती ही गई। उसमें मुरसरि सम सब कह हित होई के साथ-साथ—

रामचरित मानस इहि नामा ।

सुनत श्रवण पाइहि विश्रामा ॥

बाह्यसृजन से हटकर आन्तरिक-सृजन में लग गये थे। सदैव साधन-लीन रहना उनका धर्म हो गया था। घुटन के वातावरण को छोड़कर वे शान्त, स्वच्छन्द विचारण करते रहे लेकिन उनको तडप साहित्य जगत् की आती रहती थी—“संन्यास तो मैंने अवश्य लिया है, पर मेरी हालत उस दीवाने की-सी है, जिसके विषय में किसी शायर ने कहा है कि—

घर में जी लगता नहीं, मैफिल से घबड़ाता है दिल

फिर कहाँ ले जाके रक्खे, ऐसे दीवाने को हम

(मै इनसे मिला, पृ० ३१)

उस समय भी उनकी इच्छा थी—“लेकिन तब भी मैं अब कुछ गम्भीर कार्य नहीं करना चाहता। इतना अवश्य करना है कि सयुक्तप्रान्त के अडतालिस जिले है, उनमें एक ही डिजायन के तुलसी-सत्सग भवन बनवाने है, जिनमें सप्ताह में एक दिन तुलसी ग्रन्थों की चर्चा या अन्य साहित्यिक व्याख्यान हुआ करे। उसमें एक कमरा ‘हिन्दीपरिषद्’ या प्रचार का भी रहे।”^२ इसके अतिरिक्त यदि हो सका तो, ग्राम-गीतों का सम्पादन अभी और पूरा करना है।”^२

हिन्दी का प्रेम आजीवन उनके हृदय में उमड़ता रहा। सन् १९६२ में ‘सरस्वती’ के हीरक जयन्ती समारोह में भाग लेने अपने जन्म ग्राम से वे प्रयाग गये थे एव उसमें वे सम्मिलित भी हुये थे। वही वे हृदय-रोग से सहसा आक्रान्त हुये और स्वर्गवासी हो गये। युगो तक सरस्वती की उपासना में तन्मय रहकर उन्होंने अपना सुन्दर स्वास्थ्य वर्षों पूर्व खो दिया था। बहत्तर वर्ष की अवस्था में, १६ जनवरी १९६२, में उनका जीवन, दीप निर्वाण को प्राप्त हो गया। वे सरस्वती के ऐसे पुत्र थे, जिनकी पूति असम्भव ही लगती है।

वास्तव में उनका जीवन अनुकरणीय एव स्मरणीय है। उनके बारे में यही

१. आजकल पत्रिका, जुलाई १९६२—गौरी शकर गुप्त

२. मै इनसे मिला, पृ० ३२—पद्मसिंह शर्मा ‘कमलेश’

कहा जा सकता है, जो मैथ्यू-आर्नल्ड ने सेक्सपियर के विषय में कहा था—

Self Schooled—self scanned

Self honoured—self secured

उनके विषय में यहाँ भी प्रचलित है—

कविवर रामनरेश त्रिपाठी ।

लूटा यश मार कृति लाठी ॥

कृतित्व—

बहुमुखी-प्रतिभा—त्रिपाठी जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे । द्विवेदी-युग के प्रमुख साहित्यिकों में श्री रामनरेश त्रिपाठी का विशेष स्थान है । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाँति त्रिपाठी जी का भी ध्यान कविता के अतिरिक्त साहित्य के अनेकानेक अंगों पर गया । उन्होंने व्याकरण सम्मत गद्य-पद्य के मार्ग को परिष्कृत कर प्रशस्त किया । उन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना और नाटक आदि अंगों पर समान रूप से रचनाएँ करते हुये अनुवाद, सम्पादन और सग्रह-कार्य भी किया । साथ ही साथ बाल-साहित्य तथा स्त्री-साहित्य के लिये भी अपनी प्रतिभा का प्रयोग किया । ‘रामचरित-मानस’ की एक-सम्मानित-टीका लिखकर आपने जो गौरव प्राप्त किया है, वह श्लाघनीय है ।

त्रिपाठी जी ग्राम-साहित्य एवं कविता-कौमुदी के सग्रहों के कारण भी साहित्याकाश में सदैव अमर रहेंगे । इसी कारण डा० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा “अतः साहित्य के जितने अंगों पर त्रिपाठी जी ने रचना की है, उतने अंगों पर साहित्य के किसी लेखक की लेखनी ने काम नहीं किया । इस क्षेत्र में त्रिपाठीजी अद्वितीय हैं ।”^१

एक ओर जहाँ त्रिपाठी जी ने कवि और समालोचक बनकर साहित्य की अनुभूति और विवेचना की है, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने हमारे बालकों के सामने मीठी और गुपचुप कहानियाँ कहकर उनका मनोरंजन भी किया है । श्री रामनरेश त्रिपाठी एक भावुक एवं विचारक साहित्यकार हैं । उनकी प्रतिभा में कारमित्रि एवं भावमित्रि दोनों का सहज समन्वय है । इसी कारण वे केवल कविमात्र न होकर सम्पूर्ण साहित्यिक हैं ।

काव्य—त्रिपाठी जी का सर्वाधिक उभरा हुआ रूप कवि रूप ही है । त्रिपाठी जी ने अपने समस्त काव्यों में ऐतिहासिक, पौराणिक कथानकों को न अपनाकर स्वच्छन्द कल्पना-प्रधान कथानकों को ही अपनाया है । साहित्य-क्षेत्र में सर्वप्रथम उनका

१. आधुनिक हिन्दी-काव्य, पृ० ७४—सम्पादक डा० धीरेन्द्र वर्मा

— डा० राजकुमार वर्मा

प्रथम खण्डकाव्य—मिलन (१९१४) प्रकाशित हुआ। 'मिलन' में देश-भक्ति की भावना एवं उन्मुक्तकल्पना का विशाल प्रागण है। तत्पश्चात् उनका दूसरा खण्ड-काव्य 'पथिक' १९१७ ई० में प्रकाशित हुआ। इसके प्रकाशित होने पर चारों ओर धूम मच गई। राष्ट्रपिता बापू ने लिखा "पथिक मैंने एकबारगी सम्पूर्ण पढ़ लिया। वक्त कब मिले और कब फिर पढ़े।" मदन मोहन मालवीय जी ने लिखा "पथिक की रचना बहुत ही सरस एवं प्रभावोत्पादक है। इस पुस्तक का पहला संस्करण एक लाख प्रतियों का होना चाहिये।"^१ पथिक के समय गान्धीवादी प्रभाव त्रिपाठी जी पर पूर्णरूपेण था। वास्तव में गान्धीवादी का आदर्श रूप ही इस अमर कृति में उभरा है। उनका तीसरा और अन्तिम खण्ड-काव्य 'स्वप्न' सन् १९२६ ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें दक्षिण-यात्रा का प्रकृति-वर्णन, आदर्श गान्धीवाद का रूप एवं कथानक कल्पनात्मक है।

उनकी एक मुक्तक रचना कृति 'मानसी' भी है। कविता-संग्रह 'मानसी' भाव चित्रों से पूर्ण है। इसमें भाव-वैविध्य, विषय-वैविध्य एवं कल्पना का विशेष भाग है। "मेरे करुणा निधि का आसन गरम होगा, कौन जाने कब मेरे शीतल उसास से" में कवि का हृदय व्यथित है।

कविता के क्षेत्र में वे राष्ट्रीय हैं—जन्मभूमि भारत, क्या होम रूम लोगे, विदेश गति, अन्वेषण, बाइसिकल, शारद-तरंगिनी, पुस्तक प्रार्थना, माता का उद्धार, विद्यार्थी आदि उनकी फुटकल कविताये हैं जिनमें प्रबल आत्माभिव्यक्ति का वेग है।

परन्तु इतना होते हुये भी 'पथिक' से उन्हें प्रतिष्ठा बहुत मिली। इतनी प्रतिष्ठा बहुत कम साहित्यकारों को उनके जीवन में मिलती है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि—“पथिक लिखने के बाद मुझे सर्वाधिक सन्तोष हुआ। उन दिनों मेरे ऊपर गांधीजी के जीवन का प्रभाव था, उसी को मैंने 'पथिक' में व्यक्त किया है। यह खड़ी-बोली का सर्वप्रथम राष्ट्रीय—कथात्मक खण्ड-काव्य है। इसमें पौराणिक या ऐतिहासिक कथानक का आधार नहीं लिया गया। इसके बाद 'स्वप्न' नामक रोमाण्टिक कृति का प्रकाशन हुआ, यह भी विधा की दृष्टि से खण्ड-काव्य है। कला की दृष्टि से कुछ विद्वान् 'पथिक' से 'स्वप्न' को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं किन्तु मुझे 'पथिक' से अधिक तुष्टि मिलती है।”^२ उन्होंने 'पथिक' को दक्षिण-यात्रा का एवं 'स्वप्न' को उत्तर-यात्रा का स्मृति-चिह्न बताया है। उन्होंने यह भी कहा है कि—

“मैंने इक्कीस दिन में 'पथिक' तेरह दिन में 'मिलन' और दो महीनों में 'स्वप्न' की रचना की।” स्पष्ट है कि उन्होंने धारावाहिक रूप में समस्त काव्यों को बड़े ही

१. वे दिन वे लोग—नई धारा पत्रिका, पृ० ४२, जून १९६२

—ले० रामानुजलाल श्रीवास्तव

२. मैं इनसे मिला, पृ० २४—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

सहज भाव से लिखा है। वास्तव में आचार्य प्रवर रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन सत्य ही है कि—

“त्रिपाठी जी के तीनों खण्ड-काव्य उक्त देश-भक्ति के भाव से प्रेरित हैं। देश-भक्ति का यह भाव उनके मुख्य-पात्रों को जीवन के कई क्षेत्रों में सौंदर्य प्रदान करता दिखाई पड़ता है—कर्म के क्षेत्र में भी, प्रेम के क्षेत्र में भी। वे पात्र कई तरफ से देखने में सुन्दर लगते हैं। देश-भक्ति को रसात्मक रूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ इसमें सन्देह नहीं।” (हिन्दी साहित्य का इतिहास) उनके काव्य में प्रेम एवं स्वच्छन्दतावाद की विशेषताएँ मिलती हैं, जिनमें युग-बोध का समग्ररूप उभर कर ऊपर आ गया है।

उपन्यास—त्रिपाठीजी का दूसरा रूप उपन्यासकार का है। उनका ‘वीरागना’ नामक उपन्यास १९११ ई० में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में नवयुग की नवीन ज्योति है। इसके साथ-साथ १९११ ई० में आपका ‘वीरबाला’ उपन्यास भी आ गया। इस उपन्यास में नवयुग के नारी-जागरण एवं उत्थान की स्पष्ट झलक है। सन् १९१८ ई० में आपका ‘मारवाड़ी तथा पिशाचनी’ नामक उपन्यास भी साहित्याकाश में अवतरित हुआ। त्रिपाठीजी के ‘लक्ष्मी’ एवं ‘सुभद्रा’ उपन्यास पीछे के हैं। उस समय तक उपन्यास साहित्य उन्नति कर रहा था। देवकीनन्दन खत्री, गोपाल राम महमरी आदि के उपन्यास श्रद्धाति प्राप्त कर चुके थे। त्रिपाठी जी ने इस परम्परा से भी बहुत कुछ ग्रहण किया। जासूसी एवं ऐयारी त्रिपाठी जी के उपन्यासों की कथावस्तु में एक अपना स्थान रखती है। इन्होंने कौतूहल एवं रोचकता का विशेष ध्यान रखा है। उनके उपन्यासों में सत् एवं असत् चरित्रों को अलग-अलग दिखाकर अन्त में सत् पात्रों की विजय असत् पात्रों पर सदैव दिखालाई जाती है। त्रिपाठी जी अपने आदर्श में कभी भी ठेस नहीं लगने देते हैं। इसी कारण आदर्श-प्रधान चरित्रों में वे स्वयं बोलते रहते हैं। उनके चरित्र-चित्रण में कोई मौलिकता नहीं है, साथ ही कला की दृष्टि से भी ये उपन्यास साधारण कोटि में आते हैं।

त्रिपाठी जी अपने उपन्यासों में औपन्यासिक कला का विकास कम कर सके हैं। इनमें भारतेन्दु-युगीन उपन्यासों की रूढ़ियों का पालन अधिक हुआ है। साथ ही वे अपने उपन्यासों में उपन्यासकार की गद्दी को छोड़कर उपदेशक, समाज-सुधारक तथा नेता का आसन ग्रहण कर लेते हैं। अपने उद्देश्य को थोपने के चक्कर में सहजता नष्ट कर लेते हैं, पात्र फीके पड़ जाते हैं, घटनाओं का परिवेश उभर नहीं पाता, सवाद भाषण बन जाते हैं। बार-बार पाठक को उनसे यही शिकायत होती है कि वह धर्म-ग्रन्थ नहीं उपन्यास पढ़ रहा है या पढ़ना चाहता है। सर्जना का रूप उभर ही नहीं पाता तथा एक घिसा-पिटा उपदेश का रूप उभरता है। उपन्यास में उद्देश्य का आरोपण न होकर घटनाओं के द्वारा ही उद्देश्य की व्यञ्जना होनी चाहिए। फिर

उपन्यास भी ऐसी सर्जना नहीं है कि आप मनमाने ढंग से कुछ भी कहिए, उसकी अपनी समयित रचना-प्रक्रिया है। उस सरचनात्मक घरातल को यदि उपन्यासकार खण्डित कर देगा, तो कृति में अनेक दोषों का जन्म सहज ही होगा। यही कारण है कि उनके उपन्यास सरल-शैली में लिखे हुए होने पर भी, कलात्मक सौंदर्य के अभाव में अपना कोई स्थान नहीं बना सके। वैसे सामाजिक उपन्यास 'सुभद्रा' अन्य उनके उपन्यासों की तुलना में ठीक है।

'सुभद्रा' सामाजिक कोटि का समर्थ उपन्यास है। जिसका आरम्भ बड़े नाटकीय ढंग से हुआ है। नारी-सौंदर्य की यहाँ पर थोड़ी-सी प्रशंसा है। सुभद्रा एव सुशीला का चरित्र बड़ा उभर कर आया है। "ईश्वर करे सब भारतीय बहिनो को वैसा ही फल मिले" इस उपन्यास का अन्तिम वाक्य है। कथानक में एकान्विति का अभाव ही कहा जायेगा, साथ ही कथा-विधान में आदर्श के वाक्य नीरसता उत्पन्न करते हैं। हाँ, इनकी शैली बड़ी सरल एव सरस है। भाषा बड़ी बोधगम्य एव जनभाषा है।

नाटक—

त्रिपाठी जी ने नाटको के क्षेत्र में भी नये प्रयोग करने चाहे हैं, किन्तु इन प्रयोगों में उन्हें सफलता नहीं मिल सकी है। इसका प्रमुख कारण तो यही है कि उन्हें नाट्य-कला का पर्याप्त ज्ञान शायद नहीं था। दूसरे उन्होंने 'अभिनय-कला' की बारीकियों को पकड़ ही नहीं पाया। जिस समय त्रिपाठी जी नाटक लिख रहे थे, उस समय नाट्य-मंच अविकसित अवस्था में था। पारसी थियेट्रो की कलाबाजी अपनी सीमा पर थी। यद्यपि भारतेन्दु ने नाटको में समर्थ प्रयोग किए थे तथा उनको 'अन्वेर नगरी' एव 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में पर्याप्त सफलता भी मिली थी तथापि वे नाटको के क्षेत्र में कोई नवीन कीर्तिमान स्थापित नहीं कर सके थे। उनके ऊपर जीर्ण संस्कृत नाट्य-परम्परा का प्रभाव अधिक रहा तथा पश्चिमी नाटको की कला का वे अनुकरण या प्रभाव ग्रहण भी नहीं कर सके थे। इस प्रकार त्रिपाठी जी के समक्ष हिन्दी में समृद्ध नाट्य-परम्परा का अभाव था। उन्होंने पश्चिमी-नाटको के प्रबल वेग का अनुभव किया तथा 'अजनबी' नामक नाटक में 'समस्या-नाटक' का पश्चिमी रूप अपनाया है। पश्चिमी नाट्य-प्रयोगों को त्रिपाठी जी सुकरता नहीं दे सके, लेकिन, उनके ही समय में जयशंकर प्रसाद, हरिकृष्ण, प्रेमी आदि ने नाटकों के क्षेत्र में सराहनीय सफलता प्राप्त की थी। त्रिपाठी जी के नाटक भी उपन्यासों तथा काव्यों की भाँति उपदेश-प्रधान हैं। त्रिपाठी जी भारतीय जागरण से प्रभावित कृती हैं, इसलिए साहित्यिक चौकीदारी का काम छोड़ नहीं पाये। यही कारण है कि उनके नाटको का भी उपन्यासों की भाँति ही स्वागत हुआ तथा ये भी साहित्य के क्षेत्र में अपना स्थान नहीं बना सके।

त्रिपाठी जी का प्रथम नाटक जयन्त १९३३ ई० में प्रकाशित हुआ। यह सामाजिक कोटि का नाटक है। नाटक में तीन अंक हैं तथा छब्बीस छोटे-छोटे अंकों में पूर्ण होता है। दीन-दुखियों के प्रति करुणा का विकास इस नाटक में हुआ है। भाषा की मधुरता एवं तरलता के कारण यह नाटक अभिनयोपयोगी है। नाटक सुखान्त है पर आदि से अन्त तक लेखक ने आदर्शवादिता का कड़ा अकुश रखा है। जयन्त नाटक में 'माँ कल्याणी एवं कुसुम' के चरित्र बड़े प्रभावशाली हैं।

'प्रेमलोक' दूसरा नाटक है। इस नाटक में पाँच अंक एवं उन्नीस दृश्य हैं। शेष सभी दृश्य इसी लोक के हैं केवल प्रथम तथा द्वितीय दृश्यों में चन्द्रलोक का वर्णन है। प्रेम-लोक नाटक स्त्रियों के लिए बड़ा लाभदायक है। इसका कारण है 'किरण' तथा 'तारा' चन्द्रलोक से आकर, यहाँ दुःखमय ससार में प्रेम का अभाव पाकर निराश होकर लौट जाती हैं। कला की दृष्टि से नाटक का विशेष महत्त्व नहीं है। कथोपकथन बड़े मार्मिक है। लेकिन द्विवेदी-युग में 'चन्द्रलोक' पर पात्र को पहुँचाना, उनकी कल्पना का वह रूप है, जो आज विज्ञान ने सत्य कर दिया है। इस नाटक से उनकी पत्नी भविष्य दृष्टि का भी संकेत मिलता है।

'कन्या का तपोवन' (समुराल) सन् १९५२ में प्रकाशित हुआ। नाटक में तीन अंक एवं छत्तीस दृश्यों को अरनाया गया है। यद्यपि 'प्रेम-लोक' नाटक का ही यह अगला संस्करण है तथापि यहाँ पर नाटकीय कला में विशेष सजगता है। दृश्य अत्यन्त लघु हैं। दोनों नाटकों की कथावस्तु का कोई साम्य नहीं है। कथानक में एक कन्या 'इन्दुमती' की कहानी है। यह नाटक दो सम्पन्न परिवारों में बेमेल-सम्बन्ध हो जाने से, उसका क्या प्रभाव पड़ता है, इन तथ्यों से निर्मित है। रूढ़ि परम्परा का पति मदन मोहन भी सम्पन्न परिवार का है, पर बौद्धिक विकास के अभाव में सभी काम बिगड़ जाता है। इसी नाटक में पति-पत्नी का आदर्श रूप देवेन्द्र एवं कृष्णा में मिलता है। यह नाटक भी स्त्रियोपयोगी है। कथानक घिसा-पिटा है। पर नाटक-कार जिस उद्देश्य को लेकर चला था उसमें वह पूर्ण सफल है।

उनका तीसरा नाटक 'अजनबी' है जो १९४६ में 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' से प्रकाशित हुआ। इस नाटक में वर्तमान सभ्यता की सजीवता है। यहाँ पर उनकी शैली पर पाश्चात्य प्रभाव (शा और इब्सन) का भी झलकता है। यह उनका 'समस्या-मूलक' नाटक है। तीन अंकों के इस नाटक में वर्तमान सभ्यता का नग्नचित्र प्रस्तुत किया गया है। इनका नायक 'अजनबी' पहाड़ी देश का है, लेकिन उसकी बुद्धि बड़ी प्रखर है। आरम्भ में वह 'रेलगाड़ी' को अजगर समझता दिखलाया गया है पर बाद में वह बुद्धिमान् बन कर भ्रमण करता है।

'अजनबी' को अशिक्षितों से पूरी सहानुभूति है। लेखक का सांसारिक ज्ञान यहाँ बहुत उभरा है। पात्रों में वैविध्य है, डाक्टर, वकील, नेता, शिक्षक, ग्रेजुएट,

प्रधानमन्त्री आदि पात्र है। यह नाटक अभिनय के दोषों से युक्त है अतः रगमच पर इसका सफल अभिनय नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह साधारण कोटि का नाटक है, तथापि इसमें लक्ष्मी नारायण मिश्र जैसी मनोवैज्ञानिकता एवं सरसता है। व्यंग्य इस नाटक का प्राण है।

‘पैसा परमेश्वर’ अजनबी का ही सशोधित सस्करण है, जो १९५१ ई० में प्रकाशित हुआ था। इसमें तीन अंक एवं बत्तीस दृश्य हैं। प्रथम सस्करण के कई दृश्य निकालकर नये दृश्य जोड़ दिये गए हैं। “पैसा जो मनुष्य का श्रेष्ठतम अधिकार है— पैसे ने उसकी जगह पर पूरा अधिकार जमा लिया है और वही परमेश्वर हो गया है।”

एकांकी—बा और बापू

यह नाटक १९५३ ई० में प्रकाशित हुआ। यह प्रथम एकांकी नाटक है। इसकी कथावस्तु-युगपुरुष महात्मा गांधी तथा आदर्श माता कस्तूरबा के, सच्चे जीवन की घटनाओं पर आधारित है। माँ कस्तूरबा की कर्मठता एवं गांधीजी की विनोद-प्रियता का चित्रण करना ही नाटक का उद्देश्य है।

‘ताता नानी’ का कथानक ऐतिहासिकता के साथ-साथ नवीनता भी रखता है। यहाँ पर नाटककार का संगीत ज्ञान स्पष्ट झलकता है। संगीतार्चा तानसेन ‘दीपक-राग’ अशुभ वेला में आकर असाध्यरोग से रोगी हो जाता है। लेकिन वह राग से बना रोगी राग की दवा से ही स्वस्थ हो जाता है। ‘कुणाल’ अन्तिम एकांकी है। इसकी कथा भी ऐतिहासिक ही है। ‘स्वप्नो के चित्र’ में त्रिपाठी जी बहुत विनोदी हो गये हैं।

कहानी—

द्विवेदी-युग साहित्यिक-विधाओं में प्रयोग की दृष्टि से अद्भुत है। इस युग के साहित्यकार साहित्य का सर्वांगीण विकास करना चाहते थे। इस विकास के लिए आवश्यक था कि काव्य के साथ कथा-साहित्य को भी समृद्ध बनाया जाए। इसी लगन ने इस युग के साहित्यकारों को नवीन दिशाओं की ओर मुड़ने का अवसर दिया। त्रिपाठी जी भ्रमणशील बहुत रहे, कहानियों में डूबना उन्हें भाता रहा। वैसे भी कहानियाँ, भारतीय समाज की बहुत प्राचीन सम्पत्ति रही हैं तथा उनके द्वारा मनोरंजन एवं लोक-कल्याण दोनों ही हुआ है। ‘जातको’ तथा ‘पंचतन्त्र’ की कहानियाँ तो विश्व में अपनी तुलना नहीं रखती। अतः यहाँ के मानव की कहानियों में आदिम आस्था है। अपनी बात को वह आज भी एक कहानी सुनाकर स्पष्ट करता है। उसकी यह शैली विश्वास दिलाती है कि कहानी जीवन का अनिवार्य अंग है। जिसमें घटना-

त्मकता या वर्णनात्मकता के सहारे जीवन के किसी एक अंग पर प्रकाश पड़ता है। त्रिपाठी जी ने यही मानकर इन कहानियों को पूर्व-परम्परा में जोड़ना चाहा है। कहानियाँ अनुभव-प्रधान तथा मार्मिक हैं। जीवन में घटी घटनाओं के प्रत्यक्ष रूपों को इनमें ढाला गया है। जोश तथा होश दोनों को सम्हाल कर उन्होंने इनमें जीवन्तता, सहजता तथा विश्वास का तत्त्व उत्पन्न किया है। उपन्यासों में फीके त्रिपाठी जी अपनी इन कहानियों में बड़े चमके हैं। उनमें शिल्प की दृष्टि से निखार है तथा कहानी-कला के वे सभी तत्त्व सहज ही उपलब्ध हैं, जिनकी हम सामान्य कहानियों में अपेक्षा करते हैं। त्रिपाठी जी की तुलना, चतुरसेन, प्रेमचन्द या गुलेरी जी से नहीं की जा सकती है, लेकिन अपने समसामयिक कवि सियाराम शरण गुप्त जी की कहानियों से उनकी तुलना अवश्य की जा सकती है। इन दोनों में ही कला की दृष्टि से बड़ी समानता है। उद्देश्य की दृष्टि से थोड़ा अन्तर अवश्य है कि सियाराम शरण की कहानियाँ करुणा से प्लावित हैं तथा त्रिपाठी जी की राष्ट्रीय-चेतना तथा सामाजिक व्यंग्यों से भरी है। उनका 'कहानी-संग्रह' समय-समय पर प्रकाशित कहानियों का सकलन है। इसमें ग्यारह कहानियाँ हैं। लेखक ने सभी कहानियों को 'आँखों देखी कहानियाँ' कहा है। पहली कहानी 'प्रेम की पहली पीड़ा' है। 'सुहाग रात का उल्लू' कुमुद अपने परिचित सहपाठियों के साथ तथा नौकर नौकरानियों द्वारा अपनी पत्नी के गुणों को सुनकर, लज्जित हो सुहागरात के दिन छोटी-सी बात पर घर छोड़कर भाग जाता है। इसी पति को उल्लू की सजा दी जाती है। 'भीख न मँगव' में बड़ी सरसता है। 'वह फिर नहीं हँसे', 'चौहत्तर बरस का जवान', 'दातादीन', 'गरीब का हृदय', 'नई बहू पुरानी सास', 'उन बच्चों का क्या हुआ', बड़ी रोचक कहानियाँ हैं। सभी कहानियाँ घटना-प्रधान हैं। सरसता उनका प्राण है। 'बफाती-चाचा' में व्यंग्य-विनोद बहुत उभरा है।

मालवीय जी के साथ तीस दिन—

यह जीवनी साहित्य के अन्तर्गत आता है। "मैंने जो कुछ देखा, जो कुछ सुना और अपनी अल्पमति से जो कुछ समझा, सबका मैंने संग्रह कर दिया है"^१ यद्यपि बाबू गुलाब राय ने इसे जीवनी तथा आत्मकथा के बीच की चीज बतलाई है^२ तथापि इनमें स्मरणकार का रूप ही प्रमुख हो उठा है। इन्हे रेखाचित्र भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि रेखाचित्र में शब्दों को विचारों की सीमा में ढालकर किसी घटना या व्यक्ति का व्यक्तित्व उभारा जाता है। रेखाचित्र, चित्रकला का शब्द है। यह शब्द

१. मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ८

२. काव्य के रूप (प्रथम बार), पृ० २५८

साहित्य में कहानी से अलगाव रखता है। घटना कहानी का मूल है, जिसका वह गत्यात्मक रूप है। रेखाचित्र विश्लेषणात्मक तथा स्थिर होता है। रेखाचित्र में शब्दों की रेखाएँ अपनी मूर्तिवत्ता रखती हैं। इस दृष्टि से 'मालवीय जी के साथ तीस दिन' को रेखाचित्र की कोटि में रखना उचित नहीं है, ऐसा कहने में एक और बाधा है— वह है इनमें स्मरणात्मक अंशों का आधिक्य। यह आधिक्य इन्हें स्मरण (मेमायर्स) कहने को मजबूर-सा करता है। वैसे भी रेखाचित्र तथा स्मरण में किसी प्रकार का मूल भेद नहीं है। दोनों ही अपने रूप-शिल्प में सहोदर हैं। स्मरण का व्यक्ति काल्पनिक न होकर वास्तविक होता है। रेखाचित्र काल्पनिक तथा वास्तविक दोनों हो सकता है। इस दृष्टि से देखने पर त्रिपाठीजी की यह कृति स्मरण के अन्तर्गत ही आती है। मालवीय जी की विचार-धारा को लेखक ने नपे-तुले शब्दों में प्रभाव-शाली ढंग से रखा है।

सम्पादन — त्रिपाठी जी जिम कार्य के लिये सदैव अमर होकर पथ-प्रदर्शन करते रहेगे, वह उनके सग्रह-ग्रंथों का क्षेत्र है। जिसे देखकर साधारण मानव की बुद्धि चकरा जाती है। इसी कारण रामानुज लाल श्रीवास्तव लिखते हैं कि "उच्चकोटि का मौलिक गद्य-पद्य साहित्य तो व्यक्ति के बूते का है पर इतना सकलन, सम्पादन, शोध त्रिपाठी जी ने अकेले दम से कैसे कर लिया, यह चकित कर देने वाली बात है। किसी को सस्थाओं का सहारा था, किसी को विद्यालयों, सहयोगियों, शिष्यों का। पण्डित जी अपने सहारा आप थे, उनकी लेखनी या पैर जो देश भर में दौड़ लगाते रहे।"^१

सन् १९१७ ई० में जब 'कविता-कौमुदी' का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ तब हिन्दी साहित्य के सागर में वह हिलोर आई जिससे समस्त कविता-प्रेमी सराबोर हो गये। यदि त्रिपाठी जी यश एव सम्मान के ही भूखे होते तो एकमात्र इसी से उनकी समस्त भूख मिट गई होती। इस पुस्तक को देखकर विश्वकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लिखा था—

"हिन्दी कवितारूप ए रूप सुन्दर एव धारावाहिक सग्रह आमि आर कोषाओ देखा नाई। अपनी ए ई कवितागुलि प्रकाश करिया भारतीय साहित्यानुरागी व्यक्ति-मात्र केइ चिरकृतज्ञता आबद्ध करिया छैन।"

(गुरुवर टैगोर)

भारतवर्ष से ही नहीं विदेशों से भी कई प्रशंसात्मक पत्र आये जैसे सर जॉन ग्रियर्सन, श्री ह्यूहर्स्ट, श्री फरकहार आदि। भारतवर्ष में त्रिपाठी जी यश के नहीं, सेवा के भूखे थे। क्योंकि—

यह संसार मनुष्य के लिये—

एक परीक्षा स्थल है ।

सन् १९२१ में 'कविता-कौमुदी' का दूसरा भाग प्रकाशित हुआ । इसकी निम्नलिखित विशेषतायें अनुकरणीय बनी ।

(१) ये ग्रंथ मात्र संकलन नहीं थे । कविताये, काल के अनुसार क्रमबद्ध थी । कवियों के जीवन की जितनी भी जानकारी उपलब्ध हो सकी थी, दे दी गई । त्रिपाठी जी ने भूमिका रूप में प्राचीन एवं नवीन कविता का विकास दिया ।

(२) आगे जो कविता-संग्रह प्रकाशित हुये जो बृहद् या संक्षिप्त हिन्दी के इतिहास प्रकाशित हुये या अलग-अलग कवियों के काव्य प्रकाशित हुये उन सबके मूलाधार थे ।

(३) लगभग इसी समय हिन्दी उच्चकक्षाओं में पढाई जाने लगी । इन ग्रंथों ने पाठ्य-पुस्तकों के रूप में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सेवा की और आज भी कर रहे हैं ।

(४) इन संग्रहों में त्रिपाठी ने सयम रखा तथा उन्होंने अपनी कविता की एक पंक्ति भी इनसे प्रकाशित न की ।

कुछ समयोपरान्त तीसरा भाग संस्कृत तथा चौथा उर्दू का प्रकाशित हुआ । संस्कृत भाषा तो भारतीय साहित्य का प्राण है, वह धर्म एवं संस्कृति का अक्षय भण्डार-गृह है । उर्दू भी हिन्दी की एक सहायक प्रिय शैली है । उसमें विशुद्ध ज्ञानपरक काव्य भी है एवं मनोरंजक प्रधान भी । वह जन-प्रिय तो नहीं, नवयुवक-प्रिय अवश्य रही है । इन दोनों भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास भी त्रिपाठी जी ने बड़े विवेक एवं परिश्रम से प्रकाशित किया । देवनागरी लिपि में उर्दू काव्य इतने विशुद्ध और क्रमबद्ध रूप में पहले कभी प्रकाशित नहीं हुआ था । उर्दू का यह ग्रंथ त्रिपाठी जी को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कराने वाला प्रथम ग्रंथ है ।^१

ग्रामगीत कविता-कौमुदी के पाचवे एवं छठे भाग हैं । इनको प्रथम चार भागों से अलग मानना ही चाहिये । प्राचीन चार संग्रहों का कार्य तो घर बैठ कर किया जा सकता था लेकिन ग्रामगीत या ग्राम-साहित्य तो अत्यधिक परिश्रमसे, दौड़-धूप से सम्पादन किया जा सकता था । इस नवयुग की नव ज्योति में आकर लोग ग्राम-गीतों का महत्त्व तो समझने लगे थे, लेकिन ग्राम-साहित्य का कोई संग्रह नहीं था । ग्राम-साहित्य का भी महत्त्व है यह तो अंग्रेजों के 'फोक-सायर्स' एवं 'फोक-टेलर्स' से समझ आ गया था । त्रिपाठी जी भविष्य-निर्माणकर्ता थे । उन्होंने इस अमूल्य निधि को समझा और आत्मबल से वे इस कार्य में सलग्न हो गये । त्रिपाठी जी ने ग्राम-साहित्य की 'भूमिका' में लिखा है कि—

“ग्राम साहित्य इतना विशाल है कि उसके सामने शिक्षितों का साहित्य दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। यह कठस्थ-साहित्य देश के सब प्रान्तों, भाषाओं और छोटी-छोटी बोलियों में भी अरम्भपर भरा हुआ है। मैंने सन् १९२५ से इसका सग्रह शुरू किया था और उसमें से कुछ चुने हुये ग्राम-गीत शिक्षितों के सामने नमूने के तौर पर रखने के लिये कविता-कौमुदी के पाँचवें भाग में पुस्तकाकार प्रकाशित भी कराया था।”^१

प्रकाशनोपरान्त महात्माजी एव मालवीय जी ने ग्रंथों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। डा० भगवान् दास ने लिखा “संस्कृत-काव्य से अधिक रस उन्हें ग्राम-गीतों में मिलता है।”^२ विश्वकवि एव लाला लाजपतराय का आशीर्वाद उन्हें पहले ही प्राप्त हो चुका। तत्पश्चात् ग्राम-साहित्य पर बहुत कार्य हुआ। इस कार्य में अत्यधिक रत रहने से त्रिपाठी का सुन्दर स्वास्थ्य परिश्रम की अग्नि में पिघल कर सिमट गया। क्योंकि उनके मन में तो एक प्रकार की ज्ञान ज्योति जल उठी जो—

“वह देश कहाँ है ? जहाँ वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति की आत्मायें निवास करती हैं। वह देश कौन-सा है ? जिसके घर-घर में तुलसीदास बोल रहे हैं। सूरदास बालकों का रूप धरकर कहाँ खेल रहे हैं। कबीर कहाँ अपनी आत्मा निचोड़ कर अमृत-रस बाँट रहे हैं। गंगा की उज्ज्वल किन्तु चंचल, यमुना की श्यामल किन्तु गम्भीर, अजस्र, धारा के साथ जिनकी जीवन-धारा गीतों के रूप में प्रवाहित है क्या हम उससे दूर हुये जा रहे हैं ?”^३

इसी कारण वे धैर्य से गीतों का सग्रह करते रहे। स्त्रियों से गीतों का सुनना और लिखना भी तो बड़ा ही कठिन है, प्रथम तो उन्हें गीत पूरा याद नहीं, दूसरे लज्जा-वश वे उसे सुनाती नहीं, तीसरे समय के घात-प्रतिघातों ने गीत का रूप परिवर्तन भी कर दिया है।

“स्त्रियों से गीत लेने में उनकी स्मरण-शक्ति वाली यह कठिनाई कम नहीं है। मेरे तो धैर्य की परीक्षा हो जाया करती थी। कभी-कभी तो एक-एक गीत के लिये पूरा एक दिन लग गया है फिर भी शाम होने पर उसकी एक दो कड़ियाँ सन्दिग्ध ही थी।”^४

वास्तव में यह त्रिपाठी जी का ही अडिग व्यक्तित्व था जो धैर्य-धारण कर इतना महत्त्वपूर्ण कार्य करता रहा। कठिनाई का वर्णन देखिये—

१. ग्राम साहित्य, प्रथम भाग—रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० २१

३. वही, पृ० २३

४. वही, पृ० २३

“सावन का महीना है। घटा घिरी हुई है। कभी छोटे पड़ रहे हैं। कभी लहरे पर लहरें आ रही हैं। पुरवा हवा के झोंके चल रहे हैं। धान के खेत में घुटने तक पानी में खड़ी चमारिनें खेत में उगे हुए घास-पात को खोंटकर-नोचकर निकाल रही हैं। वे गा भी रही हैं। शरीर तो उनका धान की खेत में काम कर रहा है और मन गीत की दुनिया में है। मैं धान की मेड़ पर बैठा गीत सुनता जाता हूँ और लिखता जाता हूँ। जिन्होंने धान के मेड़ देखे होंगे वे समझ सकते हैं, धान की मेड़ पर बैठना तलवार की धार के समान है।”^१

‘है अपना भारतवर्ष कहीं जो बसा हमारे गाँवों में।’ इस कारण देश के इन ग्रामों के ग्राम-गीत अतुल निधि है। इन गीतों में स्त्रियों के मस्तिष्क की महिमा, स्वाभाविक कवित्व का प्रस्फुटन, लोक-गीतों की मोहक शैली, देश में प्रचलित लोक रिवाज आदि प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। इसी प्रभाव से प्रभावित होकर ग्राम-गीतों पर उत्तर-प्रदेश सरकार ने उन्हें पुरस्कार भी प्रदान किया है। इन ग्राम-गीतों के ऐतिहासिक महत्त्व, उनकी रक्षा में त्रिपाठी का नाम अग्रणीय है। इसी कारण डा० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—‘ग्राम-गीतों के सकलन में श्री राम नरेश त्रिपाठी ने सबसे प्रथम प्रयास किया।’^२

वास्तव में कठ में बसित इन अमूल्य गीतों को वे प्रयास से निकाल कर बाहर लाए। उनका यह कार्य सर्वाधिक महत्त्व का सहज अधिकारी है।

‘कविता-कौमुदी’ का सातवाँ भाग बंगाली की कविताओं का है। इसका स्वागत भी बड़ी ही उत्सुकता से किया गया। लेकिन बंगाली कविता प्रकाशित करने के उपरान्त कदाचित् त्रिपाठी जी को आभास हुआ कि किसी भाषा की कविता देवनागरी लिपि में मुद्रित कर देना, गद्य में उसका अर्थ एवं भावार्थ बता देना, काव्य का रस प्रदान करने के लिए पर्याप्त नहीं है। रस तो कवि की आत्मा का प्रवाहित होता है। कविता का भावानुकूल अनुवाद करना बड़ा ही कठिन है। इस कारण यह श्रृंखला भी समाप्त कर दी। परन्तु त्रिपाठी जी का यह कार्य साहित्य का वरदान है। उसका ऐतिहासिक महत्त्व भी सर्वाधिक है। डा० अमरनाथ झा ने सत्य ही लिखा है कि—

“हिन्दी-साहित्य का जब इतिहास लिखा जायेगा तो उसमें पंडित राम नरेश त्रिपाठी की विविध सेवाओं का बड़े मान के साथ उल्लेख होगा। न केवल उनकी कृतियों का उसमें वर्णन होगा, वरन् उनके सम्पादित और प्रकाशित ‘कविता-कौमुदी’ को एक विशेष स्थान दिया जायेगा। इन पुस्तकों के द्वारा त्रिपाठी जी ने हिन्दी

१. ग्राम-साहित्य, भाग १ पृ० २१

२. आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० ५६

पढ़ने वालों को परिचय कराया है न केवल हिन्दी काव्य से, वरन् बंगला, उर्दू और संस्कृत के उत्कृष्ट काव्य के उदाहरणों से भी।”^१

इन कार्यों के साथ-साथ त्रिपाठी जी ने सम्पादन, आलोचनात्मक, बाल-साहित्य, कहानियों आदि के कार्य को भी लगातार गतिशील रखा है। ‘रामचरित-मानस’ पर टीका लिखने का गौरव भी त्रिपाठी जी को प्राप्त है। अध्ययन तथा परिश्रम की चरम सीमा को त्रिपाठी जी ने निकाल दिया था। “शायद आपको जानकर यह आश्चर्य होगा कि तुलसीदास की रामायण की टीका मैंने रेल में की थी। जब कभी बाहर जाता सादे कागज पर चौपाइयाँ चिपकवा ले जाता था। जी ऊबने पर पेसिल उठाकर लिखने लग जाता था, लौटने पर पचास पृष्ठ पूरे कर देता था।”^२

परिश्रम, अध्यावसाय, लगन और कर्मठता का ही यह फल था कि वे अपनी प्रतिभा द्वारा विभिन्न साहित्य-क्षेत्रों में ‘प्रकाश पुंज विकीर्ण’ करने में सफल हो सके। ‘तुलसीदास की आलोचना’ में त्रिपाठी जी का आलोचक रूप स्पष्ट झलकता है। यह सफल मन्थन का सुफल है। उन्होंने साहित्य में लगभग सभी क्षेत्रों में दौड़ लगाई थी, और उनमें सफल भी हुए। उनकी कृतियों के नाम इस प्रकार हैं :—

नाम तालिका

काव्य—मिलन	—	१९१४ ई०
पथिक	—	१९१८ ई०
मानसी	—	१९२७ ई०
स्वप्न	—	१९२९ ई०

स्फुट कवितायें : जन्म भूमि भारत, क्या होम रूल लोगे, हिन्दुओं की हीनता, स्वदेश-गीत, महापुरुष के लक्षण, राम, लोभ से हानि, निर्बलो को न्यायालय में भी जगह नहीं, बाइसिकल, शारद तरंगिनी, पुस्तक, प्रार्थना, अन्वेषण, माता का उद्धार, विद्यार्थी आदि।

उपन्यास :	वीरांगना	१९११ ई०
	वीरबाला	१९११ ई०
	मारवाड़ी तथा पिशाचिनी	१९१८ ई०
	लक्ष्मी	
	सुभद्रा	

१. कविता-कौमुदी, चौथा भाग, उर्दू—अमरनाथ झा

२. मैं इनसे मिला, पृ० २९—पद्म सिंह शर्मा ‘कमलेश’

कहानी संग्रह :

- | | |
|---|------|
| १—तरकस—हिन्दी मन्दिर प्रयाग | १९३४ |
| २—आँखो देखी कहानियाँ—हिन्दी मन्दिर प्रयाग | १९५३ |

स्फुट :

- | | |
|---------------------------------|------|
| १—हिन्दी पिंगल रचना | १९१८ |
| २—अभिनव संगीत (शास्त्रीय संगीत) | १९१८ |
| ३—उत्तरीय ध्रुव की यात्रा | १९२१ |
| ४—हिन्दी शब्द कल्प द्रुम | १९२५ |
| ५—अंग्रेजी शिष्टाचार | १९२५ |
| ६—हिन्दोस्तानी कोश | १९३१ |
| ७—हिन्दी हिन्दोस्तानी | १९३२ |
| ८—नमूने के गाँव | १९३९ |

अनुवाद :

- | |
|--|
| १—कौन जानता है (नाटक) (हिन्दी मन्दिर प्रयाग) |
| २—इतना तो जाने (राजनीति सम्बन्धी) |

सम्पादक संग्रह :

- | | |
|--|------|
| १—भूषण ग्रंथावली (सटीक) (हिन्दी मन्दिर प्रयाग) | १९२१ |
| २—रहीम (हिन्दी मन्दिर प्रयाग) | १९२१ |
| ३—मारवाड़ के मनोहर गीत | १९४० |
| ४—सुकवि कौमुदी | १९४० |
| ५—नीति रत्न-माल | |
| ६—चिन्तामणी (भजन संग्रह) | |

नाटक :

- | | |
|---------------------|-------------------------------|
| १—जयन्त १९३३ ई० | ४—पैसा-परमेश्वर (समस्या नाटक) |
| २—प्रेमलोक | ५—अजनबी |
| ३—स्वप्नों के चित्र | |

अन्य कृतियाँ :

- | | |
|---------------------------------|------------------------|
| १—तुलसीदास की आलोचना | ३—मुद्रा का परिचय |
| २—मालवीय जी के साथ तीस दिन १९४१ | ४—रामचरित-मानस की टीका |

- ५—बा और बापू
६—बफाती चाचा (नाटक)
७—हिन्दी-पद्य रचना

- ८—कविता विनोद
९—घाघ एवं भड्डरी

सम्पादन तथा संकलन :

- | | |
|--------------------------|---------------------------------------|
| १—बाल कथा कहानी | ११—सुकवि कौमुदी |
| २—गुप चुप कहानियाँ | १२—एदोग |
| ३—बताओ तो जाने | १३—हिन्दुस्तान कोश |
| ४—बानर संगीत | १४—सम्मेलन पत्रिका |
| ५—बुद्धि-बिनी | १५—हिन्दी-महाभारत |
| ६—महिन माला | १६—हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास |
| ७—नेता बुझौवल (पहेलियाँ) | १७—पेखन (एकाकी नाटक) |
| ८—मोती चूर के लड्डू | १८—गांधी जो कौन है |
| ९—बानर (पत्रिका) | १९—कविता-कौमुदी—सात-भाग |
| १०—उद्योग | २०—ग्राम-साहित्य—सात-भाग |

बाल साहित्य :

- | | |
|---------------------------------|---------------------------------------|
| १—मोहन माला (पद्यावली) | ११—हिन्दी प्राइमर (दो भाग) |
| २—कविता-विनोद (कविता) | १२—परियो की कहानी (दो भाग) |
| ३—अशोक (जीवन चरित्र) | १३—नई कहानियाँ |
| ४—चन्द्रगुप्त (जीवन चरित्र) | १४—जादू की कहानियाँ |
| ५—हरिश्चन्द्र " | १५—हिन्दी पत्र शिक्षक (पत्र लेखन-कला) |
| ६—महात्मा बुद्ध " | १६—खोज, खोज निकालो (बुद्धि विनोद) |
| ७—आल्हा " | १७—हँसू की हिम्मत (पद्य कहानी) |
| ८—बाल कथा कहानी (१ भाग) | १८—कबड्डी (खेल) |
| ९—हिन्दी ज्ञानोदय रीडर (छः भाग) | १९—गांधी ताश, जवाहर पता (खेल) |
| १०—कन्या शिक्षावली (छः भाग) | |

काव्य-कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

त्रिपाठी जी ने प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनायें की हैं। उनके 'मिलन', 'पथिक' एवं 'स्वप्न, प्रबन्ध' कोटि में आते हैं एवं 'मानसी' का स्थान मुक्तक धारा में है। त्रिपाठी जी के तीनों खण्डकाव्य स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यानक काव्य-धारा में स्थान रखते हैं तथा इन तीनों काव्यों में उदात्त-प्रेम (Sublime love) का रूप दृष्टिगोचर होता है। नवयुग की चेतना से उनके काव्य ओत-प्रोत हैं। उनमें प्रातःकाल की अरुणाभा एवं वसन्त की 'सौरभ'-श्लथ मादकता एवं मोहकता है। कवि ने प्राचीन घिसी-पिटी रूढ़ि परम्परा का अनुसरण नहीं किया है। उसने पौराणिक या ऐतिहासिक कथानकों को न अपनाकर, मौलिक नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के द्वारा कल्पित कथानक की सृष्टि की है। खण्ड-काव्य में प्राचीन शास्त्रीय नियमों की संकुचित परिखा का प्रथम बार उल्लघन किया गया, इस दिशा में आपने मार्ग-निर्देशन का कार्य किया है। इस दृष्टि से त्रिपाठी जी खण्डकाव्य के क्षेत्र में एक नवीन परम्परा का प्रवर्तन करते हैं। मौलिक कथानक के अन्तराल में विशद एवं गहन भावों को सँवार कर सजा देने में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। वे इस क्षेत्र में अकेले हैं। मौलिकता की छाप कथानक में अमिट होने के साथ-साथ उनके चरित्रों की रेखायें बड़ी तीखी, चटक एवं सहज भास्वर होती हैं। उनके सभी चरित्र वर्ग-चरित्र हैं, जो एक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी कारण वे कभी-कभी पात्रों का नामकरण ही नहीं करते एवं औपचारिक नामों से ही काम बड़ी पटुता से निकाल ले जाते हैं। 'पथिक' में ऐसा ही किया है। वहाँ पात्रों का आपने नामकरण किया ही नहीं। उनके सभी पात्र चाहे वे पुरुष वर्ग के हों या महिला वर्ग के हों, उनका देश-भक्ति का आदर्श अनुपम होता है। एक वाक्य में कहा जा सकता है, उनकी सभी कृतियों का प्रतिपाद्य देशानुराग या देशभक्ति ही है।

'मिलन' त्रिपाठी जी की प्रथम कृति है। कवि का यह प्रथम प्रयास चमत्कार-पूर्ण है। कृति को देखने से प्रीति झलकती है, इससे स्पष्ट है कि कवि की सहृदयता एवं कला आरम्भ से ही अद्भुत एवं सहज रही है। 'पथिक' उनकी अमर कृति एवं युगीन वरदान है। यहाँ पर आकर त्रिपाठी जी की कला भाव मालाओं से अलंकृत होकर भाषा को अपने भाव-क्रोड़ में धारण कर आगे बढ़ती है। यहीं उनकी कला

का रूप बड़ा जगमग है। रेशमी ताने-बाने से बुने भाव, भावों से डग मिलाती भाषा के शब्द, कथ्य के ऊपर मोती से लुढ़कते रहते हैं। खण्डकाव्य परम्परा की यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सर्वोत्कृष्ट कृति कही जा सकती है। भाषा की सस्कृत पदावली, छायावादी कला की झलक, सुबोध वर्णन शैली एवं प्रसादगुण, कर्षण एवं शान्तरस, सात्त्विक देशभक्त, लोकहित की भावना, अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श की प्रतिष्ठा, दुष्टनीति पर क्षमा की जीत तथा गाँधीवाद की मुखर ध्वनि से यह काव्य सुशोभित है। 'स्वप्न' उनका अन्तिम खण्डकाव्य है। यह काव्य नवीन नारी जागरण की पवित्र पवन से पूजित है। सुमना का देशानुराग भारतीयता का भव्य मूर्ति प्रस्तुत करता है। नारी का उदात्त आदर्श, शालीनता की अरुणाभा को वे रेखाओं से अंकित करते हैं। यहाँ पर आकर कला की प्रौढ़ता अपनी चरम सीमा पर है। यही उनकी कला में छायावादी कला का आरम्भिक रूप प्रकट होता है। 'मानसी' मुक्तक कोटि की रचना है। भाव वैविध्य गरिमा के साथ, नवीनतम कविता के विषय तथा कविताये बड़ी सरस, सरल, तरल एवं अनुपम है। यह काव्य-संग्रह भावराशियों की एक अनोखी रगशाला है। यह प्रौढ-कृति देखने से लगता है कि त्रिपाठी जी प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाओं में बड़े ही सिद्धहस्त कवि थे। इस मुक्तक कृति का साहित्य-जगत् में आज भी मार्मिकता के कारण अपना स्थान है।

मिलन

त्रिपाठी जी ने अपने प्रथम खण्डकाव्य 'मिलन' में प्राचीन चली आती हुई रूढ़ि परिपाटी का परित्याग किया है एवं स्वच्छन्दतावादी (Romanticism) धारा से प्रभावित होकर ऐतिहासिक या पौराणिक कथा को न ग्रहण कर, काल्पनिक कथानक की सृष्टि की है। काल्पनिक कथा में उनकी सृजनात्मक कल्पना (Creative imagination) को उनमुक्त क्षेत्र सहज ही मिल गया है। इस खण्डकाव्य में देशभक्ति का स्वर आदि से अन्त तक अबाधगति के साथ प्रवहमान है। 'मिलन' की रचना के समय देश विदेशी शासन से भाराक्रान्त हो तिलमिला रहा था। राष्ट्रपिता बापू भारतीय-रगमंच पर अपना अभिनय कर रहे थे। द्वितीय महायुद्ध का विश्वव्यापी प्रभाव भारत पर पड़ना स्वाभाविक ही था एवं ऐसे समय में युवक-दल में देशभक्ति का आना भी सहज है। दूसरी ओर आंग्ल शासकों के समक्ष देशभक्ति मिश्रित राष्ट्रीयता का संदेश गुंजित करना तलवार की धार पर चलना तो था ही, मृत्यु या कारावास को निमन्त्रित करना भी था। त्रिपाठी जी प्रथम व्यक्तित्ववान राष्ट्रीय कवि थे, जिन्होंने अपने प्रबल आत्मबल से कायरतापूर्ण स्वर का परित्याग कर राष्ट्रीय भावना का ध्वज

लहराया। उस समय शासन के क्रूर कर विनाश का खेल खेला करते थे। ऐसे समय में निडर होकर देशभक्त एवं राष्ट्रीयता का संदेश देना त्रिपाठी जी की स्वच्छन्द साहसी प्रकृति का ही कार्य था। उन्होंने अपने प्रथम खण्डकाव्य 'मिलन' में गाँधीवाद से प्रभावित होकर देश-सेवा, भक्ति, त्याग एवं कर्त्तव्यपूर्ण वाणी के स्वरो को झकृत् किया है।

'मिलन' नगर का अधिवासी युवक 'आनन्दकुमार' इस काव्य का नायक है। वह अपने प्रथम दर्शन में ही युवक-समाज की सेवा करने के लिए वन का परित्याग कर समाज में जाना चाहता है। अपनी प्रियतमा विजया को अपनी भावना से रगकर वह बड़ी दृढ़ता के साथ कहता है :—

रक्षित रखने को भूतल पर,
मनुष्यता का नाम।
उठने वाले हैं ईश्वर के,
कर असंख्य अविराम ॥
अस्थि चर्म मय कंकालों में,
जो कुछ है बल शेष।
संचय कर रिपु रहित करूँगा,
अपना प्यारा देश ॥^१

युवक की मधुर वाणी का प्रभाव विजया के हृदय में एक परिवर्तन उपस्थित कर देता है। दोनों ही राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत हो, देश की दयनीय परिस्थिति से मर्माहत होते हैं एवं देश-सेवा का पावन कर्त्तव्य उनके समक्ष रहता है। इसी भावना का पवित्र पवन उसके अन्तराल में चलने लगता है एवं वह 'विकसित हुआ झुकाया उसने शशि को शशि के पास'^२ से स्वीकृत पा लेता है। विजया का भारतीय आदर्श उमड़ता है इसी कारण डॉ० रामचन्द्र मिश्र लिखते हैं "दमयन्ती, सीता एवं द्रौपदी के देश में पल्लविता विजया भी अपने प्रियतम की सहगामिनी बनने के लिए आकुल हो उठती है।"^३ उसने 'चिर संगिनी तुम्हारी हूँ मैं मेरे जीवन नाथ' कहकर युवक का मत स्वीकारा है। मन में देश-भक्ति का निश्चय कर वह पुरुष वेश धारण करती है। नौका से यात्रा करने के अवसर पर तीव्र पवन के आघात से नौका टूट जाती है। दोनों ही प्रेमी-युगल अतल में प्रवेश कर जाते हैं।

१. मिलन, पृ० २४

२. वही, पृ० १२

३. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३६४

अचानक ही दोनों का विछोह कीतूहल पर प्रश्न चिह्न लगाकर रह जाता है। दैव-योग से मुनि (जो युवक के पिता है) की कृपा से विजया को जीवन-दान मिलता है। विजया भारतीय संस्कारों की पवित्रता के कारण अपने प्रियतम के प्रति होश में आते ही प्रेम प्रकट करती है। प्रिय का वियोग उसे असह्य हो जाता है एवं कोमल विचारों की वह रमणी कह उठती है—

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ,
बच न सकेगे प्राण।

अश्रु गिराकर व्याकुलता का,
दृग ने दिया प्रमाण।^१

विजया के कहने पर मुनि उसके पति की लाश को लेने के लिए चल देते हैं लेकिन विजया का प्रेम उसके हृदय में उताल तरंगे मारता है, भावनाओं का तूफान आकर उससे कहता है—प्रेम की पावनता को। प्रेमोन्मत्त हो वियोगिनी का अन्तराल बोल उठता है—

गन्ध-विहीन फूल है जैसे,
चन्द्र चन्द्रिका हीन।

यो ही फीका है मनुष्य का,
जीवन प्रेम-विहीन।

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है,
प्रेम अशक अशोक।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है,
प्रेम हृदय आलोक।^२

प्रेम का उदात्त-स्वरूप नारी में विद्यमान था ही। उधर युवक के हृदय में भी अगाध प्रेम था, तभी वह भी अचेत अवस्था में ही कह उठता है—

विजया ! प्रेम रूपिणी विजया
प्राण बल्लभे वाम।^३

मुनि, युवक के व्यक्तित्व से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। 'सिकुड़न रहित ललाट' कहकर वे उसके व्यक्तित्व को उभारते हैं—

सिकुड़न रहित, ललाट, ललित अति, उन्नत कला विधान।

पौरुष-पूर्ण विशद वक्षस्थल, वृषभ कन्ध बलवान्।

१. मिलन, पृ० २७

२. वही, पृ० २६

३. वही, पृ० ४२

परिधि-समान प्रलम्ब युगल भुज, पृथुल कठिन भुजदण्ड ।

अंग-अंग में छिटक रही थी, शोभा शक्ति प्रचण्ड ॥^१

इस विराट् व्यक्तित्व को देखकर 'कामायनी' के मनु का व्यक्तित्व सहसा याद आ जाता है—

अवयव की दृढ मांस पेशियाँ,

उर्जस्वित था वीर्य अपार ।

स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्तका,

होता था जिनमें संचार ॥^२

मुनि 'ब्रह्मचर्य-व्रत धीर' को देखने के पश्चात् देश-प्रेम की अभिलाषा का स्वप्न प्रकट करते हैं एव युवक को देश-प्रेम का उपदेश देते हैं । देश की दयनीय दशा में संकटों को भेलकर भी, आत्मबल पर विश्वास रखते हुए अपने कर्तव्य के प्रति सजग रहना चाहिए । युवक, मुनि को (उसका पिता था) देश-सेवा और देश-प्रेम की भावना का सम्मान प्रदर्शित करके, देश-सेवा के लिए अग्रसर हो जाता है । उसे सभी प्रकार से आश्वस्त कर मुनि भी देश-सेवा में चल देते हैं ।

विजया भी स्वस्थ हो गाँव-गाँव का भ्रमण करती हुई जनता की दयनीय दशा पर दृष्टिपात करती है । युवक, युवती एव मुनि के प्रोत्साहन से जनता में नई भावना, नई गति, नई मति, नई शक्ति का संचार होता है एव जनता क्रान्ति कर उठती है । जनक्रान्ति का सन्देश इस प्रकार त्रिपाठी जी ने १९१७ ई० के आसपास ही दिया था जो स्वप्न १९४७ ई० में पूरा हुआ । इस प्रकार त्रिपाठी जी भविष्य दृष्टा के रूप में आते हैं । जनता में राज-शक्ति के प्रति विरोध उत्पन्न हो गया । राज-शक्ति ने युवक, युवती एवं मुनि को पकड़ने का आदेश दे दिया ।

घर विजया को, पकड़ युवक को, मुनि को डालो मार ।

गाँव-गाँव रिपुओं ने घेरा करते हुये पुकार ॥^३

प्रजा अपने हितैषियों पर संकट की उमड़ती घटाओं को देखकर 'क्रोधित सिंह के समान' निकल पड़ती है । चारों ओर युद्ध का वातावरण प्रस्तुत हो जाता है । युवक, हारने वाला ही है कि मुनि अचानक सेना की एक टुकड़ी को लेकर आ जाते हैं, जिससे युवक को एक अपूर्व साहस मिल जाता है । विजया चारों ओर भैरवी बनकर जनता में जागृति को उत्पन्न करती है, प्रतिहिंसा का ताण्डव नृत्य होने लगता

१. मिलन, पृ० ४०-४१

२. कामायनी, पृ० ४—श्री जयशंकर प्रसाद

३. मिलन, पृ० ६८

है। युवक के ऊपर किये प्रहार को मुनि अपनी छाती पर झलता है। मुनि बहोश होकर घराशायी हो जाता है किन्तु मृत्यु से पूर्व युवक के पिता होने की बात का खलेख करता है एवं सुख सन्तोष की श्वास लेता है, युवक विजयी हो जाता है लेकिन 'द्विपि पिता' कहकर मूर्छित हो जाता है। विजया मूर्छित युवक को अपनी जाँघ पर रखे बैठी थी एवं मधुर-स्वर से मंगलगान गा रही थी उसी समय युवक की मूर्च्छा जाती रही एवं वह नेत्र उन्मीलित करता है। सहसा ही—

—‘चन्द्र चूम लूँ’ बोला मन में,
जैसे ही आनन्द।
आकर लगा तुरन्त ओठों से,
मधुर मुधाधर चन्द ॥^१

विजयी युवक का अपनी प्रियतमा विजया से ‘मिलन’ होता है। इस प्रकार काव्य का अन्त मंगल की सूचना देकर सुखान्त हो जाता है।

इस खण्डकाव्य का स्थान प्रेमाख्यानक काव्य-धारा में आता है। इस काव्य में वणिक्ति प्रेम का रूप उदात्त है, उस प्रेम में रीतिकालीन प्रेम की तरह वासना का पुट नहीं। इस प्रकार परम्परागत प्रेम का इसमें वर्णन न होकर प्रेम का सर्वथा नवीन एवं आदर्श प्रधान रूप ही अभिव्यक्त हुआ है। इसी कारण डा० श्रीकृष्ण लाल इसको ‘सभी जगह वासना-जनित आकर्षण’ से ऊपर उठा हुआ बतलाते हैं।^२ माँसलता, स्थूलता ऐन्द्रिकता से दूर हटकर उसकी पावनता अनुपम है। प्रेम ही जीवन का आदर्श बन जाता है। ‘मिलन’ में रामनरेश त्रिपाठी का निश्चित मत मिलता है—

“गन्धविहीन फूल है, जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन,
योही फीका है मनुष्य का, जीवन प्रेम-विहीन ॥”^३

यह प्रेम लौकिकता का अतिक्रमण करता हुआ ईश्वरकी अपारसीमा में लय हो जाता है। यहाँ साध्य एवं साधन का भेद ही नहीं रहता। सन्तो की भाँति भगवान् को ही वे प्रेम का रूप घोषित करते हैं—

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम रूप भगवान्।

विजया एवं युवक (आनन्दकुमार) के प्रेम में वासना-वेग नहीं अपितु उनका प्रेम-कर्सव्य के राग से परिष्कृत है। उसमें एकान्तता नहीं ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ का

१. मिलन, पृ० ७५

२. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास, पृ० ६४—डा० श्रीकृष्ण लाल

३. मिलन, पृ० २६

भाव लगातार प्रतिध्वनित होता है जो त्रिपाठी जी की परिष्कृत प्रेम-भावना को प्रकट करता है।

कवि ने युवक के माध्यम से युवकों को देश-सेवा का सन्देश दिया है। अप्रत्यक्ष रूप से स्पष्ट है कि वे समस्त युवक दल को देश-सेवा में प्रवृत्त करना चाहते हैं। इस क्षेत्र में केवल युवकों को ही नहीं, युवतियों का सहयोग भी नितान्त अपेक्षित था इसका उन्हें ध्यान था। इसी दृष्टि से विजया नई युग की नारी का प्रतिनिधित्व करती है। नारी-जागरण का प्रथम रूप तो विजया का उस समय ही प्रकट हो जाता है जब वह पुरुषवत वस्त्र धारण कर स्वदेश-सेवा में अग्रसर होने को कटिबद्ध है। दूसरा रूप उस समय स्पष्ट होता है जब वह गाँव-गाँव में जाकर जागृति का प्रचार करती है एवं अपने प्रियतम की सहायता करती है। नवयुग की नारी को स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लेना चाहिए मानो यही विजया द्वारा उन्होंने स्पष्ट उद्घोषित किया है। नारी अबला ही नहीं वह प्रेरणा प्रदायिनी, वरदायिनी शक्ति भी बन सकती है, यही ध्वनि यहाँ निकलती है। वह देश-भक्ति के लिए प्रस्तुत हो अपने व्यक्तिगत सुख का परित्याग कर, समष्टि के लिए नवीन निर्माण-पथ का सृजन भी कर सकती है। उनकी नारी वियोग में असहाय होकर टकराती, दहाड़ती नहीं अपितु वह देश-सेवा के पुनीत कार्य में अपने को अर्पण कर सन्तोष लाभ करती है। इस प्रकार विजया नवयुग की नारी का प्रतीक है। युवक विजया एवं मुनि तीनों ही चरित्र, आदर्श एवं उदात्त चरित्र के उदाहरण हैं।^१

देश-भक्ति के भाव इस काव्य के प्राणों में ध्वनित हैं। समस्त काव्य का उद्देश्य ही देश-भक्ति का प्रतिपादन करना है। साधु की वाणी में गाँधीवाद की ध्वनि भी प्रतिध्वनित होती है—

पर तुम नहीं हिचकना बेटा, करना मन न उदास।

रखना सदा आत्मबल ऊपर, अचल अटल अनुराग ॥^२

देश-भक्ति की भावना के कारण ही युवक हमारा आदर्श है—

देश-भक्त का हृदय विघ्नों के झोकों को झेलकर, कष्टों को जीतकर सदा ही 'कांटों' को पुष्प समझकर मस्ती से झूलता रहता है।

देश भक्त का हृदय, बड़ा ही होता है बलवान।

शैथ्या कांटों की लगती है, उसको फूल समान ॥^३

१. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास, पृ० २८०

—लेखक राम बहोरी शुक्ल और भागीरथ मिश्र

२. मिलन, पृ० ५५

३. वही, पृ० ५६

इस देश-भक्ति के मूल में राष्ट्रीयता का बड़ा भव्य आदर्श है, जागरण के स्वर से नवयुग का स्तवन है। भावों का उदात्तीकरण करना कवि की कला का सौन्दर्य बन गया है। परिष्कृत भाव धारा में परिष्कृत शृंगार की रस-धारा जो देश-प्रेम की गोद में बैठकर क्रीड़ा करती है, उमड़-उमड़ कर छलक-छलक कर प्रवाहित रहती है।

कथा-विधान में कल्पित कथा के साथ-साथ घटना-वैचित्र्य, विविध नाटकीय-प्रसंग, कथोपकथन सवादाशैली आदि के विधान में कवि ने अपने 'कौशल' का सुन्दर परिचय दिया है।^१ इसमें द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता (Matter of Factness) की छाप अवश्य है। लेकिन, उनकी इस प्रथम कृति की वर्णनात्मकता में सरसता का अभाव ही कहा जा सकता है। आगे की कृतियों में इस दोष का निराकरण हो गया है। लेकिन, इस कृति में 'इतिवृत्तात्मकता', नीरसता एवं उपदेशात्मकता का अधिक पुट है। उपदेशों की घटा के भाव की सुकुमारता को दबा लिया है इसी कारण आलोचक प्रवर—शान्तिप्रिय द्विवेदी का यह कहना—

“मिलन” में त्रिाठी जी का कवि हृदय अधिक मुकुलित है”^२ कहकर भी इतिवृत्त की अत्यधिक प्रवृत्ति का संकेत दिया है।

उन्होंने प्रबन्ध-पटुता का निर्वाह बड़ी ही कुशलता से किया है। मुनि के उपदेशों के द्वारा कथा-विधान को, तीव्रता एवं गठन प्रदान किया गया है। आरम्भ में शृंगार रस का संयोग पक्ष बड़ा ही मार्मिक है, तरोपरान्त विजया के प्रति युवक की प्रेम रति का रूप बड़ा ही परिष्कृत एवं उदात्त है। ‘प्रेम-भरी पीयूष सदृश’ चितवन से वह प्रिय को अतिशय आनन्दप्रदायिनी है—

पकजमाला-सी प्रणयी के,

मृदु-गलबहियाँ डाल ।

हृग चकोर से देश चन्द्र-मुख,

बोली विह्वल बाल ॥^३

नायक का यह कहना कि “मैं पतंग हूँ प्रेम डोर का फिर आऊँगा पास”^४ इसको पुष्ट करता है। एकान्त वातावरण उद्दीपक है, स्मृति आदि अनुभाव चपलता मोह, रोमांच आदि संचारी भाव स्थायी, भाव रति को पुष्ट करते हैं। वियोग शृंगार का रूप उस समय उभर कर आता है जिस समय नौकर डूबने के पश्चात् मुनि विजया

१. खड़ी-बोली काव्य में अभिव्यजना, पृ० ४२१—डा० आशा गुप्ता

२. कवि और काव्य—आधुनिक हिन्दी कविता, पृ० ७१—शान्ति प्रिय द्विवेदी

३. मिलन, पृ० १४

४. वही, पृ० १३

की लाश को लाकर जीवित करते हैं। वह अपने पति के वियोग को सहन नहीं कर पाती है—

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ,
बच न सकेंगे प्राण ।

अश्रु गिराकर व्याकुलता का,
दृग ने दिया प्रमाण ॥^१

युवक आलंबन, विजया आश्रय, अश्रु-अनु भाव, 'रूपगविता तरगिणी का सुन्दर अंग' (उसे दुःख देता है) वह उद्दीपन है प्रिय की स्मृति, मोह आदि संचारी भाव है। इस प्रकार शृंगार का वियोग पक्ष स्पष्ट है। यद्यपि इस काव्य में वीररस अंगी है एवं शृम्भर, भयकर आदि अग-रसों के रूप में आते हैं। वीर रस के एक भेद धर्मवीर की इस काव्य में प्रधानता है अतः—

आहत युवक थक गया, तन से,
निकल रहा था रक्त ।

था तथापि शत्रु मंथन में,
पूर्ण रूप आसक्त ॥^२

विदेशी शासन आलम्बन, युवक आश्रय-मुनिका उपदेश एवं देश की दुर्दशा उद्दीपन का काम करती है। जनता का सक्रिय सहयोग भी उद्दीपन के अन्तर्गत ही आता है। 'उत्साह' नामक स्थायी भाव को अनुभाव स्मृति एवं संचारी भाव-चपलता, धैर्य, मोह, त्याग आदि पुष्ट करते हैं।

प्रकृति को यद्यपि कवि ने आलंबन रूप में ही अपनाया है लेकिन विजया के वियोग-वर्णन में समस्त प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित किया गया है —

देख सरित शोभा विजया के,
लगी घाव में ठेस ।

बोली ठगिनी-सा है तेरा,
सरिते ? मोहक मेस ॥

तूने मेरे जीवन-धन को लिया,
अचानक छीन ।

देख न सकी हाय ? सुख मेरा,
रे विषमना मलीन ॥^३

१. मिलन, पृ ३७

२. वही, पृ० ७०

३. वही, पृ० ३३

प्रकृति के तो त्रिपाठीजी कवि ही हैं अतः प्रकृति के बड़े ही भव्य रूप प्रस्तुत किये हैं। वे 'अंशुराशि के शुभागमन की वेला समक्ष समीप' कहकर बहुत ही सुन्दर मानवीकरण का रूप प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति के प्रांगण में ही उनकी भाव-बाला विहार करती है।

त्रिपाठी जी की कला की विशेषता है कि वे प्रकृति के मृदुल स्वरूप को ही, प्रकृति के सबसे सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त की तरह अपनाते हैं लेकिन कभी-कभी प्रकृति के विराट् रूप भी—

यथा—

क्षण में उमड़-उमड़ गर्जन कर घिर आये घनघोर।

बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन वृक्षो को झकझोर ॥

होने लगी वृष्टि रिमझिम कर आवरल मूसलधार।

आन्दोलित लहरे तरणी पर करने लगी प्रहार ॥^१

भाषा भावानुरूप ही है। कवि का भाषा पर अधिकार है। वह उसका प्रयोग जैसे करना चाहता है करता है। भाषा में तत्सम संस्कृत के प्रचलित शब्द प्रवाल, प्रताड़ित, मुनिवर्य व्याकुल आदि की प्रधानता है यद्यपि तद्भव शब्द भी यत्र-तत्र आ गये हैं—देशज शब्द 'ढिग' आदि भी मिल जाते हैं पर कम। उर्दू का प्रभाव भी 'मत करना बक्वाद' ऐसे प्रयोगों में बड़ी पटुता से हुआ है। अलंकारों का प्रयोग भी भावाभिव्यक्ति में सहायक रहा है। 'तरल तरंगित सरिता सलिल' में अनुप्रास की छटा है तो कही रूपक का मोहक रूप। कही मानवीकरण 'अन्धकार हो क्षीण छिपा या तरुपत्रों की ओट' में मिलता है। भाषा भाव एवं अलंकार की दृष्टि से त्रिपाठीजी की इस प्रथम रचना में काव्यत्व का पूर्ण निर्वाह है। कल्पित कथानक पर आधारित उनका यह प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य अपना विशिष्ट स्थान रखता है, जिसका प्रतिपाद्य-देश-भक्ति को सफलता से अभिव्यक्त करता है।^२ अतः उन्होंने कोरा देशभक्ति का उपदेश ही नहीं दिया उनके समस्त चरित्र देश-भक्ति के रंग में ही रगे हैं। काव्य का अन्त (सुखन्त) भावी मंगल का स्पष्ट सूचक ध्वज है। इसी कारण डा० श्री कृष्ण लाल ने 'मिलन' के कथानक में राष्ट्रीयता तथा नाटकीय वैचित्र्य की बड़ी प्रशंसा की है। "रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' एवं 'मिलन' में कथानक वैचित्र्य है और विविध नाटकीय प्रसंगों और दृश्यों की भी अवतारणा की गई है। विशेषकर 'मिलन' का

१. मिलन, पृ० २२

२. "मिलन त्रिपाठी जी की कविता का मुख्य विषय देश-प्रेम है। उन्होंने काव्य में देश-प्रेम का उपदेश नहीं दिया, बल्कि देश-प्रेम के रंग में रगे हुए व्यक्तियों का चित्रण किया है। 'पथिक', 'मिलन' और 'स्वप्न' उनके तीनों काव्य ग्रन्थों का विषय यही है। तीनों खण्डकाव्य हैं और सुखान्त हैं।"

आधुनिक साहित्य का विकास, पृ० ४१—डॉ० सावित्री सिन्हा

कथानक तो आकस्मिक घटनाओं और विविध नाटकीय प्रसंगों द्वारा बहुत ही आकर्षक है।”^१

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि इस कृति में देशभक्ति की सशक्त अभिव्यक्ति है। कथानक नाटकीय प्रसंगों से युक्त है। सभी चरित्र उदात्त चरित्र हैं। नारी-जागरण का कवि ने यहाँ स्पष्ट संकेत दिया है। यह उनकी प्रथम कृति है फिर भी भाषा एवं भाव में कवि का प्रयास बड़ा श्लाघनीय है। इस खण्ड काव्य में प्रेम का आदर्श रूप है, अतः इसका स्थान प्रेमसाहित्य के धारा में अपना है।

पथिक

अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि त्रिपाठी जी की समस्त काव्य-कृतियों में ‘पथिक’ उनकी सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रख्यात कृति है। उनके तीन खण्डकाव्यों में से ‘पथिक’ का विशिष्ट गौरव है। इसकी ख्याति एवं उच्चता का एक ज्वलन्त प्रमाण तो यही है कि यह बर्लिन विश्वविद्यालय में कई वर्षों तक हिन्दी-पाठ्यक्रम में निर्धारित रहा। तीस-पैंतीस वर्षों में पथिक की लाखों प्रतियों एवं हिन्दी पथिक के पैंतीस संस्करण हो चुके हैं एवं कभी भी कोई संस्करण चार या पाँच ‘सहस्र’ प्रतियों से कम का नहीं रहा। राष्ट्रकवि गुप्त जी की ‘भारत-भारती’ को छोड़कर अन्य किसी प्रति को इतना अधिक आदर का स्थान नहीं मिला। जनता के हृदय पर इस काव्य ने सर्वाधिक अधिकार प्राप्त किया है। इस कृति में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो अन्यत्र मिलती ही नहीं हैं। देश-विदेश की अनेक भाषाओं में इस काव्य का अनुवाद हो चुका है। सभी इसकी महत्ता का ही उद्घाटन करते हैं। ‘पथिक’ का अपना महत्त्व कई दृष्टिकोणों से आँका जा सकता है। ऐतिहासिक महत्त्व के विचार से खड़ी बोली कविता के इतिहास में ‘पथिक’ एक ऐसी अद्भुत कृति है जिसमें राष्ट्रपिता बापू के नायकत्व में होने वाले भारतीय स्वाधीनता संग्राम तथा असहयोग आन्दोलन का चित्राकन प्रत्यक्ष रूप में किया गया है। दूसरी ओर कवि ने गांधीजी के सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक, साँस्कृतिक, नैतिक सिद्धान्तों को काव्यरूप में मुखरित किया है। युगपुरुष, महामानव की वाणी को भाषावद्ध काव्य-रूप देने के कारण भी इस पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता है। इसी कारण कहा जाता है कि ‘यदि गांधीवाद आदर्श तथा सुखी जीवन की कुँजी है तो ‘पथिक’ उसकी सफल व्याख्या।’^२

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०४—डा० श्री कृष्णलाल

२. विचार और निष्कर्ष, पृ० २०३—वासुदेव एम० ए०

पुस्तक का प्रकाशन सन् १९२१ ई० में हुआ था। उस समय गांधीजी का असहयोग आन्दोलन चल रहा था। त्रिपाठी जी इस घटना से अत्यधिक प्रभावित हुए एवं उन्होंने महात्मा गांधी का प्रभाव, प्रेरणा एवं आशीर्वाद लेकर इस काव्य का सृजन किया है। “सौभाग्य से गांधी जी के साथ उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध आजीवन अच्छा रहा एवं समय-समय पर गांधीजी द्वारा संचालित आन्दोलनों में वे सक्रिय भाग लेते रहे।”^१

‘पथिक’ का कवि भविष्य दृष्टा एवं सृष्टा है। जिस स्वतन्त्र भारत का ‘स्वप्न’ पथिक के अन्तिम सर्ग में कवि ने देखा है वह आज तीस वर्षों के बाद साकार हो उठा है। शासन का भार जनता ने वहन किया। “शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर में” इन पंक्तियों को पढ़कर कहना पड़ता है कि त्रिपाठी जी भविष्यवक्ता युग-विधायक कलाकार थे। (Republic government) गणतन्त्र शासन की कल्पना (Imagination) जो उन्होंने की थी वह आज सजीव तथा साकार हो गई है। गांधीजी के गणतन्त्र के धूमिल स्वप्न को उस समय ही त्रिपाठी जी ने साकार किया था, जब देश परतन्त्र था। ‘पथिक’ का सन्देश अमर सन्देश है, इस कारण से कृति की ‘अन्तर्राष्ट्रीय महत्ता’ (International value) बढ़ जाती है। वास्तव में ‘पथिक’ अपने अन्तराल में भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम की उस अमर कहानी को छिपाये बैठा है, जो आने वाले युग को यह बतलायेगा कि कितने बलिदान पाकर, स्वतन्त्रता रानी ने अपना पावन पद इस देश में रखा है। इस दृष्टि से इस कृति का साहित्यिक, राजनैतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व सर्वाधिक है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार ‘पथिक’ में पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं के भीतर न बँधकर अपनी भावना के अनुकूल स्वतन्त्र संचरण के लिए कवि ने नूतन कथाओं की उद्भावना की है।^२ कल्पित कथाओं की ओर झुकाव स्वच्छन्द-मार्ग की अभिलाषा को सूचित करता है। पुरानी परम्परा अथवा प्राचीन काव्य सिद्धान्तों के प्रति त्रिपाठी जी की आस्था चाहे जैसी रही हो, किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि ‘सायर, सिंह, सपूत’ की भाँति किसी लीक पर चलने वाले वे कभी नहीं रहे एवं न ही दूर की कौड़ी लाने का उन्होंने कभी असफल प्रयास किया। ‘पथिक’ में त्रिपाठी जी की स्वच्छन्द प्रवृत्ति खूब उभरी है।

‘पथिक’ नवीन हिन्दी-खण्डकाव्य परम्परा का आधुनिक संस्करण है। वैसे भी त्रिपाठी जी की सहज प्रवृत्ति तो आख्यानक काव्य (Narrative poem) लिखने में अधिक रमती है। यह उसी वृत्ति का सुपरिणाम है कि ‘पथिक’ उनका सर्वश्रेष्ठ आख्यानक काव्य है। पथिक ‘खण्ड-काव्य’ है, खण्डकाव्य में महाकाव्य का-सा तारतम्य

१. हिन्दुस्तान-शुक्रवार, ता० ६ अप्रैल, सन् १९६१—लेखक डॉ० रामप्रताप त्रिपाठी

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६२८—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

तो रहता है, लेकिन महाकाव्य की अपेक्षा उसका कार्यक्षेत्र (Scope) सीमित होता है। उसमें मानव जीवन का सर्वांगचित्रण नहीं होता है, जो महाकाव्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है।^१ खण्डकाव्य में एकाकी नाटक या कहानी की तरह खण्ड-चित्र या एक घटना ही रहती है। साहित्य-दर्पण में कहा गया है कि—

‘खंडकाव्य भवेत्ताव्यस्यैक देशानुसारि च ।’

अर्थात् खण्डकाव्य एक देश या अश या घटना का अनुसरण करता है। जीवन का खण्ड-चित्र उसमें झंझकता रहता है। कालिदास का ‘मेघदूत’ भी खण्ड-काव्य है। हिन्दी में प्राचीन एवं नवीन खण्ड-काव्य तुलसीदास का जानकी-मंगल, पार्वती मंगल, रामलला नछुहूँ, जटमल, गोरा बादल की कथा’ नरोत्तमदास का ‘सुदामा-चरित्र’ प्राचीन हिन्दी खण्ड-काव्य के उदाहरण है। आधुनिक युग में गुप्तजी का ‘अनथ, सिद्धराज, जयद्रथ-वध, पंचवटी, नहुष’, सियाराम शरण गुप्तजी का ‘मोयं-विजय’, त्रिपाठी जी के ‘पथिक, मिलन, स्वप्न’, प्रसाद जी का ‘प्रेम पथिक’, निरालाजी का ‘पंचवटी प्रसंग’, तुलसीदास आदि खण्ड-काव्य के नवीन उदाहरण हैं।

आधुनिक खण्ड-काव्यों के रचयिताओं में त्रिपाठी जी एवं मैथिलीशरण गुप्त को सर्वाधिक ख्याति मिली है। ‘पथिक’ खण्ड-काव्य की रचना-शैली अधिक मौलिक एवं नूतन है। प्राचीन खण्ड-काव्य के समस्त नियमों का उन्होंने यहाँ अक्षरशः पालन नहीं किया, उन्होंने तो मौलिक उद्भावनाएँ की हैं। उदाहरणार्थ ‘पथिक’ के कथानक में कथा पौराणिक या ऐतिहासिक न अपनाकर युगानुरूप मौलिक अपनाई है। प्राचीन राजकुमार, मन्त्री आदि के ‘चरित्रों’ को न अपनाकर नवीन चरित्रगत पात्र गढ़े हैं— उनके चरित्र प्रतीक-चरित्र होते हुए भी सामयिक चरित्र होते हैं, जैसे पथिक का चरित्र है।^२ खण्ड-काव्य के कथानक के लिए साहित्य-शासन का दृढ़ नियम है कि केवल तीन रस वीर, शान्त या शृंगार में से किसी एक का प्राधान्य हो। लेकिन स्वच्छन्दतावादी त्रिपाठी जी ने अपने खण्ड-काव्यों में नई कथाओं, नाटकीय वैचित्र्य, नई रचना-शैली में नवीन प्रसंगों की अवतारणा तथा नये भाव-विधान की उद्भावना की है, जो सर्वथा अद्वितीय एवं मौलिक है। परम्परागत खण्ड-काव्य का आरम्भ भी देव-स्तुति से होता है, परन्तु त्रिपाठी जी ने कही भी ऐसा नहीं किया। उनके कथानक में घटना वैचित्र्य, नाटकीय वैचित्र्य आदि ऐसी विशेषताएँ हैं, जो आधुनिक खण्ड-काव्यों में प्रायः नहीं पाई जाती हैं। वैसे भी त्रिपाठी जी नूतन कला के उद्भावक हैं।^३ इतना होने पर भी आपने प्राचीन खण्ड-काव्यों में प्रकृति-वर्णन करने की पुरानी परिपाटी को स्वीकार

१. विचार और निष्कर्ष, पृ० २०६—वासुदेव एम० ए०

२. विचार और विमर्श, पृ० २०८—वासुदेव एम० ए०

३. पथिक काव्यम्, (सम्मिति, पृ० ७) —अनुवादक मधुरकर

किया है। प्राचीन खण्ड-काव्य या महाकाव्य में सर्ग के आरम्भ में प्रकृति का वर्णन करना आवश्यक समझा जाता था। त्रिपाठी जी ने इस पुरातन नियम की रक्षा की है। यही कारण है कि प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में प्रकृति-वर्णन मिलता है। वास्तव में यदि कहा जाए कि इस पुस्तक की रचना-शैली महाकाव्य की रचना-शैली (Epic style) से बहुत निकट है, तो अत्युक्ति न होगी। इस कारण खण्डकाव्य सुहराब एण्ड रुस्तम (Soharab and Rustam) की तरह ही यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पथिक वस्तुतः खण्डकाव्य है या महाकाव्य। इसकी कथा चुस्त, संक्षिप्त एवं गठित है तथा यह गाँधीजी के जीवन के एक पक्ष को प्रस्तुत करता है; यही बात इसे खण्डकाव्य की श्रेणी में डाल देती है। 'पथिक' में निराला जी की 'राम की शक्ति-पूजा' की भाँति महाकाव्योचित्य औदात्य होते हुए भी महाकाव्य-पद प्राप्त करने की क्षमता नहीं है। यह तो महान् काव्य है, महाकाव्य नहीं। शास्त्रीय दृष्टि से महाकाव्य अनेक नियमों को पालन करने का आदेश देता है। महाकाव्य की कथा का फलक अत्यन्त व्यापक होता है तथा उसके उदात्त-भाव, गम्भीर रसवत्ता को जन्म देते हैं। उसमें जीवन के वैविध्य का विदग्धता के साथ वर्णन होता है। सबसे बड़ी बात जो खण्डकाव्य को महाकाव्य से अलग करती है, वह है उसका उद्देश्य। देश-विदेश के सभी विद्वान् इस मत से सहमत हैं कि महाकाव्य का उद्देश्य शाश्वत होता है, जिसमें जातीय भावनाओं की प्रबल अभिव्यक्ति होती है। वह युग-युग के मानव को प्रेरणा देने की चिर-शक्ति रखता है। उसका शिल्प उदात्त होता है तथा उसमें भाषा के अनेक आयाम विस्तृत होते प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत खण्डकाव्य अपने नाम से ही अपने अधूरेपन की सूचना देता है। वर्णन-विस्तार को रोककर कवि जीवन की किसी महत्त्वपूर्ण घटना या स्थिति को उसमें उभारता है, जिसमें जीवन का सर्वांग-बोध नहीं होता। इस कसौटी से देखने पर 'पथिक' महाकाव्य-पद का अधिकारी नहीं ठहराया जा सकता। यह ठीक है कि महान् से महान् रचना भी निर्दोषता से बहुत दूर होती है तथा उसमें प्रयास करने पर भी क्षुद्रताएँ रह ही जाती हैं। क्योंकि कवि भी तो साँसारिक प्राणी ही होता है। फिर 'उदात्त' तो दुर्लभ होता है। प्रत्येक कवि उसका निर्वाह करने में समर्थ नहीं हो पाता। महाकाव्य तो 'मानस' तथा 'कामायनी' है, शेष कृतियों को महाकाव्य ऐसा नाम हिन्दी में हिचक के साथ ही दिया जाता है। यदि 'पथिक' को महाकाव्य कहा जायेगा तो हिन्दी में महाकाव्यों की बाढ़ आ जायेगी।

पथिक का दुखान्त स्वरूप बड़ा ही कर्ण है। प्रकृति-प्रेमी पथिक जीवन के सुख का परित्याग कर प्रकृति के मधुर स्वरूप का रसास्वादन करता है। यथा—

नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है।

धन पर बैठ बीच में विचरूँ, यही चाहता मन है॥

×

×

×

निकल रहा है जल-निधि तल पर दिनकर बिम्ब अधूरा ।

कमला के कंचन मन्दिर का मानो कान्त कँगूरा ॥^१

उसकी प्रियतमा पथिक के वियोग में व्यथित होकर निकलती है । अनायास ही उसका प्रियतम उसे मिल जाता है । वह अपने पति को घर चलने को बाध्य करती है ।

रति का रूप, रंग कंचन का, लेकर स्वाद सुधा का ।

विरचा है, विधि ने मुख तेरा, सुख लेकर वसुधा का ॥^२

अपने प्रबल तर्कों से यह कहकर “तुम तो मेरे अतुल रूप का यश गाया करते थे” पति को ले जाना चाहती है, लेकिन ‘पथिक’ को प्रकृति के प्रांगण में ब्रिखरी शाश्वत सुन्दरता का परिज्ञान हो गया है—

परम तुच्छ जड़ खग-पशु का उपमेय तुम्हारा तन है ।

प्रकृति सदा सुन्दरी तुम्हारा यौवन अस्थिर धन है ॥

इस प्रकृति-प्रेमी ‘पथिक’ को एक साधु कर्त्तव्य की गौरव-गरिमा का उपदेश देकर देश-सेवा के लिए प्रेरित करता है । ‘पथिक’ देश की दशा को देखने के लिये (पथिक स्वयं गांधी जी ही हैं) समस्त देश का भ्रमण करता है । समाज की दयनीय दशा एवं भाराक्रान्त शासन की क्रूरता से उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है ।

ब्रधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में ।

मांस नहीं है निरी ‘साँस’ है शेष अस्थि पंजर में ॥^३

शासकगण असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है ।

रक्षक से भक्षक बनता है सरबस हर लेता है ॥^४

पथिक देश-देश में पर्यटन करता है एवं प्रजा को क्रान्ति के लिए उत्साहित करता है । तभी पथिक पर राजकोप होता है—

बहकाकर तू मूढ प्रजा को स्वार्थ सिद्धि करता है ।

ईश्वर के प्रतिनिधि महीप से नेक नहीं डरता है ॥^५

शासन के अधिकारी अन्त में उसे प्राणदण्ड-स्वरूप विषप्याला पीने को देते

१. पथिक, पृ० १७-१८

२. वही, पृ० १६

३. वही, पृ० ४२

४. वही, पृ० ४३

५. वही, पृ० ४६

हैं। अकस्मात् उसकी आदर्श पत्नी यह सब वृत्तान्त जानकर भीड़ को खीरती हुई वहाँ जाकर विषपान कर स्वयं मरण को वरण करती है। 'साधु' धीर युवक की देश-प्रेम निष्ठा से गद्गद हो अपने प्राणों को त्याग देता है। युवक-पुत्र भी राज्य-कर्मचारियों द्वारा मार दिया जाता है। प्रजा में चतुर्दिक असन्तोष, भय एवं उदासीनता का भीषण परिवेश उपस्थित हो जाता है। पथिक-पत्नी का त्याग एक आदर्श कुल ललना का त्याग है, जो गौरव की स्वर्णिम रेखा से भास्वर है। पत्नी-पुत्र का स्वर्ग-वास होने पर भी पथिक अपने आत्मविश्वास को नहीं खोता। उसमें 'गान्धीवादिता' का रंग लगातार चटक ही होता जाता है। अन्त में त्रिपाठीजी ने पथिक की सफलता दिखाई है। प्रजा, राजा को देश परित्याग करने को बाध्य कर देती है। प्रजा द्वारा राजा का निकालना मानो भविष्य-दृष्टा त्रिपाठीजी ने १९४६ ई० का स्वप्न १९२१ ई० में ही देखा भी एवं पूरा भी किया। 'पथिक' का अन्त बढ़ा करुण है, लेकिन आशावादिता का वहाँ अद्भुत कौशल है। इस कारण पथिक का बलिदान हमारे मस्तक को गर्व से ऊपर उठाता है।

'पथिक' के कथानक में नाटकीय वैचित्र्य, नये प्रसंगों की सहज उद्भावना, कथागठन की प्रौढ़ता को देखकर डॉ० श्रीकृष्ण लाल लिखते हैं "फिर इन काव्यों के कथोपकथन में उक्ति-वैचित्र्य और चरित्र-गाम्भीर्य भी विशेष मात्रा में मिलता है, जो पहले काव्यों में बिल्कुल नहीं मिलता। रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' में पथिक एवं उसकी स्त्री एवं फिर पथिक एवं मुनि की बातचीत में एक अपूर्व गाम्भीर्य एवं गुरुता मिलती है।^१ वास्तव में यह तो निर्विवाद है कि 'पथिक' में एक गठित एवं चुस्त कथानक की सफल योजना हुई है। दूसरे सर्ग में मुनि की उपदेशात्मकता के कारण कथा-प्रवाह कुछ शिथिल अवश्य पड़ गया है, इसकी कथा-धारा में वैसे कहीं भी अवरोध उपस्थित नहीं हुआ। कथा संक्षिप्त तरल, मोहक, सुगठित, चुस्त एवं प्रवाहपूर्ण है।

'प्रकृति-प्रेम' त्रिपाठीजी के प्राणों में रम चुका है। 'पथिक' के महाप्रासाद की अवगुन्ठनवती देवी—प्रकृति देवी ही है। जिस प्रकार देश-भक्ति (प्रतिपाद्य) को वे अपनी दृष्टि से ओझल होने ही नहीं देते, उसी प्रकार आराध्या देवी 'प्रकृति' को वे एक क्षण के लिए भी विस्मरण नहीं करते। "पथिक के आरम्भ का प्रथम पद्य ही श्री रामेश्वरम् में समुद्र-तट पर, वैशाख कृष्ण ६ संवत् १९६६, शुक्रवार को प्रातः-काल चार बजे रचा गया। "यात्रा में पर्वत, वन, नदी और समुद्र-तट का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर मेरे मन को जो सुख प्राप्त हुआ उसकी कुछ झलक इस पथिक के

पक्षों में लाने की चेष्टा की गई है—^१

राग-रथी रविराग-पथी अविराग-विनोद-बसेरा ।

प्रकृति भवन के सब विभवों से सुन्दर सरस सवेरा ॥^२

कवि 'पथिक' की तरह प्रकृति की असाधारण सुषमा पर 'प्रकृति सदा सुन्दरी' कहकर—आसक्त है। 'पथिक' के प्रकृति के वर्णन के लिए कहा जा सकता है पन्तजी से घटकर नहीं, त्रिपाठी जी की—तन्मयता प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति पन्त जी के ही समान है। दोनों ने प्रकृति की अर्चना-आराधना में हृदय-पुष्पों को अम्लान दिया है। समस्त काव्य में प्रकृति-प्रेम पवित्र-पवित्र मे मुखरित हो उठा है। प्रकृति-मधुरिमाभावासिक्त पवित्रियों मे पारे की तरह झिलमिल करती है। यदि प्रकृति वर्णन इस पुस्तक से निकाल दिया जाय तो इसकी चेतना का रूप ही लोप हो जायेगा।

मैथ्यू आर्नल्ड की यह परिभाषा Poetry is at bottom a criticism of life^३ (कविता जीवन की आलोचना है) पथिक पर पूर्ण लागू होती है। गुलाम देश की दीन-हीन-दयनीय दशा का जितना यथार्थ रूप आप प्रस्तुत कर सके उतना यथार्थ रूप हिन्दी के कम कवि प्रस्तुत कर सके है। सन् २१ या २० में १९४७ ई० के भविष्य की कल्पना कर लेना त्रिपाठी जी की प्रतिभा का सूचक है। 'पथिक' मे आदर्श एवं यथार्थ जीवन की एकता को प्रतिष्ठित किया गया है। आदर्श एवं यथार्थ की यह प्रेरणा गांधी जी के आदर्श कृत्यों से मिली। दूसरे जिन दिनों राष्ट्रीय-कविता लिखना अपराध था, वहाँ 'पथिक' मे देश-भक्ति के आवेश में शासन की बुराई करना त्रिपाठी जी के प्रेम की तल्लीनता एवं वैयक्तिक साहस का परिणाम है। 'पथिक' की राष्ट्रीयता सकीर्ण नहीं, वह विश्व प्रेममय राष्ट्रीयता है। प्रत्येक पराधीन देश के लिए 'पथिक' का यह आदर्श हितकर है। वास्तव में यह युगीन अमर कृति है।^४

जिस प्रकार 'पथिक' का कथानक सरल, तरल, सरस, गठित एवं सन्तोषप्रद

१. पथिक—भूमिका, पृ० १

२. पथिक, पृ० १५

३. The study of poetry in—"essays in criticism"—second series

—Methew arnold.

४. पथिक सर्वांशतः एक सत्यकाव्य है। हमारी मातृभाषा को उच्चपद पर प्रतिष्ठित करता है, जिस पर उसके सच्चे देश-प्रेमी उसे देखने को बहुत दिनों से अधीर हो रहे थे।

(पण्डित श्रीधर पाठक) सम्मति—पथिक काव्यम्

है, उसी प्रकार पात्रों की सख्या की अत्यल्प है।

इसके तीन-चार चरित्र ही प्रमुख हैं—पथिक, पथिक-पत्नी, राजा एव मुनि। चरित्रों की एक विचित्रता यह भी है, इनके निश्चित नामों का कहीं भी उल्लेख तो मिलता ही नहीं, ये वर्ग के प्रतिनिधि प्रतीक-चरित्र हैं। एक वर्ग राजा का है, एक वर्ग मुनि का। न तो 'पथिक', काव्य के नायक पथिक का नाम है, न उसकी प्रियतमा का। 'पथिक' जन-आन्दोलन की गाथा है, अतः नामों का उल्लेख करना शायद त्रिपाठी जी ने उचित नहीं समझा। इसी कारण वर्गचरित्र पात्रों को अपनाया है। 'पथिक' उन नवयुवकों का प्रतीक है जो पहले उदास थे एव बाद में सक्रिय हो गये। 'साधु' महात्मा गाँधी का प्रतीक है, राजा ब्रिटिश शासन का प्रतीक है। पथिक-प्रिया उन आदर्श भारतीय नारियों का प्रतीक है जो पति पर सब कुछ अर्पण कर सकती है। घर की चहारदीवारी तोड़कर वह सामने आती है एव देश के चरणों में अपने प्रिय पुत्र का बलिदान करने वाली भी है। त्रिपाठी जी की नारी-भावना पर गाँधीजी की प्रेरणा का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा है जो जगह-जगह व्यक्त होता रहा है।

प्राचीन शास्त्रीयता के अनुसार 'पथिक' में आये रसों पर दृष्टिपात करे तो इसका प्रधान रस भारतीय मत से 'वीर-रस' एव पाश्चात्य मत से 'उदात्त रस' (Sublime) ठहरता है। वीर-रस का स्थायी भाव उत्साह है। यहाँ वीर पुरुष पथिक है, जो कर्मवीर देश-प्रेमी है। पुस्तक का आरम्भ 'शान्त-रस' से हुआ—निर्वेद से भरा पथिक साँसारिकता से दूर प्रकृति-प्राँगण में विचरण करता मिलता है। प्रथम सर्ग की वैराग्य-भावना के बाद पथिक का वीरभाव जाग गया है, लेकिन अन्त में पथिक की हत्या से 'करुण-रस' का संचार हो जाता है। अतः पुस्तक दुखान्त है। स्पष्ट है कि प्राचीन पद्धति से पथिक का रस-विवेचन नहीं किया जा सकता। आधुनिक साहित्य का 'रस-निष्पत्ति' उद्देश्य भी नहीं है; अपितु विषय का उद्घाटन करना होता है। फिर पथिक दुखान्त-काव्य भी नहीं है। कारण उसका उद्देश्य जनता द्वारा सफल होता है। इसमें वियोग-शृंगार से वात्सल्य-रस का वर्णन श्रेष्ठ है। पथिक के पुत्र को सामने लाकर करुणात्मक स्थिति के उद्घाटन में कवि सफल है। चौथे सर्ग में पुत्र कहता है, जब माँ मर चुकी है 'उसे भूख लगी है' तब पाठक का हृदय बैठ जाता है, इसकी मार्मिकता अद्भुत है।

'पथिक' द्विवेदी-युग एवं छायावादी-युग के सन्नान्ति काल की कृति है। इस कारण इसकी शैली पर दोनों युगों की कला का प्रभाव पड़ा है। द्विवेदी-युगीन उपदेशात्मकता 'साधु' की पंक्तियों में है लेकिन कला मलिन नहीं पड़ने पाई। पथिक की भाषा में छायावादी राग है। लाक्षणिकता की तीव्रता तथा भाषा की तरलता एवं सरलता है। 'पथिक' के समय जन्मा छायावादी बालक किलक-किलक कर क्रीड़ा करने लगा था। त्रिपाठी जी ने खूब उसे दुलराया। अतः भाषा में छायावाद की तुलनाहट है।

भाषा में तत्सम पदावली का प्राधान्य है ; पर तद्भव 'सरबस्त' आदि तथा देशज, विदेशी अरबी-फारसी फिक्क जुआ आदि शब्द भी आ गये हैं। 'अलिकुल बकुल मुकुल' आदि शब्दालंकारों से भाषा की श्रीवृद्धि हुई है। लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग भाषा में ऊर्जा प्रदान करता रहा है।

१. पराधीनता से बढ़ जग में नहीं दूसरा दुःख है।

२. अपने ही हाथों अपने को मार-मार मरते हो।^१

भाषा में संगीतात्मक, प्राञ्जलता, लाक्षणिकता, ध्वन्यात्मकता एवं संकेतात्मकता भी विद्यमान हैं। यथा—

बहता है अविराम निरन्तर कल-कल स्वर से नाला।^२

भाषा का कवि चारु-चितेरा है।^३ भाषा भावाभिव्यवित के सूक्ष्म से सूक्ष्म 'संकेत' को व्यक्त करने में सक्षम है। अलंकारों का प्रयोग बड़ा मोहक एवं स्वाभाविक है—उल्लेख अलंकार—

हे जीवन की ज्योति ? हृदय की शक्ति, आँख के तारे।

हे स्मृति के आधार ? प्राण के प्राण। प्रेम-सम प्यारे।।^४

'ललित लहलही लता लसित' में अनुप्रास की अनुपम छटा है। 'बार-बार नखशिख उसमें' में वीप्सा का आगमन है। पथिक में मानवीकरण (Personification) के बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं—

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रग-विरग निराला।

रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद बाला।

'पथिक' में सारछन्द की आद्यन्त अद्भुत छटा है। छन्दों में भरभूर संगीतात्मकता है। 'पथिक' में एक सुन्दर गीत भी पथिक-पत्नी ने गाया है—

कामना और नहीं कुछ मेरी,

बहने दो प्रभु इन आँखों में जल की अविरल धार।

सदा सींचने दो जीवन के तापतप्त सब द्वार।।

इस प्रकार स्पष्ट है पथिक—भाव, भाषा, शैली की दृष्टि से एक असाधारण कृति है, जिसमें महाकाव्योचित औदात्य (Epic grandeur) विद्यमान है। भाषा में तरलता, सरसता, प्राञ्जलता, भास्वरता, प्रखरता, स्वच्छता एवं स्वाभाविक प्रवाह

१. पथिक, पृ० ४७

२. वही, पृ० ३६

३. वही, पृ० १६, पथिक काव्यम्, अनुवाद—मधुकर शास्त्री—(सम्मति पृष्ठ)

४. "पथिक को सिर से लेकर पैर तक देखा। रंग जोखा एवं ढंग अनोखा है। भाषा नुकीली एवं वर्णनशैली बड़ी चुटीली है।" (लाला भगवानदीन)

है। यद्यपि “प्रियतम-मन मोहन कला प्रवीणा” से सामासिक पद अवश्य आये हैं, पर वे भाषा को क्लिष्ट नहीं बनाते। भाषा के प्रयोग में कवि ने गाँधी जी की भाषा-नीति को अपनाया है। डॉ० उदयभानु सिंह का यह कथन “कही तो प्रसन्न वाक्य—विन्यास का अजस्र प्रवाह है कही छायावादी कवियों की गूढ़ व्यञ्जना।”^१ पण्डित लोचनप्रसाद पाण्डेय का कहना है कि—

पथिक ने दर्शन दिए पवित्र, हुए हम पावन तथा कृतार्थ ।
मधुर, मोहक उपदेश ललाम, श्रवण कर जाग उठा परमार्थ ॥
धन्य कविवर तब प्रतिभा धन्य, धन्य भावुकता भाषा शक्ति ।
धन्य यह देशोद्धार उपाय, धन्य रामेश्वर दर्शन-शक्ति ॥^२

मैथिलीशरण गुप्त जी का मत है—

इस कालीन सिद्ध कविवर ने पावन पथिक कहानी ।
उज्ज्वल गीतो मे रच की है कीर्तिमयी निजवानी ॥^३

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि ‘पथिक’ का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व है तथा ‘पथिक’ गाँधीवादी-विचारधारा से अनुप्राणित सफल खण्डकाव्य है। इस काव्य में कथा-गठन एवं प्रकृति-वर्णन पर कवि का विशेष ध्यान रहा है। कवि का सन्देश देशभक्ति के स्वरों में गुंजरित है। इस खण्डकाव्य में कवि ने प्राचीन परम्परा का स्वागत एवं नवीनता के प्रति मोह दिखाया है। उसमें सभी चरित्र वर्ग-चरित्र हैं, जिनका नामकरण करना भी त्रिपाठी जी ने उचित नहीं समझा। भाषा-शैली का रूप विकासोन्मुख है, पर अलंकारों में कवि की प्रवृत्ति छायावाद का पूर्वाभास देती है। वास्तव में ‘पथिक’ त्रिपाठी जी का सर्वश्रेष्ठ खण्डकाव्य है, जिसमें सत्य, अहिंसा और देश-प्रेम की धाराएँ बह रही हैं।

स्वप्न

‘स्वप्न’ त्रिपाठीजी का अन्तिम खण्ड-काव्य है। छायावादी युग में रचित इस कृति पर अनायास ही युगीन प्रभाव पड़ा है। पाँच सर्गों में विभक्त इस कथा में जीवन का एक खण्ड-चित्र बड़ा ही मार्मिक है। राष्ट्रीयता के भावों से ओत-प्रोत नवयुवक एवं नवयुवतियाँ अपने पूरे उत्साह के साथ देश की सेवा में तत्पर थे। त्रिपाठीजी ने

१. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ० २६३—डॉ० उदयभानुसिंह
२. पथिक काव्यम्—अनुवादक—कविरत्न मधुकर शास्त्रीजी (सम्मति पृष्ठ)
३. वही,

‘स्वप्न’ में नारी-जागरण का जो स्वप्न देखा था, वह आज साकार हो गया है। उस समय नारी-जागरण का इतना बड़ा आदर्श चित्रित करना त्रिपाठी जी की भविष्य दृष्टि का प्रतीक है। उनकी नारी स्वदेश के लिए तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण करती हैं। यौवन के अलहड़ तूफानी क्षणों को रोककर, पति की कामुकता को, नारी जाति का कलक समझ कर वे देश-सेवा के लिए तत्पर हो जाती है। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने ‘प्रिय-प्रवास’ में नायिका राधा का लोकसेविका-रूप चित्रित किया है, लेकिन त्रिपाठीजी की ‘सुमना’ लोकसेविका के साथ-साथ वीर राजपूत रमणी भी है जो पुरुषवेश धारण कर युद्धस्थल में निशक निर्भय होकर क्रोधित सिंहनी की तरह कूद पड़ती है, स्वदेश की रक्षा करती है। नारी-जागरण का इतना भव्य एवं विराट् रूप हिन्दी-साहित्य में शायद कहीं नहीं मिलता है। सन् १९२७ ई० के आसपास नारी-जागरण के कारण ‘सुमना’ का इतना आधुनिक रूप (देवी, पत्नी, क्षत्राणी एवं लोकसेविका) प्रदान करना त्रिपाठीजी के व्यक्तित्व की ही गरिमा है।

यह प्रेम-काव्य है। इस काव्य में वियोग की स्थिति भी दूसरे प्रकार की है। प्रायः पुरुष नारी को छोड़कर चला जाया करता है एवं पीछे से नारी विरह में ठुकराती, दहाडती या आंसू की सरिता प्रवाहित करती रह जाती है। वियोगिनी घर की चहारदीवारी में बन्द रहती है - गुप्तजी के स्त्रीपात्र—इसी प्रकार के होते हैं। लेकिन इस कृति में नायिका ‘सुमना’ अपने पति की कायरतापूर्ण बातों से असन्तुष्ट होकर उसे परित्याग कर चली जाती है।^१ देशभक्ति की प्रबल कामना के कारण पुरुष-वेश धारण करती हुई युद्ध करती है। पुरुष ‘वसन्त’ प्रियतमा के कपड़ों को, कभी घर के स्थानों को, सम्बोधित करता हुआ अपने असह्य विरह को व्यक्त करता है।

उसके भूषण-वसन उठाकर
हृदय लगाकर गद्गद होकर,
बार-बार चुम्बनकर दृग से
अश्रु गिराकर उन्हें भिगोकर,
सहसा उस निर्जन घर में वह
सुमना कहकर गिरकर भू पर,
मूर्च्छित-सा रहता था प्रायः
बहुत समय तक उसे स्मरण कर।^२

१. “इन्होंने प्रणय को कर्तव्य से शून्य नहीं दिखाया। वे प्रेम को सामन्त उपासना की वृत्ति नहीं मानते, उसमें कर्म की रमणीयता भी छिटकती है।”

बाङ्गमय विमर्श-३४२—प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

२. स्वप्न, ५३

त्रिपाठीजी के चरित्रवर्ग-चरित्र होते हैं, युवक वसन्त मानो उससमय के कामी, कायर नवयुवकों का प्रतीक है, जो विलास की उष्ण 'गन्ध' में 'मदान्ध' हो अपने कर्तव्य का विस्मरण कर बैठे थे। नारी का कोमल अक जिन्हें स्वर्गश्री से श्रेयस्कर लगता था—

मन कहता है इस भूतल पर,
सकल सुखो की नारी है निधि।
इस स्मृति के सचालन को,
नारी रचकर धन्य हुआ विधि ॥^१

चौथा अक समस्त 'वसन्त' के विरह में डूबा है। कभी उसे 'भू कनीनिका' की, कभी 'परिरम्भण चुम्बन' की, कभी 'विद्युत्-सी खिलखिला पड़ी वह', की कभी 'उसका गुलाब से सुन्दर मुख', कभी 'गोल भुजाएं' जो कण्ठहार बनती थी एव कभी 'मकरध्वज धन्वा'-सी भृकुटियों की स्मृति व्याकुल कर देती है। दूसरी ओर सुमना मानो आधुनिक आदर्श नारी का प्रतीक है,^२ जो कामी, कायर पति का परित्याग कर नारी-मस्तक से कलंक का निवारण कर, स्वर्ग कुंकुम का टीका लगाती है। सुमना नारी-जाति के कलक को धो देने को आकुल है। नारी के कारण यदि पति अपयश का भाजन होता है तो उस नारीतन के रूप एव यौवन को धिक्कार है।^३ वह आकाक्षा करती है—उसका भी कोई होता, जो देश-सेवा के लिये शत्रु से लड़ता एव विजयी होकर लौटता एव वह उसकी आरती उतारती। पति से युद्ध में जाने का जब अनुरोध करती है तब वह

१. स्वप्न, पृ० २१

२. “‘स्वप्न’ में सुमनादेवी ही उपदेशिका का कार्य करती है। इन काव्यों में आये हुए पात्रों का चित्रण इस रूप में नहीं हुआ कि वे अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाप हमारे हृदय पर डाल सकें। वे आधुनिक प्रचलित भावनाओं के प्रतीक-स्वरूप ही आते हैं। उनमें व्यक्तित्व बस उतना ही जितना उन भावनाओं की प्रतिष्ठा के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वे पात्र केवल छाया हैं। दीपक के प्रकाश में देखने से वे दिखाई ही नहीं पड़ेंगे। वसन्त के चरित्र में पूर्वा पर सामजस्य का अभाव भी कुछ खटकता है। पहले तो वह दुखियों के दुःख से दुःखी होता प्रतीत होता है; परन्तु जब उसकी स्त्री रणभूमि में जाने को कहती है तो कायरों की-सी बातें करने लगता है। सुमना का चरित्र एक आदर्श राजपूत रमणी का-सा हुआ है।”

३. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० २२०

कामी पुरुषों-सी बातें करने लगता है, जिन्हें सुनकर उसे अपार दुःख होता है एव वह इस कायरता का कारण स्वयं को समझकर, उसका परित्याग कर देश-सेवा के लिए चली जाती है। अन्त में देश को शत्रुरहित करते हुए वह अपने पति को भी अपना अनुकरण करते देख, गदगद हो जाती है। इस काव्य में केवल दो चरित्र या पात्र हैं। दोनों का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं, केवल उनमें व्यक्तित्व-पक्ष उतना ही उभरा है जितना 'भावाभिव्यक्ति' के दृष्टिकोण से हितकर लगता है।

इस कथा-काव्य का कथानक मौलिक एव प्रतीकात्मक है। प्रेमाख्यानक काव्य धारा का 'उदात्त-प्रेम' इस काव्य में है। कथानक में रीतिकालीन प्रेम का आदर्श परित्याग कर, नवीन आदर्श प्रस्तुत किया गया है। वात्सल्यमय प्रेम का 'आंचल' छोड़कर राष्ट्रीयता के 'भावों' से प्रेम का उदात्तीकरण किया गया है। वसन्त के वासनात्मक प्रेम का परिष्करण विरह में दग्ध होने पर होता है। वह देश-भक्ति से परिपूरित होकर राष्ट्रीय अक में स्थान पाता है। इस दृष्टि से त्रिपाठी जी की नारी, वरदायिनी शक्ति है। वह पुरुष को ऊपर उठाकर कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर करती है।

मैथिलीशरण गुप्त जी के नारी-पात्रों से आप उनकी तुलना करेंगे तो आपको साम्य कम, विरोध ही अधिक मिलेगा। लेकिन उनके ही अनुज सियाराम शरण गुप्त के नारी-पात्रों से यदि आप त्रिपाठी जी के नारी-पात्रों की तुलना करेंगे तो आपको विरोध कम, समानता अधिक मिलेगी। अपनी बात मैं अब कृतियों से उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहूँगा। जैसे यशोधरा तथा सुमना को ही लीजिए। गुप्तजी की 'यशोधरा' जाया, जननी, कानिनी तथा पति प्रण प्राणा पत्नी है, लेकिन गौतम के द्वारा अचानक रात्रि में परित्यक्त हो जाने पर केवल रोती है। पति की शिकायत करती है, अपना राग आलापती है, लेकिन आदर्श की बेड़ियों में जकड़ी हुई वह राज-महल की चहारदीवार नहीं लांघ सकती। उसका आदर्श प्राचीन राजपूत कुललाओं से समीपता रखता है। 'सुमना' अपने पति को प्रेरणा देने वाली नारी है। देश में संकट हो और वह अपने पति को कामी बनाकर कैसे बैठा सकती है? उसका निश्चित मत है कि यदि नारी का रूप और यौवन उसके पति को कायर तथा कामी बनाता है, तो वह कलंकिनी है। रूप और यौवन की सच्ची प्रेरणा तो यह है कि वह पति को उसकी दुर्बलताओं से मुक्ति दिलाती हुई, उसका नव-निर्माण करें। 'सुमना' ने अपने पति की कायरता को नष्ट करने के लिए स्वयं पुरुष-वेश धारण किया तथा युद्ध में कूदकर देश के सम्मान को नष्ट होने से बचाया है। गाँधीजी ने कहा था नारी केवल पुरुष की वासनापूर्ति का साधन ही नहीं है, वह दिव्य भी है। त्रिपाठी जी ने नारी के इसी दिव्य रूप को सुमना में प्रस्तुत किया है। सियाराम शरण गुप्त ने भी 'उन्मुक्त' नामक गीति-नाट्य में 'मृदुला' नामक, ऐसे ही नारी-पात्र की सृष्टि की है। मृदुला भी युद्ध के समय अपने कायर पति गुणधर को युद्ध की प्रेरणा देती

है। वह सुमना की भाँति पुरुष-वेश धारण कर युद्ध-क्षेत्र में तो नहीं जाती, लेकिन पति को युद्ध-यात्री बनाने के पश्चात् वह युद्ध का यान भेजती है। उसने भी युद्ध में सक्रिय भाग लिया है। इस दृष्टि से 'सुमना' तथा 'मृदुला' में बड़ी समानता है।

काव्य का नायक 'वसन्त कुमार' एवं नायिका 'सुमना' हैं। आरम्भ में हम उसे नदी के सुन्दर तट पर विचरण करते पाते हैं। अपनी प्रियतमा के साथ वह क्रीड़ा करता है।

मुँह पर मार खिलखिला पड़ती,
मैं तत्काल भुजाओं में भर।^१

सुमना उसे एक निश्चित पथ चुनने की विनय करती है। क्योंकि जब यौवन तीर की तरह निकल जायेगा तो पश्चात्ताप के अतिरिक्त शेष रह ही क्या जायेगा ! मनुष्य की महिमा का भव्य रूप तो लोकसेवा में ही है। कामी वसन्त गृहस्थ जीवन को चुनता है एवं कहता है—

कैसे कहाँ किधर को जाऊँ,
है क्या कोई मार्ग-प्रदर्शक।
दृग-अञ्जन से बुझा दिया है,
नारी ने विवेक का दीपक ॥^२

विवेकहीन बनकर वसन्त नारी की वासनात्मक मादकता से बेहोश रहता है। इसी समय एक विदेशी शत्रु उसके राज्य (देश) पर आक्रमण करता है। चारों ओर से माताओं, बहिनों एवं पत्नियों से रण में जाने की अनुमति लेकर युवकों के दल के दल चल पड़े।

अपने शयनागार बन्द कर दिये, नवोढ़ाओं ने तत्क्षण।
बाँध दिये पतियों की कटि में असि, कलाइयों में रण-कंगण ॥
माताओं ने विजय-तिलक कर, छिड़के थे जिन पर पवित्र जल।
ग्राम-ग्राम से निकल-निकल कर ऐसे युवक चले दल के दल ॥^३

सुमना भी गाँव की इस अपूर्व हलचल को देखकर अपने पति से विनय करती है, लेकिन वह कामी जाने से इन्कार कर देता है एवं उसके रूप एवं यौवन का प्रशस्ति गान गाने लगता है—

१. स्वप्न, पृ० ११

२. वही, पृ० २२

३. वही, पृ० ४१

धँसा हृदय मे है, हे प्यारी तेरो तीखी चितवन का शर ।

कसका करती है गुलाब के काँटे-सी नासिका मनोहर ॥

×

×

×

मैं आहत, मैं विवश, भला क्या कर सकता हूँ रण में जाकर !^१

पति की इन कायरतापूर्ण बातों को श्रवणकर सुमना को अपार कष्ट का अनुभव होता है । अपने को पति की कायरता का कारण समझकर एक रात्रि को प्राणेश्वर की छवि को अपने प्राणों में धारण कर देश-सेवा के लिए घर का परित्याग कर चली जाती है ।

स्वामी का कल्याण करें, हरि कहकर प्रेमवारि दृग में भर ।

तम में लुप्त हो गई घर से, एक आह के साथ निकलकर ॥^२

सुमना के चले जाने के उपरान्त कायर वसन्त विरह-विलाप में डकराता है । वह कभी उसकी अनुपम रूप-राशि का, कभी परिरम्भण चुम्बन का एव कभी मृदुल विद्युत्-सी खिलखिलाहट की स्मृति कर उन्मत्त हो जाता है । एक वर्ष तक लगातार वह इसी तरह का विलाप करता रहता है । एक दिन अचानक एक पुरुष आ जाता है, जो उसे उपदेश द्वारा सही मार्ग दिखाता है । वसन्त पूछता है क्या युद्ध में किसी स्त्री ने भाग लिया है ? युवक ने कहा, हाँ ! उसका नाम सुमना है । यदि वह समय पर न पहुँच गई होती तो तुम्हारा देश गुलाम हो गया होता । वसन्त ने कहा, मैं उसी स्त्री का भाग्यवान पति हूँ । इस प्रकार वह भी युद्ध क्षेत्र को प्रयाण कर देता है । युद्ध में सक्रिय भाग लेता है एवं शत्रुओं का नाश करता है । वसन्त की रण-निपुणता से शत्रु पराजित होता है एवं वसन्त का विजय-समारोह मनाया जाता है । अकस्मात् आकर सुमना अपने पति का अभिवादन पुष्प-माल से करती है । इस प्रकार 'कौतूहल' के सुखद क्षण दिखाकर काव्य का सुखान्त अन्त होता है ।

प्राणनाथ की सुमधुर वाणी सुनकर, सुमना गदगद होकर ।

सुकुचाकर धीरे से बोली—'मैं ही हूँ वह, हे प्राणेश्वर ॥'^३

इस प्रकार काल्पनिक कथानक में भी त्रिपाठीजी की प्रबन्ध-पटुता अद्भुत है । कथा की धारा बड़ी मिठास के साथ अविरल गति से बिना मस्तिष्क को झटका दिए हुये बढ़ती रहती है । कथानक में कौतूहलता की सृष्टि के कारण रूप-बन्ध में चार चाँद लगा दिये गये हैं । पाठक का कौतूहल, वसन्त को विरही एव सुमना को

१. स्वप्न, पृ० ४६

२. वही, पृ० ५०

३. वही, पृ० ७८

राष्ट्रसेवा के लिए सेविका के रूप में देखकर तथा दोनों को रणक्षेत्र में देखकर, उत्सव के अवसर पर बढ़ता ही रहता है, जिसका समाधान बड़ा ही मोहक, स्मरणीय, मार्मिक एवं अनुपम सुखान्त है। 'कमुद-इन्दु'^१ से.....आरम्भ भी नाटकीय वैचित्र्य से युक्त है। इस काव्य की भावान्विति एवं प्रभावान्विति (Unity of impression) बड़ा ही सहज है।

स्वप्न के सम्बन्ध में त्रिपाठीजी का मत है कि " 'पथिक' मेरी दक्षिण-यात्रा का स्मृति-चिह्न है और यह 'स्वप्न' उत्तर-यात्रा का। इसमें मैंने आजकल के नव-युवकों के दुविधामय हृदय को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। आजकल एक ओर तो देश का दुःख दैन्य करुण-रम उत्पन्न कर रहा है, दूसरी ओर सौंदर्य, शृंगार और सुख के लिए प्रकृति का प्रोत्साहन है। नवयुवकों का मार्ग शृंगार एवं करुणा-रस के बीच का है। शुद्ध हृदय के लिए दोनों ओर प्रबल आकर्षण है। किधर जाना चाहिए ? इस समस्या को हल करने के लिए मैंने यह 'स्वप्न' तैयार किया है। इससे इसमें दो परस्पर-विरोधी रसों का मिश्रण हो गया है।^२

"मैं प्रकृति का पुजारी हूँ। इससे प्रकृति के प्रति मेरा आन्तरिक-अनुराग 'पथिक' की तरह इसमें भी जहाँ-तहाँ उमड़ पड़ा है। काश्मीर में जिन-जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभा लिया था, उनका वर्णन मैंने उसके अनेक पद्यों में किया है।"^३ विचार करने पर कहना पड़ता है कि यह उक्ति पूर्ण सफल है। कवि का प्रथम सर्ग प्राकृतिक वैभव का भण्डार है। प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि देने में काव्य का अपना महत्त्व है। कवि प्रकृति के प्राणों में रम गया है—

चारु चन्द्रिका से आलोकित विमलोदक सरसी के तट पर।

बौर गन्ध से शिथिल पवन में कोकिल का आलाप श्रवणकर ॥^४

कवि का प्रतिपाद्य आदर्श राष्ट्रीयता का अवलोकन कराना है। उनके विचार से नारी कायर पुरुष को भी प्रेरणा प्रदायिनी बनाकर, विजय के भव्यतम मंच पर आसीन कर सकती है। वसन्त की कायरता की कालिमा उसकी अन्तिम विजय-यात्रा से तिरोहित हो जाती है। इसी कारण डॉ० रामचन्द्र मिश्र लिखते हैं कि—

"स्वच्छन्दतावादी काव्यों में स्वप्न भी महत्त्वपूर्ण है" कवि रामनरेश त्रिपाठी ने लौकिक प्रेम और व्यावहारिक राष्ट्रीयता का स्वरूप हमारे सामने रखने का

१. स्वप्न, पृ० ६

२. वही, पृ० १

३. वही, पृ० २

४. वही, पृ० ११

प्रयास किया है। उनके काव्य का यह स्वरूप बड़ा ही स्वाभाविक एवं हृदयाकर्षक है।^१ आलंकारिक एवं सश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण को प्रमुखता मिली है—

मुदित सहस्र-रश्मि ने पकड़ा चिर-सुहागिनी सन्ध्या का कर ।

लौट रहा है मानो चेतन जगत् अशुधर को पहुँचाकर ॥^२

‘स्वप्न’ का प्राकृतिक वैभव अद्भुत है, समस्त काव्य में नील-गगन की नीलिमा, श्यामला विश्वम्भरा वसुन्धरा की हरीतिमा, सूर्य, चन्द्र एवं तारकगणों के अमर गान हैं। आकाश को आच्छादित किये हुये मेघखण्ड एवं उनमें चमकती चपला की चंचलचर धिरकन देखकर उनका प्रकृति-प्रेमी हृदय अनायास ही कौतूहलवश प्रश्न करता है—

घन में किस प्रियतम से चपला करती है विनोद हँस-हँस कर ?

किसके लिए उषा उठती है प्रतिदिन कर शृंगार मनोहर ?^३

यह छायावाद के प्राकृतिक-वैभव का काल था, जिस समय ‘स्वप्न’ की रचना हुई थी।^४ इस कारण प्रकृति से बड़ी सुन्दर उपमाएँ, जिनका साम्य पन्तजी की उपमाओं से मिलता है।

करुणा-सी मृदु, धर्म गीत-सी,

शुद्ध, कल्पना-सी सुख सकुल ।

शुभ्र-उषा-सी, दिव्य हास्य-सी ।

रूप सिन्धु-सी मणि-सी मंजुल ॥^५

इन उपमा की लड़ियों को देखकर स्मरण आता है—

तरुवर के छायानुवाद-सी, उपमा-सी, नव भावुकता-सी ।

अविदित भावाकुल भाषा-सी, कटी छटी नव कविता-सी ॥^६

१. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृ० ३७०

—डा० रामचन्द्र मित्र

२. स्वप्न, पृ० २८

३. वही, पृ० २४

४. “‘स्वप्न’ नामक खण्डकाव्य तृतीय उत्थान काल में लिखा गया, जबकि छायावाद नाम की शाखा चल चुकी थी। इससे उस शाखा का रग भी कही-कही उसके अन्दर झलक मारता है।’

हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृ० ७०४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

५. स्वप्न, पृ० ३४

६. पल्लव, पृ० ५७—सुमित्रानन्दन पन्त

प्रकृति के सूक्ष्म, मधुर, कोमल एवं विराट् तन्तुओं से बुना उनका कवित्व बड़ा ही मोहक है। आलोचक श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी का कहना है कि—

‘स्वप्न’ की अपेक्षा ‘पथिक’ तथा ‘मिलन’ में त्रिपाठीजी का कवि हृदय अधिक मुकुलित है। ‘स्वप्न’ में वे कुछ प्रोज़िक हो गये हैं। स्वप्न के लघुमात्रिक अन्त्यनुप्रास अधिकांशतः शिथिल तुकबन्दी के हो गये हैं जिस कारण से वे वाक्य के आवेग को वहन नहीं कर पाते हैं। ‘स्वप्न’ में छन्दोबद्धता की ओर जितना ध्यान दीख पड़ता है उतना भाव के संगीत की ओर नहीं।^१ द्विवेदीजी का मत बड़ा ही सारगर्भित है, लेकिन ‘प्रोज़िक’ होने की ओर झुकाव होने पर भी उनका सहज कवित्व है, वह क्षत-विक्षत नहीं हो पाया। दूसरे देश-भक्ति में सन्तुलित राष्ट्रीयता ऐसे शुष्क एवं नीरस विषय को सरसता प्रदान करना उनकी ही कल्पना की विशेषता है। उनकी कल्पना भी ऐसे मर्मपथ पर चलती है कि पाठक बरबस उसका साथ देता है।

‘स्वप्न’ में आकर उनकी अभिव्यजना का निखार मिलता है। उनकी सरल शैली, अलंकृत शैली एवं बिम्ब ग्रहण शैली या चित्रात्मक शैली का सहज प्रस्फुटित रूप यहाँ है। यद्यपि वर्णन वेग के कारण-वर्णनात्मकता उनकी शैली की विशेषता है, पर कल्पना का कोमल आवरण उसे अलंकृत करके सँवारता है। उपमाओं के द्वारा कैसा चित्र उभारते हैं—

किया शत्रु का नाश उन्होंने, जैसे धन को प्रबल प्रभजन।

जैसे सम को प्रखर दिवाकर, जैसे वन को विकट हुताशन ॥^२

शैली में सदैव प्रवहमयता, परिमार्जन सौष्ठव ही रहता है, किन्तु जब वे पाठक को वीर कार्य का दृश्य दिखाते हैं तो उनमें विराट् वर्णन आते हैं। इस शैली का रूप ‘पथिक’ के पश्चात् इसमें ही सर्वाधिक मिलता है। भाषा विचारों का कोट न होकर विचारों के साथ, रक्त और त्वचा की भाँति है।

खड़ीबोली के निर्माताओं में त्रिपाठी जी का अन्यतम स्थान है। यहाँ आकर उनमें भाषा की प्रौढ़ता एवं भावाभिव्यक्ति की अद्भुत क्षमता मिलती है। संस्कृत पदावली का भाषा में सुन्दर विधान है, किन्तु भाषा में क्लिष्टत्व का एकांत अभाव ही कहा जायेगा। भाषा के सभी शब्द सार्थक, सशक्त एवं सवेगवान् हैं। यथा—
परिरम्भण, भ्रूकनीनिका, आशु-राशि, विमिश्रण, निवेशित, पृथुल, कान्तार, मकर-ध्वज, हृदतनया आदि संस्कृत के अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी ऐसा किया है कि वे खटकते नहीं; अपितु भाषा की चारुता में श्रीवृद्धि करते हैं। उपसर्ग लगाकर शब्द

१. कवि और काव्य, पृ० ७१—शान्तिप्रिय द्विवेदी

२. स्वप्न, पृ० ७४

बनाना छायावादी भाषा की विशेषता रही है। पन्तजी इस कला के साक्षात् सम्राटेश्वर हैं। त्रिपाठीजी में भी 'अब हुआ सान्ध्य स्वर्णाभलीन' में पन्तजी स्वर्णाभ की तरह 'हरिताभधरा पर' आता है तथा 'विक्षोभविचुम्बित, प्रनाड़ित, विलोचन, परिदर्शन, विनिन्दित' आदि शब्दों को वे अतिशय प्यार करते हैं। 'विमल' त्रिपाठीजी का अतिशय प्रिय शब्द है जिसका वे पुनः-पुनः प्रयोग करते हैं। यथा—

१. हरित भूमि के मध्य विमल पथ पुष्पित लनाप्रसून मनोरम। स्वप्न
२. चारु चन्द्रिका से आलोकित विमलोदक सगसी के तट पर।
३. ऐसे पद्म-पत्र से पुलकित विमल सरोवर में नौका पर।

भाषा में प्रवाहवश पंजाबी के 'लाजा' तथा उर्दू के शब्द भी आ गये हैं।

यथा—

हम गायेंगी गीत मनोहर फूल और लाजा बरसा कर ॥^१

उर्दू के 'मसोस, कुर्बानी, गरीबिनी' आदि शब्दों ने भाषा को शक्ति प्रदान की है। मुहावरों एवं लोकोक्तियों के द्वारा भाषा में प्रभावोत्पादकता एवं विचाराभिव्यक्ति क्षमता आ गई है। यथा—

१. रह जाता हूँ मन मसोसकर।

यौवन शीघ्र बीत जायेगा। इस उक्ति को 'निकल जायेगा का तीर की तरह' कहकर भाषा में प्राण डाल दिये हैं। भाषा भावों के भार को वहन करने में समर्थ है। भाषा पर उनका अधिकार स्थान-स्थान पर बड़ा स्पष्ट है। कवि शब्दों को साथ लेकर कल्पना के सागर में शब्द लहरियाँ उठाता है—

१. सरस विमल निरलस कलरवमय।
२. जाता हूँ मैं जलविहार को तरणी में तरणी को लेकर।
३. जीवन भर अबलोकन करना कुवलय-दल-नयनी का शशिमुख।

भाषा को शब्दालंकारों ने धनी बनाया है। वे भाषा की यति गति को इनके द्वारा परिवर्धन करते हैं :—

अनुप्रास १. चारुचन्द्रिका से आलोकित।

२. पर-पद दलित पर-मुखापेक्षी,

पराधीन परतन्त्र पराजित।

बीप्सा का प्रयोग उन्हें अतिशय प्रिय है। भावों के अभिव्यक्तीकरण के लिए बार-बार वे इसका प्रयोग करते हैं। यथा—

१. विचरण में था निरत एकदिन 'मन्द-मन्द' धर चरण कोकनद।

२. अति उतावलेपन से चलकर गोल पत्थरो पर 'गिर-गिर' कर।

इस प्रकार भाषा सरस, तरल, मोहक, भास्वर, परिमार्जित, प्रभावोत्पादक एवं स्वाभाविक अकृत्रिमता से परिपूरित है। भाषा में प्रसाद गुण की सर्वत्र प्रधानता रही है।

अप्रस्तुत विधान पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है, उन्होंने अलकारों के द्वारा भावको अभिव्यक्त किया है। अलकारों के प्रति अनावश्यक मोह का उन्होंने त्याग ही किया, इस कारण अलंकार साध्य नहीं, साधन बनकर आये हैं। वाणी में प्रभावोत्पादक क्षमता की सृष्टि भी अलकारों ने की है। उन्होंने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का प्रयोग अधिक किया है। 'उपमा' उनका सबसे प्रिय अलंकार है, यद्यपि 'उत्पेक्षाओं' की छटा भी अद्भुत है। छायावादी उपमाएँ—

उपमा १. शुभ्र उषा-सी, दिव्य हास्य-सी,
रूप-सिन्धु की मणि-सी मञ्जुल ।^१

२. विद्युत्-सी खिल-खिला उठी वह,
हाय ! भूलता नहीं एक क्षण !^२

रूपक—यौवन की उत्तप्त दुपहरी में विद्रुम मरु मार्ग अघ्न पर ।^३

उत्प्रेक्षा—भ्रम होता है रग बिरगी हरित धरा को देख यकायक,
पुरुष-प्रिया की सूख रही है ये मानो साड़ियाँ असख्यक ।^४

उल्लेख अलंकार—

प्राण बल्लभे, प्रिये, सुबदने !
इन्दीवर-आयत-दल लोचनि !
प्रेम तरंगिणि ! चित-विहारिणि !
हे सुभगे ! भव ताप-विमोचनि ।^५

स्थान-स्थान पर मानवीकरण (Personifications) के बहुत ही सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा—

घन में किस प्रियतम से 'चपला' करती है विनोद हस-हस कर ?
किसके लिए उषा उठती है प्रतिदिन कर शृंगार मनोहर ?^६

१. स्वप्न, पृ० ३४

२. वही, पृ० ३५

३. वही, पृ० २०

४. वही, पृ० २७

५. वही, पृ० ४८

६. वही, पृ० २४

प० कृष्ण शंकर शुक्ल का कहना है कि एकाध स्थल पर अप्रस्तुत-विधान का दोष आ गया है।^१ 'संकेत पर नाचना' एक कहावत है पर यह कहना अमुक पुरुष अमुक स्त्री के संकेत पर ऐसे नाचता है जैसे बन्दर मदारी के हाथ, तो पावन प्रेम-संस्ति पर आघात पहुँचता है। 'स्वप्न' में एक स्थल पर यह दोष विद्यमान है, यद्यपि उन्होंने सदैव दोषों का परिहार ही किया है। यथा—

तेरी मकरध्वज धन्वासी बक-भृकुटियों के इगित पर ।

मेरी सब गतिविधि निर्भर है जैसे कीट मदारी के कर ॥

छन्दों की प्रवृत्ति परिवर्तनशील रही है। 'मिलन' तथा 'पथिक' के छन्दों में एक द्विवेदी-युगीन बन्धन था, जिसे द्विवेदी-युगीन छन्द-बन्धन कह सकते हैं, लेकिन 'स्वप्न' में उनकी प्रवृत्ति को खुला क्षेत्र मिला है, यही कारण है यहाँ पर छन्द-परिवर्तन प्रत्येक सर्ग के उपरान्त होता है। अतः छन्दोबद्धता पर कवि का ध्यान यही राखकर सर्वाधिक रहा है, इस कारण से भाव एव सगीत कुछ मन्द ही पड़ गया है। छन्दों में अन्त्यानुप्रास के कारण शिथिल तुकबन्दी भी मिलती है, पर कवि ने सदैव इस दोष के निराकरण का प्रयास किया है। छन्दों पर कवि का अधिकार प्रतीत होता है, किन्तु छन्द कठपरा या कविता-कामिनी के लिये सीमित चहारदीवारी कही ही बना।

निष्कर्ष में कह सकते हैं कि उदात्त-प्रेम के कथानक पर आधारित इस काव्य की राष्ट्रीयता बड़ी ही अद्भुत है। यही पर आकर उनकी खड़ीबोली की कविता अपना चरम विकास देखती है। सफल खण्ड-काव्य की समस्त परिभाषाओं पर कसने पर भी यह एक सफल युगीन खण्ड-काव्य कहा जा सकता है। इस काव्य में नारी-रागरण का अद्भुत दृश्य दिखलाया गया है। पात्र-संख्या केवल दो ही है, उनका चित्र-चित्रण इतना ही हुआ है जितने में त्रिपाठीजी अपने भावों को व्यक्त कर सके। यह कृति छायावादी रचना है। इसके अभिव्यञ्जनाशिल्प पर छायावादी कला का प्रभाव बड़ा स्पष्ट है। कथानक मौलिक एव नाटकीय-वैचित्र्य से युक्त है। इस खण्डकाव्य में कविता धारा, प्रेम और जीवन के बीच से प्रवाहित रही है। स्वच्छन्दतावादी कृतियों में 'स्वप्न' का महत्वपूर्ण स्थान है।

मानसी

'मानसी' त्रिपाठी जी की मुक्तक कोटि की रचना है, इसमें समय-समय पर लेखी गई अड़सठ कविताओं का सकलन उनके अभिन्न मित्र श्री गोपाल नेवटिया

द्वारा किया गया है। मुक्तक परम्परा की कृतियों में इसका अपना विशिष्ट गौरव है। कविताओं के विषय-वैविध्य का सर्वेक्षण करने से स्पष्ट हो जाता है, जो कवि अपने तीनों अमरकाव्य 'मिलन', 'पथिक' एवं 'स्वप्न' में प्रबन्ध-पटुता का चरम कौशल दिखा देता है वही कवि स्वतन्त्र विषयपरक मुक्तक कविताओं को भी इतना सुन्दर लिख सकता है, यह असमजस में डाल देने वाली बात है। इन कविताओं को देखने से लगता है कि प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों विधाओं पर उनका समान अधिकार था। उन्होंने बड़ी तरंग में आकर इन मुक्तक गीतों को लिखा है, ऐसा इनके आत्म-संगीत से स्पष्ट झलकता है।

'मानसी' में भाव-वैविध्य एवं विषय-वैविध्य की अनुपम छटा बिखरी है। 'मानसी' को इसी कारण से भावों की अनोखी भावशाला या रगशाला कह सकते हैं। कहीं राष्ट्रीयता का उच्चतम रूप, कहीं स्वदेश प्रेम ध्वनि, कहीं जनता की आह, कहीं व्यग्य पर व्यग्य, कहीं प्रियतम से विनय, कहीं प्रार्थनाओं की खिली मालाये। उसमें रग-विरग पात्र एवं तरल-तरल भाषा में रूप की ललक एवं रग की चटक है। उनकी—

हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों से दूर हमको कीजिए।^१

यह प्रार्थना तो जनता का कण्ठहार बनकर गाँव-गाँव, घर-घर, नगर-नगर, डगर-डगर में गूँज उठी थी। 'मानसी' की अधिकांश कविताएँ समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। अतः उनकी जन-प्रियता सर्वाधिक है। भावों का सहज उच्छलन तथा विचारों का गाम्भीर्य होने के साथ-साथ, त्रिपाठी जी की प्रतिभा को यह वरदान प्राप्त है। वे भाव को अपने कल्पनामय पाश में ऐसा आबद्ध करते हैं कि वह प्रतिभा की आभा से आलोकित हो उठता है। भाव भी ऐसा नहीं जो केवल रजन कराके मौन हो जाए अपितु एक सुन्दर जीवन-चित्र उभरता है, जो यथार्थ से आदर्श की ओर दृढ़ता से पैर बढ़ाता हुआ प्रतीत होता है।

विषय वैविध्य को ध्यान में रखकर मानसी की कविताओं को स्थूल रूप से छः भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. राष्ट्रीयता की कविताएँ।
२. व्यग्य परक कविताएँ।
३. प्रार्थनापरक कविताएँ।
४. अध्यात्मपरक कविताएँ।
५. नीति परक कविताएँ।

६. सामान्य वर्णनात्मक कविताएँ ।

राष्ट्रीय कविताओं में 'वह देश कौन-सा है' कवि की सर्वाधिक जनप्रिय कविता है, जो देश प्रकृति की लावण्यमयी गोद में स्थित है, जिसमें सुधा बहाती हुई नदियाँ, रसीले फलवाले वृक्ष, दिन-रात हँसते हुये फूल, अनन्तराशि का भण्डार, आनन्द-कानन, ब्रह्मज्ञानियों का देश, भरत-लक्ष्मण का शुद्ध प्रेम आदि का वर्णन है। कवि प्रश्न करता है कि राजनीतिपटु कृष्ण, हनुमान, भीष्म, शंकर का देश कौन-सा है ? अन्त में कवि गौरव का अनुभव करता हुआ स्वयं उत्तर देता है 'भारत सिवाये दूजा'^१ और कौन-सा देश हो सकता है। भारत की इस महिमा का वर्णन देखकर जयशंकर प्रसाद जी की पक्तियाँ जो 'चन्द्रगुप्त नाटक' में "यह स्वप्नों का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना, यह प्रेम की रंगभूमि—भारतभूमि क्या भुलाई जा सकती है ? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्य की जन्मभूमि है यह भारत मानवता की जन्म-भूमि है"^२ सहसा स्मृति-पटल पर आ जाती है। इस कविता में राष्ट्रीय भावना का इतना भव्यरूप है कि कवि के प्रति पाठक सम्मान के भार से झुक जाता है। भारत की महिमा का गान तो सभी कवि करते रहे हैं, लेकिन यह कविता तो कण्ठहार बनी रही है। 'मातृभूमि की जय, स्वदेश गीत, महापुरुष, कामना, परलोक हार में जीत' आदि कविताएँ अपने मूल भाव में राष्ट्रीय हैं। इनका स्थान आचार्य राम शुक्ल के शब्दों में आनन्द की साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य में है। 'स्वतन्त्रता का दीपक' इस घनाक्षरी छन्द में निहित भाव बड़ा सुन्दर है। 'दीपक' एक उत्साही वीर पुरुष का प्रतीक है। यहाँ कवि कहता है :—

जग में उजाला करने को निज शोणित से,

दीपक स्वतन्त्रता का शूरमा सजाये हैं।

कवि के व्यंग्यपरक पद्य भी इसमें संग्रहीत हैं, जैसे 'काश्मीर', 'हैट के गुण', 'नया नखशिख', 'चन्दा', 'देख ली हमने मसूरी', 'नानी का घर'^३—आदि कविताओं में बड़ा मुखर व्यंग्य है।

त्रिपाठी जी ने फैशन के ऊपर दीवाने लोगो पर करारा व्यंग्य किया है। लोग खाना खाने में पेट काटते हैं तथा सूखी काया की खूँटी पर हजार रुपये की साड़ी टांग लेते हैं। सूखा शरीर लेकर भी मन को सन्तुलित रखने की चेष्टा कभी नहीं करते हैं—

श्रीम, पाउडर या लिपिस्टिक की कला से,

कोई बीबी साहिबा, टीबी छिपा सकती नहीं है।

१. मानसी, पृ० ४८

२. चन्द्रगुप्त, पृ० १६६—जयशंकर प्रसाद

३. चिन्तामणी, प्रथम भाग, पृष्ठ २१२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

स्वास्थ्य तो स्वर्गीय धन है वह तपस्यासे मिलेगा,
मुंह बनाकर कोई उसको यों ही पा सकती नहीं है।
देख ली हमने मसूरी,
होगई बस चाह पूरी।

मुनियों की सन्तान को हीनवीर्य होता हुआ देखकर कवि को अपार आत्म-कष्ट होता है। दीन-हीन तथा आर्त व्यक्तियों के दुःख को देखकर उनका हृदय कवि निराला की भाँति ही पिघलने लगता है। वे अपनी बात घुमा-फिरा कर नहीं कहते, सीधी कहते हैं। अर्थात् लक्षणा, व्यञ्जना की अपेक्षा काव्य की अभिधावृत्ति ही वे अपनाते हैं। कही-कही तो उनका व्यंग्य इनका सीधा घस जाता है कि झरबेरी के काँटे की भाँति कसकता तो हुत है, लेकिन जितना ही उसको निकालने की कोशिश की जाती है, उतना ही और गहरा घुसता जाता है।

इन कविताओं से लगता है कवि के व्यंग्य में वक्रता, तीखापन एवं भाव गाम्भीर्य का अद्भुत योग है, उनके व्यंग्य छिछले, हल्के बाजारू व्यंग्य नहीं हैं, वे साहित्यिक मर्मज्ञ के चारू व्यंग्य हैं। व्यंग्य कविताओं में भावना का प्रवाह बड़ा अकृत्रिम है। वन्य फूल की तरह स्वाभाविक बिखरे ये पद्य अपनी आभा में अनुपम हैं। 'नया नखशिख' पद्य में व्यंग्य देखिए—जिममें कवि ने एक अनोखी नायिका की कल्पना की है—

जिमके उरोज मिश्र देश के पिरामिड़ हो,
ध्रुव की निशानी-सी केशराशि सिर पर हो।
'ऊँट' ऐसी गति हो नितब हो पहाड़ ऐसे,
चीन की दीवार मेखला-सी जिस पर हो ॥
साहब के दिल में दिमाग में दिखाव में भी,
हिन्दी के भलाई के ख्याल-सी कमर हो।
ऐसी नायिकाओं का निवास भगवान् करे,
हिन्दी के कविता-प्रेमियों के घर-घर हो ॥^१

नग्न यथार्थ का चित्राकन करने में उनका व्यंग्य बड़ा तीखा होता है—'काश्मीर' वर्णन में—

सड़कें बुहारती, घृताची रति, रभा जहाँ,
गोबर बटोरती है मेनका तिलोत्तमा।^२

१. मानसी, पृ० ७४

२. वही, पृ० ७४

कवि के प्रार्थनापरक पद्य उनके वैष्णव सस्कार एवं भक्ति की प्रतीक हैं। उनकी प्रार्थनाएँ समष्टि कल्याणगत भावों से ओत-प्रोत हैं, उनमें भक्ति एवं विनय का समन्वय अद्भुत है। 'हम लेगे तेरा नाम' उनकी प्रमुख कविता है, उसमें उनकी भक्ति से आपूरित आत्मा गुंजरित है—

हे माधव जीवन मेरा।

है क्रीड़ा कानन तेरा ॥^१

दीन दुखियों के लिए उनके हृदय में बड़ी करुणा थी, इसी करुणा की त्रिवेणी में निमज्जित कवि 'आकाशा' करता है—'दुख-दलितों में हम आशा की किरण क्यों न हुये'—

मानते विघाता का बड़ा ही उपकार हम,

होते गाँठ के घन कहीं जो दीन जन के।^२

त्रिपाठीजी सगुण साकार ईश्वर के अनन्य उपासक थे। उन्हें कण-कण में उस विराट् शक्ति के सौन्दर्य-सकेत दृष्टिगोचर होते थे। 'अन्वेषण' कविता, उनकी एक अमर वरदान है। इस कविता में कवि की भोली भावना का बड़ा-चारु-चित्र है। इस कविता में कवि ने प्रश्न उठाया है ईश्वर कहाँ निवास करता है? मानव की आत्मा में, प्रेम में या आडम्बरयुक्त जीवन में? इसी भाव को कवि अनेक प्रकार-भेद दिखाकर उपस्थित किया है। यथा—

तू रूप है किरण में, सौन्दर्य है सुमन में,

तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में।^३

ईश्वर की खोज में भटकता कवि अन्त में उसे सर्वत्र रमण करने वाला अणुपरिमाण में विद्यमान, सूक्ष्म से लेकर विराट् तक उसकी ही महिमा का दर्शन करता है। 'चमत्कार, प्रियतम, आश्चर्य, जब मैं निकल खड़ा था' आदि कविताएँ इसी कोटि की हैं।

द्विवेदी-युग सुधार एवं परिष्कार का युग था। कवि में श्रृंगार की भूल-भूलैया का मादक वर्णन नहीं था, जीवन के प्रति नैतिक दृष्टिकोण ही प्रमुख था। इसी कारण मैथिलीशरण गुप्त, एक भारतीय आत्मा, नवीन जी, सियारामशरण जी, त्रिपाठी जी आदि कवियों की कविताओं में 'उपदेशात्मकता' का आग्रह प्रबल है। कविताओं से कोरा रजन कराना ही उनका उद्देश्य न था, अपितु समाज में नीति-ज्ञान का उदय करना भी था। त्रिपाठी जी ने नीतिपरक पद्य एवं कविताएँ की—जिनमें

१. मानसी, पृ० ८०

२. वही, पृ० ३४

३. वही, पृ० २६

नीति के दोहों, पाँच सूचनाएँ, प्रेम, मित्र महत्त्व, सज्जन निवास, साधु और नीच आदि कविताएँ प्रमुख हैं। नैतिकता का स्वर देखिए—

जल न पान स्वयं करती नदी
फल न पादप है चखते स्वयं ।^१

तथा—
आकृति, लोचन, वचन मुख, इगित, चेष्टा, चाल ।
बतला देते हैं यही भीतर का सब हाल ॥^२

यहाँ उपदेशात्मकता ने कवित्व के सहज रूप का आच्छादन कर लिया है।
वैसे उनकी अन्य सामान्य वर्णन की कविताएँ हैं। जैसे पुस्तक, हिन्दू विश्व-विद्यालय 'स्मृति' आदि तथा 'शारद तरंगिणी' आदि कविताएँ हैं। इनकी कविताओं में त्रिपाठीजी का कवि हृदय बड़ा मुकुलित है। कवि की कल्पना को यहाँ बड़ा विस्तार मिला है। सरिता की अबाध-धारा का वर्णन करते हुए कवि की वाणी का प्रवाह देखिए—

तरल तुग तरंग उछालती,
पुलिन के तरु-राशि उखाड़ती ।
उलटती तरणी, तट तोड़ती,
समय नाविक को करती हुई ॥^३

'विधवा का दर्पण' कविता करुण-रस से ओत-प्रोत है। कवि का हृदय इस स्थान पर भरा-भरा-सा दृष्टिगोचर होता है। हिन्दू विधवा का जीवन निराशा का पर्वत है। निरालाजी ने 'वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन' भारत को विधवा कहा भी है। समाज के इस अभिशाप को कि 'विधवा-विवाह' बन्द हो नारी ही सहती है कारण—

नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन हैं नारी ही को लेकर ।
अपने लिए सभी सुविधाएँ पहिले ही कर बैठे नर ॥

गुप्त जी ने 'पंचवटी' में यही भाव दिया है। द्विवेदी-युग नारी-जागरण का युग था, इस युग की नारी-भावना का साहित्य में विशेष महत्त्व है। लक्ष्मी नारायण मिश्र ने अपने 'समस्या नाटक', 'सिन्दूर की होली' में एक स्थान पर कहलाया है—

“मैं विधवा हूँ इसलिए मैं विधवा-विवाह के पक्ष में वोट दूँ? यही न.....”

१. मानसी, पृ० ६

२. वही, पृ० ४६

३. वही, पृ० ६६

विधवाओं के उद्धार के नाम पर यह आन्दोलन पुरुषों ने उठाया है, अपने उद्धार के लिए।^१ 'विधवा का दर्पण' कविता में दर्पण अपने बीते हुए समय का स्मरण करता है, जब कामिनी का कर उसे सहलाता था। मुग्धा का कर, उसकी प्रेम मूर्ति की स्मृति उसे आती है। उस स्त्री का पति देश-रक्षा में अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है, उस समय से वह स्त्री विरहिणी बनकर रोती रहती है। दर्पण धूल में और अन्धड में उल्टा पड़ता रहता है उसे कोई उठाता भी नहीं— उसका उपेक्षित जीवन बड़ा ही हृदयविदारक है। वह दर्पण चिन्ताग्रस्त सोचता है—

न जाने कब से चिन्ता-मग्न, त्रिरह विधुराभूखी प्यासी।

कहाँ होगी वह विह्वल व्यथित, हाय करुणा की कविता-सी।^२

प्रकृति को त्रिपाठी जी ने अपनी कविताओं में सदैव साथ रखा है। 'पुष्प-विकास' कविता में प्रभात वेला में विकसित प्रसून एवं इठलाती हवा का वर्णन तथा 'तब से मुँदे न मुख चकित सुमन के' बड़ा हृदयग्राही है। उनका ईश्वर भी 'तेरी छवि' में 'खोलचन्द्र की खिडकी अब तू स्वर्ग सदन से हसता है,' बड़ा ही सुन्दर है। प्रकृति त्रिपाठीजी के प्राणों में रम चुकी है इसलिए प्राकृतिक वर्णन में उनकी भावुकता बड़ी अद्भुत है। गोपाल नेवटिया का यह कथन बड़ा ही उचित है—

"सचमुच इस 'मानसी'-रूपी वीणा की तन्त्रियाँ, किसी एकान्त शान्त वायु-मण्डल में, प्रकृति की गोद में, कल-कल निनादिनी नदी के चन्द्रकासिवत् तट पर किसी साधु-हृदय में 'झकृत' होगी।"^३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तको को 'पूलो से सजा 'गुलदस्ता' ' कहा है। वास्तव में उनका यह कथन तो मानसी पर चरितार्थ होता है।

'मानसी' में कवि का भाषा-शिल्प बड़ा ही सहज, सुन्दर एवं आकर्षक है। 'सज्जन' आदि कविताओं की संस्कृत निष्ठ-परिमार्जित भाषा एक ओर है, दूसरी ओर उर्दू मिश्रित सरल हिन्दी। कहीं कहीं आग्ल-भाषा के 'शब्द' जब वे व्यंग्य करते हैं, 'हेट, जेन्टिलमैन, लेडी-पाउडर, लिपिस्टिक' आदि शब्द आए हैं। भाषा में प्रवाह-मयता, प्राञ्जलता एवं सरलता के लिए मुहावरो का प्रयोग जैसे—'फूल उठे हाथ-पाँव उपवन के' आदि प्रयोग भी हुए हैं। भाषा में 'या' प्रत्यय द्वारा ब्रजभाषा की ललक को उत्पन्न किया गया है। भाषा में बिम्ब-विधान की 'शब्दों' द्वारा बड़ी शक्ति है। भाषा का बड़ा ही जनसाधारण-रूप कवि ने प्रस्तुत किया है, जो एक महान् प्रतिभाशाली कवि की अनिवार्य विशेषता होती है। भाषा की बोधगम्यता ही उनकी कविताओं में जन-प्रियता का कारण बन सकी है। इसी कारण आलोचक प्रवर

१. सिन्दूर की होली, पृ० ६६—लक्ष्मी नारायण मिश्र

२. मानसी, पृ० ५२

३. वही, पृ० ८, भूमिका—श्री गोपाल नेवटिया

प० शान्तिप्रिय द्विवेदी का यह कथन — “त्रिपाठी जी की मुक्तक कविताओं में एक गति है तो गुप्तजी की मुक्तक कविताओं में एक संगीत । एक में उद्गीर्णता है, दूसरे में विभोरता । गुप्त जी के छन्दों और शब्दों में भी आर्यत्व का ध्यान है । त्रिपाठीजी के शब्दों एव छन्दों में राष्ट्रीयता का विचार ।”^१

शब्दालंकार भाषा के अभिन्न अंग होते हैं, उनसे भाषा में प्रभविष्णुता एवं गत्यात्मकता उत्पन्न होती है । शब्दालंकारों में वीप्सा, अनुप्रास त्रिपाठीजी को बहुत प्रिय हैं, यद्यपि श्लेष एव यमक का प्रयोग भी वे आवश्यकतानुसार कर देते हैं—

१. अनुप्रास—वृत्यानुप्रास

‘केकी के कलाप कोकिला के कल गान में’

छेकानुप्रास—विलाप विधवा का सुन हम मुख पाते है ।^२

वीप्सा—बार-बार देखी अनदेखी होत जात है ।^३

अलंकार वाणी के विभूषण हैं । कवि के अलंकारों का प्रयोग बड़ा ही अकृत्रिम है, वे भावाभिव्यक्ति में सहायक हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, विरोधाभास, उल्लेख आदि तथा कही-कही लक्षणा पर आधारित अलंकार मानवीकरण की अनुपम छटा हैं ।

उपमा—काक-सा कुटिल, मधुमक्खी-सा कृपण कोई

मोर-सा गुमानी कोई ‘लोभी’ मथुरकर-सा ।^४

रूपक तथा उत्प्रेक्षा—खोल चन्द्र की खिड़की अब तू,

स्वर्ग सदन से हँसता है ।

पृथ्वी पर नवीन जीवन का,

नया विकास विकसता है ।^५

उल्लेख—तू रूप है किरण में, सौंदर्य है सुमन में ।

तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में ॥^६

विरोधाभास—मेरे करुणानिधि का आसन गरम होगा,

कौन जाने कब मेरे शीतल उसाँस से ।

१. कवि और काव्य, पृ० ७०—प० शान्तिप्रिय द्विवेदी

२. मानसी, पृ० ३१

३. वही, पृ० ३२

४. वही, पृ० ३७

५. वही, पृ० २८

६. वही, पृ० २६

‘मानसी’ सन् १९२७ में आ गई थी। अतः कुछ कविताओं पर छायावाद का प्रभाव पड़ा है। मानवीकरण जो छायावादी अलंकार योजना की एक विशेषता है इसमें बहुत मिलता है। यथा—

तरल तुंग तरंग उछालती,
पुलिन के तरु-राशि उखाडती।
उलटती तरणी तट तोडती,
समय नाविक को करती टुई ॥

इस प्रकार अलंकारों ने भाषा तथा भावों को कलात्मकता एवं भाव-मुक्तता प्रदान की है।

‘मानसी’ में छन्दों का वैविध्य है। यद्यपि अधिकांश पदों में ‘घनाक्षरी छन्द’ का इतना ललित प्रयोग आश्चर्य में डालने वाली वस्तु है। ‘नारी एवं नख-शिख-वर्णन’ नामक पदों में कवि रीतिकालीन घनाक्षरी छन्द की धारावाहिकता एवं मादकता लाता है। त्रिपाठी जी उर्दू के भी मर्मज्ञ थे। मनमोजी उनका स्वभाव था, अतः उन्होंने मानसी में ‘अन्वेषण’, ‘राम कहाँ मिलेगे’ आदि में ‘उर्दू-छन्दों’ का प्रयोग किया है। एक स्थान पर ‘हरिऔध जी’ के प्रिय प्रवास की छन्द-शैली पर ‘सञ्जन’ कविता की रचना की है, जो संस्कृत-छन्द में है। हरिगीतिका छन्द का प्रयोग तथा गीतिका-छन्द का प्रयोग लम्बी कविताओं में किया है। इस छन्द वैविध्य को देख कर श्री गोपाल नेवटियाजी लिखते हैं—“ऐसे सुन्दर घनाक्षरी छन्द खड़ीबोली में इने-गिने कवियों ने ही लिखे हैं।.....उनकी परम प्रसिद्ध कविता जो ‘अन्वेषण’ नाम से इस पुस्तक में है, उर्दू-छन्द ही में है। इसी प्रकार उपचार, हार की जीत, वह देश कौन-सा है? तथा शाम शीर्षक कविताएँ भी उर्दू बहरो में हैं और एक से एक बढ़कर हैं।”^१

निष्कर्ष में कह सकते हैं कि ‘मानसी’ में प्राचीनता के प्रति सम्मान एवं गौरव-मयी दृष्टि तथा नवीनता का अभिनव स्वागत है। समय-समय पर लिखे गए ये मानस मौक्तिक साहित्य के जोहरी ही परख सकेंगे। भावना की पवन कल्पना के सागर में ‘बीचियाँ’ उठाती रही हैं एवं इन मौक्तिक हीरों को बाहर निकालती रही हैं। इसी कारण डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का यह कथन अपने में बड़ा सत्य है कि “उनका कविता-संग्रह ‘मानसी’ भाव-चित्रों से पूर्ण है और उसमें कल्पना का भी विशेष भाग है।”^२

१. मानसी भूमिका, पृ० २१-२२

२. आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० ७४, प्रधान सम्पादक—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

—डा० रामकुमार वर्मा

राष्ट्रीयता

‘राष्ट्र’ आग्न शब्द—(नेशन) के पर्याय रूप में हिन्दी में प्रयुक्त होता है। राष्ट्र का विशेषण राष्ट्रीय शब्द—(नेशनलिस्टिक) के समीप आ जाता है। विश्व मानव के हृदय में राष्ट्र अथवा जननी जन्मभूमि के प्रति प्रगाढ़ रागात्मक की भावना अनन्त काल में अविच्छिन्न ‘धारा’ के रूप में प्रवाहित होती रही है। राष्ट्रीय-भावना का सबसे बड़ा कार्य है कि विशाल जनमानस में वह एकता (unity) एवं बन्धुत्व की भावना का विकास करती है। ‘स्व’ की व्यष्टिगत भावना से ऊपर उठकर जब हम मानवता के क्षितिज से ‘झाँकते’ हैं तब राष्ट्रीय भावना का जन्म होता है। ‘जिंमरन’ ने अपनी पुस्तक ‘राष्ट्रीयता और सरकार’ में लिखा है कि—

“मेरी दृष्टि में राष्ट्रीयता का प्रश्न सामूहिक जीवन, सामूहिक विकास और सामूहिक आत्मसम्मान से सम्बद्ध है।”

इस कारण राष्ट्रीय-साहित्य की व्यापक ‘परिधि’ में वह समस्त साहित्य समाहित हो जाता है, जो किसी देश की जातीय विशेषताओं का परिचय देकर, जाति को उन्नति, अवनति, सृजन, विनाश का रूप देता है। समाज, राष्ट्र, देश की सीमा को पार कर राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता की गोद को विश्राम-‘धाम’ बनाती है। श्यामला, कोमला वसुन्धरा के समस्त पुत्र अनेकत्व में एकत्व पाने लगते हैं।

राष्ट्रीय-साहित्य का सर्वाधिक सृजन उस समय होता है, जब राजनीतिक परिस्थितिवश स्वदेश-प्रेम की भावना प्रबल हो जाती है। जब दो देश अथवा दो राष्ट्र या दो जातियों का आपस में संघर्ष होता है। कवि अतीत के गौरव का गान, उत्साह, वीरता, त्याग, क्षमा के साथ-साथ देश की महिमा का अंकन रहता है।

“विश्व सभ्यता के विकास में कुछ अवसर ऐसे आये हैं जब राष्ट्रीय भावना ने जोर पकड़ा। यूरोप की व्यावसायिक क्रान्ति का राष्ट्रीय-‘भावना’ के विकास में पर्याप्त योगदान है। लगभग १५०० ई० के अनन्तर सभी देशों के साहित्य में इस भावना ने प्रमुखता प्राप्त की। प्रत्येक देश अपनी जातिगत विशेषताओं को लेकर साहित्य-सृजन में अग्रसर हुआ।^१ देश-विदेश की उस राष्ट्रीय-भावना का प्रभाव

बड़ा ही जन-व्यापी हुआ। राष्ट्रीय कविताओं के कवि का पक्ष सदैव सुधारवादी ही होता है। वह अपने देश की वर्तमान परिस्थिति से असन्तुष्ट होकर उसमें सुधार करना चाहता है। देश एवं विदेश का राष्ट्रीय काव्य (National Poetry) इसका प्रमाण है। हिन्दी में भारतेन्दु-युग एवं द्विवेदी-युग के अधिकांश कवियों का काव्य सुधारवादी दृष्टिकोण से ही लिखा हुआ कहा जा सकता है।

हिन्दी कविताओं में राष्ट्रीय-भावना का प्रारम्भिक स्वरूप वीरगाथाकाल की कृतियाँ पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो आदि में ही मिल जाता है। चारण कवि 'जिसका खाना उसका गाना' के रंग में 'रंगे' थे, इस कारण इनकी भावना में सकीर्णता एवं साम्प्रदायिकता का अतिशय मेल हो गया है। इस कविता को राष्ट्रीय-कविता का सङ्कुचित काल कह सकते हैं, जिसमें विकृत रूप ही मिलता है। चारण काव्य के इस युग में वीरता में शृंगार का पुट 'भोग विलास' के कारण आ गया। भक्तिकाल में तुलसीदास ने रामायण में 'निसिचर हीन करौ महीं भुज उठाय प्रनकीन्ह' में राष्ट्रीयता के स्वर को मुखरित किया है। 'मानस भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का आधार-स्तम्भ, अपनी व्यापक राष्ट्रीयता के कारण ही माना जाता है। रीतिकाल में कवि 'भूषण' ने अपना स्वर सशक्त रखा है। उन्हें 'राखी हिन्दुवानी हिन्दुवानी को तिलक राखने वाले नायक पर अभिमान था। भूषण पर साम्प्रदायिकता का आरोप लगाना गलत है, कारण, वे मुसलमान जाति के विरोधी नहीं अपितु क्रूर शासक के (औरंगजेब के) क्रूर कर्मों के विरोधी थे। इतिहास साक्षी है कि उनके नायक शिवाजी लोक-हितकारी नायक हैं। उनकी राष्ट्रीयता हिन्दुत्व की भावना से पालित पोषित है, जिसमें मुसलमानों से घृणा का प्रचार न होकर क्रूर शासक के प्रति आक्रोश अधिक है।

आधुनिक काल नव-जागरण का अरुणोदय है। पाश्चात्य प्रभाव के कारण नवीन चेतना प्राप्त हुई। वास्तव में भारतेन्दु-काल राष्ट्रीय गतिशील धारा का युग है। इस सक्रान्तिकाल में प्राचीनता के मस्तक पर नवीनता की वन्दनवार सुशोभित है। "भारतेन्दु के समय में एक विदेशी शासन के स्थापित होने के विरुद्ध राष्ट्रीय-भावना की जागृति से कला और साहित्य में फिर एक उन्मेष आया और राष्ट्रीय-साहित्य का दूसरा उत्थान शुरू हुआ।" "इस उत्थान में देश के विभिन्न भाषा-क्षेत्रों में राष्ट्रीय-साहित्य और कलाओं का जैसा अभूतपूर्व और सर्वतोमुखी विकास हुआ, उसके इतिहास से तो सभी पाठक परिचित हैं। यह विकास कुछ वैसा ही महान् था जैसा पुश्तकाल के समय से लेकर टालस्टॉय और गोर्की तक रूस में हुआ और जिसने वहाँ पर राष्ट्रीय-साहित्य और कला के एक नये उत्थान की भूमिका तैयार की। हमारे यहाँ हिन्दी, उर्दू, बंगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगु आदि देश की अन्यान्य भाषाओं में इस बीच अनेक प्रतिभा-सम्पन्न कवि, कथाकार और नाटककार

हुए हैं, जिनकी कृतियाँ देश के विभिन्न भाषा-भाषी पाठको मे ही लोकप्रिय नहीं हैं, बल्कि उनमें से जिनका अनुवाद यूरोपीय भाषाओं में हो सका है, वे अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व भी पा गई हैं। इसी तरह इस बीच विभिन्न प्रदेशों के जातीय संगीत, नृत्य, चित्रकला तथा अन्य कलाएँ, जिनका विकास रुद्ध पड़ा था, राष्ट्रीय जागरण का अनुकूल वातावरण पाकर पुनः विकसित हुई और प्रत्येक क्षेत्र में महान् प्रतिभाओं का विकास हुआ। भारतेन्दु, बंकिम, रवीन्द्र, इकबाल, जोश, प्रेमचन्द, प्रसाद, पन्त, निराला, जैनेन्द्र, अवनीन्द्रनाथ, नन्दलाल बोस, जैमिनीराम, उदयशंकर, विष्णु दिगम्बर, फैयाज खाँ और उस्ताद इनायत अली खाँ आदि इस युग के साहित्यकार और कलाकार इसलिए महान् और अमर नहीं हैं कि उनकी कृतियों में देश-काल की परिस्थितियों और राष्ट्रीय जीवन से असलग कोई ऐसी कल्पित विश्वजनीनता है या मनुष्यमात्र के ऐसे गुणों का आकलन करने का प्रयत्न है, जो शाश्वत और कालातीत है।” (आलोचना अंक)

उन्नीसवीं शती में जिसको राष्ट्र-जागरण कहा गया था वह ‘विश्व-साहित्य’ में सदैव स्मरण किया जायेगा। डॉ० श्रीकृष्ण लाल का कहना है कि “भारत में आधुनिक युग जैसी राष्ट्र की भावना कभी थी ही नहीं। जन्म भूमि अथवा ‘मातृभूमि’ नाम की वस्तु तो थी अवश्य, पर हम अपने गाँव को ही जन्मभूमि मानते थे। भारतवर्ष को जन्मभूमि मानना हमने पश्चिम से सीखा।..... हिन्दी में राष्ट्रीय कविताओं के जन्मदाता हरिश्चन्द्र हैं।”^१ भारतेन्दु एक ओर तो समाज-सुधार की भावना से प्रेरित एवं दूसरी ओर विदेशी-सत्ता के विरोधी थे।

रोबहु सब मिलि के आबहु भारत भाई ।

हा, हा, भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥

द्विवेदी-युग हमारे देश के इतिहास में गहरी सामाजिक एवं राजनैतिक उथल-पुथल का युग है।^२ इसी काल-खंड में प्रथम यूरोपीय महासमर हुआ, जिसने यूरोपीय समाज-व्यवस्था को किसी ‘प्रबल झझावत’ में झकझोर दिया। ‘कांग्रेस’ की नींव पड़ चुकी थी। भारतीय राष्ट्र स्वाधीनता की दौड़ में आगे बढ़ रहा था। द्विवेदी-युग की प्रमुख भावना देश-प्रेम की भावना है। श्रीधर पाठक, सत्यनारायण कविरत्न एवं राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता परक रचनाएँ लिखीं। जिस राष्ट्रीय भावना का उत्थान ‘भारत दुर्दशा’ से जग जाय तेरी नोक से सोये हुए है भाव जो ‘भारत-भारती’ में हुआ, उसका पोषण त्रिशूल, एक भारतीय आत्मा, श्यामनारायण पाण्डेय, बालकृष्ण शर्मा तवीन, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाओं में हुआ।

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ८२—डॉ० श्रीकृष्ण लाल

२. इतिहास विशेषांक—अक्टूबर १९५२—सम्पादक शिवदानसिंह चौहान

रामनरेश त्रिपाठी इसी राष्ट्रीय परिवार के बड़े कर्मठ सदस्य हैं। इसी कारण से यह कहना उचित ही है जैसे आलोचक एव कवि नरेन्द्र शर्मा ने कहा है कि “नये एव पुराने के बीच प्रमुख थे श्री रामनरेश त्रिपाठी, जो राष्ट्र-भारती के प्रति अर्पित अपनी सेवाओं के कारण, राष्ट्रकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त के बाद सर्वाधिक महत्त्व के कवि हैं। इनकी कविता अन्वेषण में—

‘मैं खोजता तुझे था जब कुँज और वन में,
तब खोजता मुझे था तू दीन के सदन में।’

‘हे प्रभो आनन्द दाता जान हमको दीजिये।’ उनकी यह लोकप्रिय प्रार्थना और मिलन, पथिक और स्वप्न उनके खण्डकाव्य उन्हे राष्ट्रीय कविता का प्रमुख कवि कहलाने का अधिकारी बनाते हैं।^१

त्रिपाठी जी का हृदय राष्ट्रीयता की उत्ताल तरंगों से तरगायित है। उनके सभी खण्डकाव्यों का एक ही स्वर है—राष्ट्रीयता, देश-भक्ति एव अतीत के गौरव का गान। उनके तीनों खण्ड-काव्य—मिलन, पथिक एव स्वप्न, काल्पनिक कथा पर आधारित होकर राष्ट्रीयता के रंग में रंगे हैं। ‘मानसी’ में सकलित कई कविताओं का मूलधार भी यही है। वे राष्ट्रीयता का कोरा उपदेश न देकर कार्यात्मक रूप दिखाते हैं। विदेशी शासन के क्रूर कर, जहाँ विनाश का खेल खेलते रहे थे। गांधी जी का अभिनय प्रारम्भ था ही। ऐसे समय में विदेशी शासन का डटकर विरोध करना त्रिपाठी जी के ही व्यक्तित्व की गरिमा थी। शासन के विरुद्ध बोलना जब अभिशाप समझा जाता था, तब देशवासियों को विदेशी शासन के प्रति सजग करना उनका ही पौरुष था। राष्ट्रीय-कविता के क्षेत्र में वे भविष्य दृष्टा एव सृष्टा कवि थे। ‘मिलन’ एव ‘पथिक’ में (१९३०) जो स्वप्न देखा, वह ३० वर्ष बाद सन् १९४७ में पूरा हुआ—‘पथिक, मे जनता क्रूर शासन का अन्त कर देती है एव स्वयं शासन सम्हालती है। यही भविष्य स्वप्न उनका आगे सफल हुआ। इसी कारण आचार्य प्रवर रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा, “स्वदेश-भक्ति की जो भावना भारतेन्दु के समय से चली आती थी उसे कल्पना द्वारा रमणीय एव आकर्षकरूप त्रिपाठी जी ने ही प्रदत्त किया। त्रिपाठी जी के तीनों काव्य देश-भक्ति के भाव से प्रेरित हैं। देश भक्ति का यह भाव उनके कई पात्रों को जीवन के कई क्षेत्रों में सौन्दर्य प्रदान करता दिखाई पड़ता है—कर्म के क्षेत्र में, प्रेम के क्षेत्र में भी। वे पात्र कई तरफ से देखने में सुन्दर लगते हैं। देश भक्ति का रसात्मकरूप त्रिपाठी जी द्वारा प्राप्त हुआ इसमें

१. दो महायुद्धों के बीच हिन्दी कविता, पृ० १०५ प्रधान सम्पादक—शिवदानसिंह चौहान—आलोचक इतिहास विशेषांक—अक्टूबर १९५२ लेखक—नरेन्द्र शर्मा—

सन्देह नहीं।^१ वैसे त्रिपाठी जी के चरित्र प्रतीक-चरित्र होते हैं। वे इतना ही व्यक्तित्व रखते हैं जितना भाव की अभिव्यक्ति को आवश्यक है।

‘मिलन’ खण्डकाव्य सन् १९१४ ई० में प्रकाशित हुआ। आनन्द नायक एवं विजया नायिका है। मुनि उपदेश देते हैं। मुनि के उपदेश देने पर वह दोनों देश-सेवा को कटिबद्ध हो जाते हैं—

जिस प्रकार से अब स्वदेश का होगा पुनरुत्थान।

वही करूँगी यत्न अट्ठनिश देकर तन-मन प्राण ॥^२

मुनि का उपदेश मानो स्वयं कवि का उपदेश वाक्य है। यथा—

बोले मुनि हे पुत्र, देश की है गति अति प्रतिकूल।

धीरे-धीरे क्षीण हो रहा है स्वजाति का मूल ॥^३

स्वार्थरहित एवं बलवान् पुरुष ही देश-भक्त बनता है। उसे सुख-दुःख समान लगते हैं। मातृभूमि पर शीश चढ़ाना उनकी पूजा है। यथा—

देश-भक्त का हृदय बड़ा ही होता है बलवान्।

शैथ्या काँटों की लगती है उसको फूल समान ॥^४

नारी विजया स्वयं धूम-धूमकर पीड़ितों की सेवा करती है। युवक, युवती एवं मुनि के प्रोत्साहन से जनता में क्रान्ति की ज्वाला धधकती है। राजशक्ति तीनों को पकड़कर वध की आज्ञा देती है। युद्ध का वातावरण प्रस्तुत हो जाता है। मुनि उसी समय प्रजावर्ग की टुकड़ी लेकर आता है एवं घायल हो स्वर्गवास का अधिकारी बनता है। युवक एवं विजया विजित हो ‘मिलन’ पाते हैं। प्रजा में ‘जागृति’ का मन्त्र वे इस प्रकार सन् १९४१ ई० में फूँक रहे थे—

निकली प्रजा मिलन को घर से,

क्रोधित सिंह समान।

देश-भक्ति की स्वतन्त्रता में,

होने को बलिदान ॥

इस प्रकार इस कृति का प्रनिपाद्य ही राष्ट्रीयता है।

पथिक राष्ट्रीयता धारा का अमर काव्य है। ‘भारत-भारती’ के पश्चात् यह सर्वाधिक जनप्रिय रहा है। राष्ट्रीय-आन्दोलन में भाग लेने वालों युवकों का

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७०४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२. मिलन, पृ० ३७

३. वही, पृ० ५२

४. वही, पृ० ५७

यह हृदय हार बना रहा। जेल में जाने वाले युवक इसे अपने जेबों में छिपाये रहते थे। 'पथिक' समसामयिक-बोध की सबसे समर्थ तथा प्रबल प्रतिज्ञिया-बोध की अटूट जीवट वाली रचना है। इसे भी 'भारत-भारती' की भाँति ही आधुनिक भारत की राष्ट्रीय-गीता कह सकते हैं। कवि समस्त देश में जागरण का शंखनाद करता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्थिति पर सोचने को मजबूर करता है। 'भारत-भारती' अतीत का हवाला देकर वर्तमान को जगाना चाहती है, उसमें प्राचीनता का गौरव-गान अधिक है। वैसे भी गुप्त जी अतीतोन्मुखी कवि हैं। वे अतीत से वर्तमान को प्रेरणा देना चाहते हैं। इसके विपरीत त्रिपाठी जी अतीतोन्मुखी न होकर वर्तमान के वृक्ष पर दृढ़ता से स्थित हैं। जो कुछ उन्होंने दिया है, उसे दृढ़ता से सम्भालना चाहते हैं। उनमें तत्कालीन-बोध की प्रबलता है तथा पराधीन देश को पारस्परिकता तथा सामूहिकता के साथ युद्ध करने की प्रेरणा का आग्रह उनमें अधिक है। उन्नीसवीं शदी में जो नया सांस्कृतिक आन्दोलन चला, उसका सर्वाधिक प्रबल पक्ष तत्कालीन राष्ट्रीय-चेतना में दिखाई देता है। काव्य में यह चेतना प्रायः अतीत के गौरव से जीवन ग्रहण करती रही और तत्कालीन परिवेश से जुड़कर जीवन्तता का संचार करने की कोशिश करती रही। मैथिली शरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी में आकर यहाँ प्रवृत्ति उद्बोदनात्मक तथा गुणात्मक अधिक हो गई। इन्होंने इसमें सवेगात्मक तथा सवेदनात्मक तीव्रता भी उत्पन्न की है। नवीन जी तथा माखनलाल में क्रान्ति की कल्पना प्रबल रही, लेकिन गुप्त जी तथा त्रिपाठी जी में जनता को जगाने तथा गठित करने का भाव ही बल पकड़े रहा। तत्कालीन वातावरण में व्याप्त असन्तोष, आक्रोश तथा दर्द ही इनमें अधिक मुखर रहा है।

'पथिक' अपने अन्तराल में स्वतन्त्रता की वह चिनगारी छिपाये बैठा है, जो अमर है। राष्ट्रीयता के नायकत्व में होने वाला—स्वतन्त्रता-संग्राम एवं राजनैतिक असहयोग आन्दोलन का प्रत्यक्ष चित्रण करता है। यहाँ लगता है कि युग-पुरुष की वाणी को भाषाबद्ध किया गया है। गाँधी जी के सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों की इस पर स्पष्ट छाप है। 'पथिक' इस काव्य का नायक है। वह महामानव गाँधी का प्रतिरूप है। अपनी प्रियतमा की अनुनय-विनय को अस्वीकार कर वह मुनि के सम्पर्क में आता है। मुनि उसे अतीत का गौरव एवं वर्ग का उपदेश देकर कर्तव्य-पथ दिखलाते हैं—

वह सनेह की मूर्ति दयामयि माता-तुल्य मही है।

इसके प्रति कर्तव्य तुम्हारा क्या कुछ शेष नहीं है ॥^१

×

×

×

मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति गौरव से ।

अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से ॥

जिस जननी जन्मभूमि ने जीवन-रस देकर बड़ा किया है, उसके ऊपर से संकट की काली घटा को हटाना एक अनिवार्य आवश्यकता है । पथिक कहता है—

फिर बोला हे जन्मभूमि ! हे देश प्रेम घन मेरे ।

मैं यह जीवन पुष्प चढाता हूँ चरणों पर तेरे ॥^१

पथिक गाँव-गाँव में भ्रमण करता है । उसे विमलोदक पुष्पकर, लता-प्रसून मही अतिशय प्रिय लगती है, किन्तु जनता की दीन दशा देखकर उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है । इतना परिश्रम करने के उपरान्त भी कृषक नितान्त निर्धन है ।

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में ।

माँस नहीं है, निरी साँस है, शेष अस्थि-पञ्जर में ॥^२

‘गम’ खाती जनता जो ‘सूई-धागे’ से हीन है, उसके दुःख-दर्द का कारण को वह सोच लेता है—

शासकगण असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है, ।

रक्षक से भक्षक बनता है सरबस हर लेता है ॥^३

चारों ओर अविश्वास, दम्भ, झूठ, घृणा का व्यापार चलता है । शासक-दल प्रजा का खून चूसता है । कवि का हृदय विकल हो जाता है । तब थककर पथिक जन-क्रान्ति चाहता है । जनता की दुर्दशा का दोष वह जनता को ही देता है । वह कहता है—

एक व्यक्ति निर्दयी निरंकुश बन बैठा अधिकारी ।

शासन है कर रहा तुम्ही पर लेकर शक्ति तुम्हारी ॥

अत्याचार स्वयं ही अपने ऊपर तुम करते हो ।

अपने ही हाथों अपने को मार-मार मरते हो ॥^४

उसका मत है कि शासन से अपनी शक्ति प्रजा को हटा लेनी चाहिये । पराधीनता अभिशाप है, जनता को स्वयं शासन अपने हाथ में लेना चाहिए । इस प्रकार जन-समर्थन पाकर पथिक जन-क्रान्ति का वातावरण उपस्थित करता है । पथिक पर राजकोप होता है एवं स्त्री-पुत्रसहित निर्दयता से काल-कवलित कर दिया जाता है । प्रजा में आतंक छाया रहता है । प्रजा अन्याय के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करती

१. पथिक, पृ० ३७

२. वही, पृ० ४२

३. वही, पृ० ४२

४. वही, पृ० ४७

हैं एव सफल होती है। यही त्रिपाठी जी का भविष्य स्वप्न, जो ३० वर्ष के बाद सन् १९४७ में पूर्ण होता है।

‘शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर मे’

इस प्रकार ‘पथिक’ का गांधीवादी नायक उच्चकोटि का देश-भक्त है। उस समय ऐसे देशभक्तों की आवश्यकता थी। इस कारण उन्होंने काल्पनिक कथा के माध्यम से राष्ट्रीय-भावना का अभिव्यक्तीकरण किया है। सम्पूर्ण काव्य में कही भी पथिक एवं पथिक-स्त्री का नाम नहीं आया है।

‘स्वप्न’ में आकर उनकी राष्ट्रीयता सन्ने एव पकने लगती है। उनके स्वर में यहाँ तक पर्याप्त प्रौढ़ता एव विश्वास आ जाता है। यही कवि नवयुग की जागृति का संकेत देता है। वह देश-सेवा में नारी एव पुरुष दोनों को लगाना चाहता है। युवक वसन्त प्रारम्भ में कायर दृष्टिकोण अपनाता है। यह दृष्टिकोण ही उस समय के नवयुवकों का यथार्थमूलक चित्रण करता है।

पति की कायरता का कारण स्वयं को समझ कर ‘सुमना’ उसे त्याग कर चली जाती है एव देश पर चढ़े शत्रु-सेना का डटकर मुकाबला करती है। मानो वे कहना चाहते हैं कि नारियाँ वीरागनाएँ हैं, वे कोमल ही नहीं ‘बच्चादपि’ कठोर भी हैं। ‘सुमना’ आदर्श हिन्दू रमणी है। ‘सुमना’ के जाने के बाद ‘वसन्त’ में परिवर्तन आता है एव वह भी कायरता का परित्याग कर रणक्षेत्र में चला जाता है। उसे एक ही लगन है—

पर पद-दलित, पर मुखापेक्षी,

पराधीन परतन्त्र पराजित ।

होकर कही आर्य जीते हैं,

पामर, पशुसम, पतित, पराश्रित ॥^१

यहीं पर कवि का कोमल अन्तर हूक के साथ कूक उठता है—

विषवत रेखा का वासी जो जीता है नित हाँफ-हाँफ कर ।

रखता है अनुराग अलौकिक वह भी अपनी मातृभूमि पर ॥^२

यही पर त्रिपाठीजी अपने आदर्श देशभक्त की झाँकी दिखलाते हैं। उसमें अदम्य साहस एव अटल प्रतिज्ञाएँ होती हैं। यथा—

सागर-सा गम्भीर हृदय हो,

गिरि-सा ऊँचा हो जिसका मन ।

ध्रुव-सा जिसका लक्ष्य अटल हो,

दिनकर-सा हो नियमित जीवन ॥^३

१. स्वप्न, पृ० ६९

२. वही, पृ० ६८

३. वही, पृ० ६६

सुमना की विजय होती है। वसन्त अद्भुत वीरता दिखलाता है एवं उसे विजय मालाओं से अलंकृत किया जाता है।

इनके तीनों काव्यों में कोई न कोई महात्मा कर्तव्यपथ का निर्देशन करने को मिल अवश्य जाता है। सभी चरित्र प्रतीक-चरित्र हैं। उनके तीनों काव्यों का प्रतिपाद्य—राष्ट्रीय भावना ही है। इसी कारण प० कृष्ण शंकर शुक्ल का कहना है कि “इसी उद्देश्य से त्रिपाठीजी ने देश-भक्ति का उपदेश स्वयं न देकर अपने काव्यों में उसी रंग से रंगे हुए कुछ पात्रों का चित्रण किया है। उनकी तीनों प्रसिद्ध पुस्तकों का विषय यही है। ये पुस्तकें ‘पथिक’, ‘मिलन’ तथा ‘स्वप्न’ हैं। इन काव्यों के नायकों को कोई न कोई महात्मा देश-भक्ति का उपदेश देने के लिए मिल जाता है।”^१

‘मानसी’ में अतीत के गौरव का गान है, तो कहीं मातृभूमि-वन्दना है। त्रिपाठी जी की राष्ट्रीयता सकुचित राष्ट्रीयता नहीं, वह देश की सीमा का अतिक्रमण कर अन्तर्राष्ट्रीयता की सीमा में आती है। कोई भी पराधीन देश उनके काव्यों से प्रेरणा ग्रहण कर सकता है। इसी कारण उनके राष्ट्रीय-काव्य अमर काव्य हैं एवं युगों-युगो तक उत्साही नवयुवकों, देश-भक्तों को प्रेरणा देते रहेंगे। राष्ट्र-कवि गुप्तजी का देश-प्रेम अद्भुत है। उनमें भावना की प्रबलता सर्वाधिक है। कहना चाहिए कि राष्ट्रकवि गुप्त जी राष्ट्रीय परिवार के पिता-हैं ‘एक भारतीय आत्मा’ उसके संरक्षक एवं त्रिपाठीजी उसके सदस्य। आलोचक प० शान्ति प्रिय द्विवेदी का यह कहना त्रिपाठी जी के सम्बन्ध में बड़ा उपयुक्त लगता है—“देश काल की प्रवृत्तियों और आदर्शों के मतानुसार कविता को लोकोपयोगी बनाना आपका ध्येय है। काव्य द्वारा सामयिक आदर्श की पूर्ति करने से त्रिपाठीजी के काव्य की परिधि परिमित हो गई। इसलिए उनके खण्डकाव्यों में एक ही कथा, एक ही आदर्श विभिन्न शब्दों में थोड़े ही हेर-फेर से प्रकट हुआ।”^२ इस कारण उसे जीवन-वैविध्य के साथ वह विशाल प्राण प्राप्त नहीं हो सका, जो श्री मैथिलीशरण गुप्तजी की प्रतिभा को प्राप्त हुआ। काव्य क्षेत्र में गुप्तजी की प्रतिभा बहुमुखी फूली-फली है। त्रिपाठीजी की कविताओं में राष्ट्रीयता की छाप रहती है एवं वे उसमें डूबी होती हैं। किन्तु द्विवेदी-युगीन राष्ट्रीय-काव्य में उनका स्थान राष्ट्रकवि गुप्तजी के समान न होकर उनसे थोड़ा नीचा है। गुप्तजी का सांस्कृतिक काव्य जिस चेतना का उद्भावक था, उसका विकास बाद में दिनकर जी में हुआ। त्रिपाठीजी राष्ट्रीय-काव्य की धारा में स्मरण अवश्य किए जायेंगे, क्योंकि उनके काव्यों में तत्कालीन-बोध का जीवन्त रूप रक्षित है।

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२०—प० कृष्णशंकर शुक्ल

२. कवि और काव्य, पृ० ६६—प० शान्ति प्रिय द्विवेदी

गांधीवाद का प्रभाव

प० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी के उस युग में आते हैं, जिसको इतिहासकार 'द्विवेदी-युग' के नाम से पुकारते हैं। युग की महान् विभूति स्वनामधन्य महावीर प्रसाद ने इसी समय एक 'कवि-समुदाय' को एकत्रित किया था, जिसमें राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त, श्री रामचरित उपाध्याय, प० लोचन प्रसाद पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, सियाराम शरण गुप्त आदि कवि 'द्विवेदी-मण्डल' के कवि हैं। इन कवियों के मन एवं मस्तिष्क पर पूर्ण रूप से द्विवेदी जी की आकाक्षाओं का अधिकार था। इसके विपरीत कुछ कवि अपनी स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति में लीन थे। इन कवियों ने बन्धन एवं सीमा को तोड़कर अपनी रुचि स्वातन्त्र्य एवं उन्मुक्त शैली के कारण साहित्याकाश में स्वच्छन्द होकर गगनचारी विहंग की तरह विचरण किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन कवियों को 'द्विवेदी-मण्डल' के बाहर के कवियों में स्थान दिया है। इनके नाम हैं, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', नाथूराम शर्मा 'शकर', लाला भगवानदीन, रूपनारायण पाण्डेय, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', प० रामनरेश त्रिपाठी आदि। इन कवियों ने भावना की रसाल डाल में झूला डाल स्वच्छन्दता से पैंगे भरी एवं यह कहना सरल है इन कवियों के चार छायावादी स्तम्भों ने जिनमें प्रसादजी, पन्तजी, निराला जी एवं महादेवी वर्मा का नाम स्मरणीय हैं। इनके आने से पूर्व ही स्वच्छन्दतावाद का मार्ग प्रशस्त कर दिया था। इसी कारण डॉ० श्री कृष्णलाल ने इन कवियों को स्वच्छन्दतावाद के प्रथम काल का जन्मदाता कहा है।^१ वास्तविकता तो यह कि इन कवियों ने छायावाद की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी।

द्विवेदी-युग के स्वच्छन्दतावादी कवियों में त्रिपाठीजी सर्वाधिक महत्त्व के हैं। इसी कारण डॉ० रामचन्द्र मिश्र ने लिखा, "काव्य में जिस स्वच्छन्दतावाद का प्रारम्भ पं० श्रीधर पाठक द्वारा किया गया था, उसका स्वाभाविक स्वरूप ही त्रिपाठी जी के काव्य में प्रस्फुटित हुआ। उनकी स्वच्छन्दतावादिता राष्ट्रीय-भावनापरक है।"^२

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ २—डॉ० श्री कृष्ण लाल

२. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य, पृष्ठ ३६३

—डॉ० रामचन्द्र मिश्र

इनकी 'स्वच्छन्दतावादी' धारा एकोन्मुखी न होकर अनेकोन्मुखी होकर प्रवाहित हुई है। ऐसी बात नहीं कि उन्होंने पुरातन के प्रेम को उपेक्षा की दृष्टि से देखा हो अपितु चिर पुरातन एव अभिनव वर्तमान दोनों का अद्भुत समन्वय उन्होंने किया है। उन्हें अन्धानुकरण से विराग है एव सगत विचारो से प्रगाढ़ अनुराग। उन्होंने अतीत के जड़ जर्जरित निष्काम स्वप्नों से अपने साहित्य का शृंगार नहीं किया, क्योंकि वे झूठी कल्पनाओं के पालने में झूलने वाले, स्वप्न की भूल-भुलैया में भटकने वाले, दूसरे के निर्देशित पथ पर आँखें बन्द कर श्रद्धावनत होकर चलने वाले, स्वप्नवादी नहीं थे। वे तो जागरणवादी हैं, जो कालिमा के वक्षस्थल पर वैचारिक किरणों से प्रहार कर अभिनव जागरण का अभिनन्दन करते हैं। उनकी कविता में न तो कल्पना की कोई किल्लोल क्रीड़ा है, और न ही अन्ध अतीत की झुझलाहट। उनका आसन समसामयिक युग है, जिसमें कवि भावना एव बुद्धि को साथ लेकर उन्मुक्त विचरण कर रहा है। उन्होंने मुखरित वर्तमान को ही अपने साहित्य का आधार बनाया है। अपने युग के भारतवर्ष का सजीव चित्रण करने में पौराणिक-ऐतिहासिक आधार न लेकर अपनी अद्भुत कल्पना-शक्ति से मौलिक कथानक प्रस्तुत किए हैं। उनके तीनों ही कथानक त्रिपाठी जी के उर्वर मस्तिष्क की उपज हैं। प्रेम का उदात्त रूप ही इनमें प्रस्तुत हुआ है। इस प्रकार इनके तीनों खण्डकाव्य प्रेमाख्यानक प्रेमकाव्य हैं।

त्रिपाठी जी जिस समय काव्य-जगत् में अवसरित हुये उस समय युगावतार, युगपुरुष पिता महात्मा गांधी भारतीय रगमच पर कुशलता से अभिनय कर रहे थे। "इस समय देश की प्रतिनिधि राजनीतिक संस्था कांग्रेस का अधिनायकत्व युग-पुरुष महात्मा गांधी के हाथों में आता है। उनकी विलक्षण प्रेरणा से वह संस्था शीघ्र ही एक सुसंगठित और प्रचण्ड राष्ट्रीय अस्त्र बन जानी है, वह अमोघ अस्त्र, जो एक दिन राजनीतिक स्वतन्त्रता को सिद्ध कर देता है। गांधी जी के महत्त्वपूर्ण और व्यापक कार्य में तीन तत्त्व युग-निर्भायक सिद्ध होते हैं। अभी तक जो जागृति थी वह बुद्धिजीवियों तथा पढ़े-लिखे लोगों तक सीमित थी। राष्ट्रीय-सन्देश को, जागरण के नव-मन्त्र को, भारत की विशाल जनता के हृदय तक पहुँचाना वह आवश्यक कार्य था, जो अभी तक सम्पन्न न हो सका था। महात्मा गांधी ने अपने लिए एक किसान का वेश चुना और आस्था की वह स्थिति ग्रहण की, जो अभी तक जनता के हृदय को छूने का एकमात्र साधन थी। जन-जीवन के वास्तविक सुख-दुःख में वे सक्रिय भागीदार बने और इस प्रकार उनकी आत्मा के समीप पहुँचकर वे जागृति को देश के सुदूर कोनों तक सीमित न रखकर उसकी कार्य-योजना में उन्हें सामाजिक और आर्थिक पक्षों को भी अन्विष्ट अंग बनाया।" (आलोचना अंक) उनके सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह के सिद्धान्त चारों ओर गुंजरित हो रहे थे। युग की वीणा ब

गाँधी जी ने श्रृंखलित कर दिया जिसमें कर्मठता, शूरता, सत्यता, अहिंसा, सेवा, त्याग, उदारता की सप्तस्वर वाली रागिनी का मधुर राग था। त्रिपाठी जी महात्मा गाँधी के अनन्य उपासकों में से हैं। उन्होंने इस मानव-हिताय धर्म को जो “सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः”, या ‘जिओ और जीने दो’ (Live and let live) का उद्देश देता है, स्वीकार किया। त्रिपाठी जी ऐसे व्यक्ति को जो भारतीय संस्कृति, इतिहास एवं दर्शन में अद्भुत श्रद्धा रखते थे। गाँधीवाद उन्हें एक मन्त्र, एक वरदान, एक जनकल्याण का मत लगा, इस कारण गाँधीवाद के दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनैतिक सिद्धान्तों को उन्होंने श्रद्धा से नत होकर स्वीकार कर लिया। उनकी समस्त काव्य-कृतियों में गाँधीवाद की मूल मान्यतायें मुखरित हुईं। यदि कहा जाय त्रिपाठी जी की विचारधारा का मूल गाँधीवादी विचारधारा है तो कोई अत्युक्ति न होगी।

एक ओर तो त्रिपाठी जी को लोकनायक तुलसीदास में अपार श्रद्धा थी। उन्होंने उनसे भी “सुरसरि सम सब कहँ हित होई” का मन्त्र लिया है, जो साहित्य समाज को जागरण की प्रेरणा नहीं दे सकता। त्रिपाठी जी उस साहित्य को निष्प्राण एवं निष्प्रयोजन मानते थे। उनका मत ‘कला जीवन के लिये’ था। त्रिपाठी जी जन्म से पण्डित, कर्म से पण्डित एवं अपने त्रिषय के भी पण्डित थे। उनपर उपनिषद् एवं गीता के कर्म-वाद, ‘लाल बाल पाल’ के स्वतन्त्रतावाद एवं गाँधी जी की विचारधारा का गहरा प्रभाव था। आचार्य डॉ० नगेन्द्र ने गाँधीवाद के दो पक्ष किये हैं—^१

१. तप-पक्ष

२. व्यवहार-पक्ष

उनके मतानुसार सियाराम शरणगुप्त तप-पक्ष के अकेले कवि हैं एवं मैथिली-शरण व्यवहार-पक्ष के। गाँधीवाद का व्यवहार-पक्ष ही श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनाया है।

त्रिपाठी जी का समस्त काव्य गाँधीवादी विचार-धारा का प्रतिबिम्ब है। इनके खण्डकाव्यों में इसी कारण कोई एक तपस्वी साधक काव्य के नायक को प्रेरणा प्रदान करता है जिसके फलस्वरूप वह देश-भक्ति, प्रजा-भक्ति एवं मानवता-वादी भावना से नायक को ओत-प्रोत कर देता है। पथिक में तो गाँधीवादी सिद्धान्तों को साधु के मुख से त्रिपाठी वाणी देते हैं—

सद्गुण, साहस, सत्य, शूरता, लोकोत्तर, उत्तमता।

पौरुष, प्रतिभा, प्रीति, प्राण, प्रभुता पर पालन क्षमता ॥

सज्जनता, शुचिता, मनस्विता, मेधा मन निर्मलता ।

क्षमा, शान्ति, करुणा, उदारता, श्रद्धा-भक्ति विनयिता ॥^१

गाँधी जी ने गाँधीवाद में जिसे डॉ० नगेन्द्र आध्यात्मिक मानववाद कहते हैं^२ समस्त मनोचिन्तन गुणों का समाहार किया है, जो मानव को उच्च भूमि पर उठा सकते हैं । प्राणीमात्र से आत्मिक एकता की प्रतीति में, “इस सत्य को पाने की इच्छा करने वाला मनुष्य—जीवन के एक भी क्षेत्र से बाहर नहीं रह सकता ।”^३ गाँधीवाद से मेरा अभिप्राय किसी सकृत्चित्तवाद से नहीं साथ ही इसे किसी सकृत्चित्तवाद में बाँधना भी औचित्य से पूर्ण नहीं ।^४ इसी कारण माधु से विवेचन वाणी के द्वारा गाँधीवाद की व्याख्या डॉ० रामदीन गुप्त के शब्दों में इस प्रकार कर सकते हैं—‘गाँधीवाद वस्तुतः भारत की उस आचारपरक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परंपरा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित एवं सशोधित संस्करण है, जो शनाब्दियों से सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय अपरिग्रह, आत्मसमय आदि नैतिक मूल्यों को भौतिक जीवन मानों की अपेक्षा अधिक काम्य एवं वरेण्य मानती आई है ।’^५ इसी कारण पन्तजी कहते भी हैं कि “मनुष्यत्व का पाठ सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद ।”

‘पथिक’ में त्रिपाठीजी नायक के आदर्शों के अनुकूल अहिंसा पालन का उपदेश देते हैं—

रक्तपात करना पशुना है,
कायरता है मन की ।
अरि को वश करना चरित्र से,
शोभा है सज्जन की ॥
क्रोध तुम्हारा प्रबल शत्रु है,
बसा तुम्हारे घर में ।

१. पथिक, पृष्ठ ३०

२. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० २४—डॉ० नगेन्द्र

३. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा, पृ० ५७६ ”

४. गाँधीवाद में शुरू में ही मुझे कहना होगा कि मेरे लिए वह शब्द मिथ्या है । जहाँ वाद है वहाँ विवाद भी है । वाद का काम है प्रतिवाद को विवाद द्वारा खण्डित करना और इस तरह अपने को चलाना । गाँधीजी के जीवन में विवाद एकदम नहीं । इस कारण गाँधी को वाद द्वारा ग्रहण करना सफल नहीं होगा ।
—विचार मन्थन, पृ० १०१ (प्रथम संस्करण १९५३)—जैनेन्द्र कुमार

५. प्रेमचन्द और गाँधीवाद, पृ० ७५—डॉ० रामदीन गुप्त

हो सकते—हो उसे जीत कर,
 विजयी तुम जग भर में ॥
 बचो क्रोध कादर्य अनय,
 दुस्साहस आलस, छल से ।
 बनो समर्थ अजेय दया से,
 रक्षित आत्मिक बल से ॥

‘आत्मबल’ से शत्रु का हृदय परिवर्तन कर सद्मार्ग लाना, गाँधीजी को मान्य था ।^१ वे मानव को प्रेम के द्वारा वशीभूत करना चाहते थे । प्रेमचन्द ने ठीक इसी प्रकार से ‘रंगभूमि’ में गाँधीवाद को वाणी दी है ।^२

विदेशी शासन की बर्बरता, उनकी क्रूरता से देश आगे भर रहा था । चारों ओर देश में भुखमरी, गरीबी, शोषण एवं अत्याचार का बोलबाला था । अंग्रेजी शासक जनता पर मनमाना अत्याचार करते थे । जनता को उनके विरुद्ध एकशब्द भी बोलना काल को निमंत्रण देना था । वे अपनी धर्मान्धता, पैशाचिकता एवं अनैतिकता से हिंसा के अस्त्र को ही लिये थे । देश में राय एवं राजा लोग जो अंग्रेजों के पिढू थे एवं उनको प्रसन्न रखना मानो ईश्वर को प्रसन्न रखना है, यह समझकर दिन-रात उनकी परिचर्या में व्यस्त थे । देश में प्रजा करो के भार से, कर्मचारियों के अत्याचार से, त्राहि-त्राहि कर रही थी, “हरदम सिर पर मौत खड़ी है ओठों पर ईश्वर है” का नाम लेकर वे दिन बिताते थे—

अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना ।
 कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिराना ॥
 × × ×

१ “किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मत-परिवर्तन ज्यादा अच्छा है ।” सत्याग्रह मीमांसा, पृ० ५२

२. शान्तिसमर में कभी भूलकर घर्यं नहीं खोना होगा ।
 ब्रज प्रहार भले सिर पर हो नहीं किन्तु रोना होगा ॥
 अरि से बदला लेने का मन बीज नहीं बोना होगा ।
 घर में कान तूल देकर फिर तुम्हें नहीं सोना होगा ॥
 × × ×
 आँखें लाल भवें टेढ़ी कर, क्रोध नहीं करना होगा ।
 सत्य मार्ग को छोड़ स्वार्थ-पथ पैर नहीं धरना होगा ॥
 होगी निश्चय जीत धर्म की यही भाव भरना होगा ।
 मातृभूमि के लिए जगत् में जीना और मरना होगा ॥

(रंगभूमि, पृ० ५४)

खाते हैं गम और आँसुओं से ही प्यास बुझाते ।
लेकर आयु विविध रोगों की है दिन-रात बिताते ॥
फटे पुराने चियड़ों से ही ढके किसी विधि तन हैं ।
कैसे सिँएँ सूई-धागे से भी नितान्त निर्धन हैं ॥

जनता की दीन दशा का त्रिपाठीजी ने बड़ा ही हृदय विदारक वर्णन अपनी कृतियों में प्रस्तुत किया है । यमराज की तरह शासक मदोन्मत्त हो प्रजा को अति-शय कष्ट देता था ।

शासकगण असहाय प्रजा को घोर कष्ट देता है ।
रक्षक से भक्षक बनता है सरबस हर लेता है ॥

असहाय प्रजा लाखों की सख्या मे नही करोड़ों की सख्या मे जठराग्नि, जल-जल कर अपने प्राणों की आहुति देती है । इसका एक चित्र देखिए—

हाय हाय कर लोग सँझ को निराहार सो जाते ।
एक बार भी रात दिवस मे पेट नही भरपाते ॥
खाते है गम और आँसुओं से ही प्यास बुझाते ।
लेकर आयु विविध रोगों की है दिन-रात बिताते ॥

ऐसी असहाय जनता पर शासकगण “कोई भी अनीति करने मे ’ उठा नही रखते थे । उनके झूठ, दम्भ, छल, विश्वासघात, पशुत्व, पर-धन-अपहरण एव स्थार्थ-साधन ही अस्त्र थे । इस प्रकार चारों ओर का वातावरण विषाक्त हो गया था । युग-पुरुष युग-निर्माता महात्मा जी ने देश की इस भीषण परिस्थिति का अनुभव किया एव उन्होंने प्रजा की उन्मत्ति के लिए ‘सर्वोदय’ का नारा लगाते हुए ‘आत्मबल’ का सबल लेकर जनता मे जागृति उत्पन्न करने का प्रयास किया । त्रिपाठीजी ने उस समय की देश की स्थिति का कृतियों मे बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है ।

उनके काव्य मे उपदेश देने वाले साधु तो स्वयं मानो गांधीजी ही है तथा उनके पालन करने वाले त्रिपाठीजी के अडिग धैर्यवान चरित्र । ‘मिलन’ में साधु ‘युवक’ को देश-सेवा का मार्ग प्रस्तुत करता है—

१. रखना सदा आत्मबल ऊपर अटल अचल अनुराग ।
 २. विघ्नों से जाकर भिड़ जाना सम्मुख सहना तीर ।
 ३. कभी किसी से घृणा न करना मत करना बकवाद ।
 ४. देश-भक्त का हृदय बड़ा ही होता है बलवान ।
- शैय्या काँटों की लगती है उसको फूल समान ॥

अपने अन्तराल में इन उपदेशों को समाहित कर युवक देश-सेवा को उतर पड़ता है । उसकी पत्नी विजया भी देश-सेवा मे लीन रहती है । अन्त में प्रजा की

विजय होती है एव देश में शान्ति की स्थापना हो जाती है ।

“कुम्हिलाये पौधों में फिर से चेतना बितरूँगा” की भावना लेकर ‘पथिक’ जब घर से निकल कर भ्रमण करता था तब मानो जनता के दृश्य को देखकर उसका हृदय गाँधीजी की तरह बोल उठता है । जनता में वह शासक के विरुद्ध अन्याय को रोकने की शक्ति पैदा करना चाहता है, इसी कारण—

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी ।
यह मनुष्यता पर कलक है, हे प्रिय बन्धु तुम्हारी ॥
अपना शासन आप करो तुम यही शान्ति है सुख है ।
पराधीनता से बढजग में नहीं दूसरा दुःख है ॥ ‘पथिक’

शामकगण तुम्हारी ही शक्ति से तुम्हीं पर अत्याचार करता है, तुम स्वयं उस अत्याचार के उत्तरदायी हो । तुम्हारा सहयोग न हो तो अत्याचारी शक्तिहीन होकर समाप्त हो जाएँ ।

एक व्यक्ति निर्दयी निरकुश बन बैठा अधिकारी ।
शासन है कर रहा तुम्हीं पर लेकर शक्ति तुम्हारी ॥
अत्याचार स्वयं ही अपने ऊपर तुम करते हो ।
अपने ही हाथों अपने को मार-मार मरते हो ॥

× × ×

दुःखदायी शासन से अपनी सारी शक्ति हटा लो ।
निज सुख-दुःख का अपने ऊपर सारा भार सम्हालो ॥

यह शब्द गाँधीजी के प्रभावाधिक्य को व्यक्त करते हैं । ‘पथिक’ जनता को प्रेरणा प्रदान करता है । वह कभी भी धैर्य से विचलित, प्रलोभन से पतित एव सकट से मुँह नहीं मोड़ता । राजा उसे राज-दण्ड देता है, प्रजा उसकी सहायता को उमड़ती है, अहिंसा का प्रतिपक्ष ‘हिंसा’ की भावना जन-जागृति से जाग उठती है । अहिंसक पथिक, जिसकी पत्नी एव बालक उसके नेत्रों के ही समक्ष क्रूरतापूर्वक मृत्यु के घाट उतार दिये जाते हैं परन्तु फिर भी पथिक जनता से शान्त रहने की विनय करता है । वह गाँधीवादी वाणी में हाथ जोड़कर कहता है—

लोह-शृङ्खला-बद्ध पथिक उठकर निज हाथ उठाके ।
युवकों को आवेशपूर्ण, क्रोधान्ध-दशा में पाके ॥

× × ×

मेरा अपराधी इस जग में कोई कहीं नहीं है ।
प्रतिहिंसा का मेरे मन में कुछ भी भाव नहीं है ॥

मेरा पुत्र अश था, मेरा काम आज वह आया ।
 बना प्रमाण सत्य का मेरे, सफल हो गई काया ॥^१
 रक्तपात करना पशुता है कायरता है मन की ।
 अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की ॥^२
 आत्मा का अपमान न करना सत्यमार्ग पर चलना ।
 है वह सत्य, तुम्हे न उचित है सत से कभी विचलना ॥^३

इस प्रकार का आदर्श हिन्दी-काव्य के किसी भी काव्य में उपलब्ध नहीं होता है। वास्तव में यदि गांधीवादी आदर्श मानवतावाद की सफल अभिव्यक्ति है तो 'पथिक' उसकी सफल व्याख्या। गांधीवादी आदर्शों के अनुबल ही पथिक एक सच्चे सत्याग्राही की भाँति रक्तपात में दूर रहता है। शामन के द्वारा राजकोप-भाजन होकर भी वह अपने धैर्यपूर्ण वक्षस्थल पर विषाद की छाया नहीं आने देता। यहाँ तक कि उसे स्वयं भी आदर्शों के पालन में प्राणाहुति देनी पड़ती है, लेकिन 'लोक-हिताय' के लिये उसके नेत्रों में अश्रु नहीं, मंगलकारी वाक्य निकलते हैं। जैसे गांधी जी के मृत्यु के समय जब गोडसे ने उन पर प्रहार किया उस समय भी वे 'राम राम' मंगलकारी ध्वनि ही निकालते रहे, इसी प्रकार पथिक भी मरण का मौन वरण करता है।

शून्य चतुर्दिक खड़ा सामने काल-स्वरूप वधिक था ।
 सैनिक के साश्चर्य देखते परम प्रसन्न पथिक था ॥

'पथिक' के स्वर्गारोहणोपरान्त जनता में जागृति का आविर्भाव हो गया ।
 उसने क्रूर शासन को विनष्ट किया एव—प्रजा को स्पष्ट हो गया—

१. "For Gandhiji Satya or Truth is the reality. It is God in the soul of man. It is more potent than the sword. Truth and non-violence, Satya and Ahimsa are related to each other as two sides of one Coin."

२. "Satyagraha is belief in the power of spirit, the power of truth, the power of love by which we can overcome evil through self-suffering and self-sacrifice."

Mahatma Gandhi : His message for mankind—S. Radha Krishnan Selections from threads of life—edited by

—D. C. Sharma, P. 53

३. "वह अपने शत्रु से भी प्रेम करता है, घृणा नहीं"

Selections from Gandhiji, P. 151-404

प्रजा-शक्ति ही राज्य-शक्ति है प्रजा राज का धन है ।
 प्रजा शक्ति से हीन राज का निराधार जीवन है ॥
 नृपति प्रजा का संरक्षक है, नहीं निरकुश स्वामी ।
 अपने नहीं प्रजा के सुख का राजा है अनुगामी ॥

× × ×

सावधान निश्चक प्रजा ने क्षमा-विभूषित मन से ।
 राजा को परिवारसहित कर निर्भय जीवन धन से ॥
 दिया निकाल देश सीमा से बाहर बड़े जतन से ।
 उस बबूलतरु को उखाड़ कर फेंका नन्दन वन से ॥

अन्त में त्रिपाठीजी का स्वप्न पूरा हुआ—“शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर में ।”^१ इस प्रकार आत्म-शक्ति-सम्पन्न ‘पथिक’ का मनोरथ सफल हुआ ।

त्रिपाठी जी भविष्यदृष्टा थे । उन्होंने गाँधीवाद के प्रजातन्त्रीय स्वप्न को १९२१ ई० में ही अपने पथिक में साकार कर दिया है । वास्तव में इस गाँधीवादी रचना का देश के नागरिकों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा । विदेशी शासन के विरुद्ध उस समय, जिस समय एक शब्द कहने पर गोली का शिकार बनना पड़ता था, देशभक्ति के इतने सशक्त वाक्यों में विदेशी शासन का स्पष्ट संकेत देकर लिखना भी त्रिपाठी जी के ही आत्मबल का परिणाम है । वास्तव में गाँधीवाद के उन्होंने स्वयं उपदेश ही नहीं दिये, काव्य में कोरी गाँधीवाद की सत्य, अहिंसा, आत्मबल का ही प्रचार नहीं किया ; अपितु स्वयं भी वे गाँधीवाद के प्रति-रूप थे । इसी कारण उन्होंने गाँधीजी के सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक, दार्शनिक सिद्धान्तों को काव्य-रूप में मुखरित होने का सम्पूर्ण अवसर दिया ।

‘स्वप्न’ नामक खण्डकाव्य में जनजागृति के कारण वे देश-प्रेम का उदात्त-रूप रखते हैं । देश-प्रेमी त्रिपाठीजी वहाँ पर देश-सेवी का एक रूप देते हैं—

तेज हास्य आनन्द सरलता,
 मंत्री, करुणा का क्रीड़ा स्थल ।
 हो सच्चा प्रतिबिम्ब प्रेम का,
 प्रेम र्ण जिसका मुख मण्डल ॥
 उच्च विचार भार से जिसके,
 चरणमन्द पड़ते हों भू पर ।

अन्तर्दृष्टि बहुत व्यापक हो,

भूमण्डल हो जिसके भीतर ॥^१

यह प्रेम सकीर्ण नहीं वह विश्व-प्रेम है। यह प्रेम का उदात्त-रूप भी गांधीवादी विचारधारा का ही अंग है।^२ 'प्रेम-रूप-भगवान्' को उन्होंने स्वयं इसी कारण बताया है कि—

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है,

प्रेम अशक अशोक।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम मे,

प्रेम हृदय आलोक ॥^३

उन्होंने इसी कारण अपने काव्यों में प्रेम का उदात्त-स्वरूप ही लिया है, क्योंकि देश-प्रेम, त्याग एवं बलिदान से युक्त मनुष्यता का प्रेम होता है।

सच्चा प्रेम वही है, जिसकी तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।

त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है करो प्रेम पर प्राण निछावर ॥

देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है, अमल अमीम त्याग से विलसित।

आत्मा के विकास से, जिसमें मनुष्यता होती है विकसित ॥^४

इसी कारण 'प्रेम-रूप भगवान्' को वे गांधी के रूप में देखते हैं। 'मानसी' में इसका एक स्थान पर सकेत है—

आखिर चमक पड़ा था गांधी की हड्डियों में।

मैं तो समझ रहा था सुहराव पील तन में ॥^५

इस प्रकार त्रिपाठीजी की कविताओं में व्यक्त हुआ देश-प्रेम गांधीवादी आधार पर आधारित है। स्वयं गांधीजी ने कहा था—“अपने देश और उसके द्वारा समग्र मानवता की सेवा ही मेरे लिए मोक्ष का मार्ग है। मैं प्रत्येक जीवित वस्तु के साथ अपने को एकाकार कर देना चाहता हूँ।”^६ यही देशभक्ति-भावना उनको लगा-

१. स्वप्न, पृ० ६६

२. अनेक धर्मों में जो 'ईश्वर-प्रेमरूप' है यह कहा गया है वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नहीं है।.....प्रेम का शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेम में राग या मोह की गन्ध आती हो वह अहिंसा नहीं हो सकता।”

गांधी-विचार-दोहन, पृ० १६ (छठा संस्करण १९५३)

३. मिलन, पृ० २६

४. स्वप्न, पृ० ७२

५. अन्वेषण स्फुट (मानसी)

६. Gandhian technique and tradition in industrial Relations. P. 102

तार उन्नति का मार्ग दिखाती रही। उनका गाँधीवादिता में परिपक्व चिन्तन हृदय के योग से 'मानसी' में बोलता है।

दुख दलितों में हम आशा की किरण होते,
होते पछितावा अविवेकियों के मन के।
मानते विधाता का बड़ा ही उपकार हम,
होते धनगाँठ, कही ओ दीन जन के ॥^१

उनकी इस 'आकाशा' से उनकी हृदय की द्रवण-शीलता का स्पष्ट परिचय मिलता है। पतित-पावन, दुख-दलितों पर दया 'पतित-पावन सीता-राम' कहने वाले गाँधी जी के सम्पूर्ण जीवन से प्रभावित थे, जिसको उन्होंने समग्र ग्रहण कर लिया एवं अपनी हृदय की भाषा में ढालकर उसे अपने काव्यों में रू दे दिया। वास्तव में उनके काव्य में एक ही स्वर, एक ही राग, एक ही तान है—वह देश-भक्ति में परिपूरित गाँधीवादिता की श्रवण-सुखद तान है।

त्रिपाठीजी ने द्विवेदी-युगीन कवियों में सबसे अधिक गाँधीवाद को जन-सुलभ बनाया, साथ ही गाँधीवाद का उन पर युग के समस्त कवियों से अधिक प्रभाव है। उन्होंने अप्रत्यक्ष नहीं प्रत्यक्ष रूप में गाँधीवाद के स्वर को गुंजरित किया है। यद्यपि द्विवेदी-युग में गद्य एवं पद्य, दोनों पर गाँधीवाद का प्रभाव पड़ा। प्रेमचन्द के गद्य में सत्याग्रह, हृदय-परिवर्तन, स्वाधीनता-संग्राम में सत्य-अहिंसा के अस्त्रों का प्रयोग आदि अनेक पक्ष व्यक्त हुए हैं। 'प्रेमाश्रम', 'कर्म भूमि', 'रंग भूमि' गाँधीवादिता में पगे उपन्यास हैं।

जैनेन्द्रकुमार ने भी गाँधीवाद को समग्र रूप से वाणी दी है। इसके अतिरिक्त कौशिक, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा ने भी यत्र-यत्र गाँधीवाद की अभिव्यक्ति की है। कवियों में भी श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' एवं 'यशोधरा' में गाँधीवादी विचारों को सशक्त वाणी प्रदान की है। उनके साथ ही प० रामनरेश त्रिपाठी भी गाँधीवादी विचारधारा के कवि हैं। गाँधीवाद में उनकी अपार निष्ठा थी। इसका प्रमाण उनके काव्य स्वयं देते हैं। गाँधीवाद के मूलमन्त्रों का काव्य के माध्यम से उन्होंने बड़ा सफल प्रचार किया है। कहा जाता है कि गाँधीवाद यदि सफल जीवन की कुन्जी है तो 'पथिक' उसकी सफल व्याख्या है। गाँधीवाद त्रिपाठीजी के प्राणों में रम चुका था, जो उनके काव्य का सौंदर्य बन गया है।

उदात्त-प्रेम

प्रेम मानव की शाश्वत जीवनाकाक्षा की वरदायिनी शक्ति है। प्रेम, ईश्वर के द्वारा प्रदत्त, मानव को प्राप्त वरदान है। प्रेम का साहित्य मे इतना महत्त्व रहा कि अधुना वह एक स्वतंत्र विषय के रूप मे स्थान पाता है। सस्कृत नाटकों का स्वच्छन्द प्रेम (Romantic love) बड़ा अद्भुत है। भक्ति-काल की प्रेम मार्गी शाखा में प्रेम का मुक्त कण्ठ से गुणगान किया गया। रीतिकाल मे प्रेम ही काव्य का प्रधान विषय है। इस काल में अन्य विषयों का एकान्त अभाव है। इस काल का परम्परागत प्रेम नायिका-भेद के अनुसार वर्णित था। यह प्रेम नायिका के अंग से लेकर शृंगार-कक्ष तक ही सीमित था—“अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेक सयानप बाँक नही” कहा भी गया, लेकिन नायिका की दृष्टि-वक्रता ने प्रेम को बेध डाला। इस काल में प्रेम-काव्यों का प्राधान्य ही कहा जायेगा।

रीतिकाल तथा भक्तिकालीन प्रेम दृष्टि मे बड़ा विरोधाभास है। भक्ति-काल का प्रेम लोकोत्तर या अपाथिव सत्ता के प्रति समर्पित है। कवियों ने परमात्मा को प्रेम-रूप माना। सूफी भी ब्रह्म को प्रेममय मानते रहे तथा कृष्ण-भक्त भी प्रेम-मय, रसमय ब्रह्म को ही अपना सर्वस्व मानते है। भक्तिकाल मे भक्ति का स्वरूप ही प्रेमरूपा, अमृतरूपा है। लेकिन रीतिकाल मे आकर अलौकिक प्रेम का अन्त बुरा हुआ। कवियों की समस्त कल्पना-शक्ति, भाषा कामिनी के कान्त-कलेवर मे लिपट गई। वे नारी के हाव-हेला तथा कटाक्ष-पातो को निहारते हुए नायिका-भेद ही करते रहे। कामदेव के साम्राज्य मे उन्हें राधा सामान्य नारी तथा कृष्ण लम्पट रसिया दिखाई दिया। राधा-कृष्ण की ओट मे उन्होंने मनमाना मौज-मजा उत्पन्न किया है। इस कारण इनके प्रेम में स्थूलता तथा शारीरिक भूख की तड़पन ही अधिक है।

आधुनिक काल परिवर्तनशील साहित्यिक प्रगति का जागरणकाल है, जिसमे प्राचीनता के प्रति मोह एव नवीनता के प्रति सहर्ष अभिनन्दन का भाव पाया जाता है। इस काल के प्रेम-काव्यो परपाश्चात्य धारा के (Romanticism) स्वच्छन्दतावाद का भी प्रभाव अस्वीकार नही किया जा सकता है। इस काल का प्रेम नवीन जीवन दृष्टि रखता है, उसमें लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की स्वर्ग सीढ़ी एवं वासनात्मक

प्रेम का परिष्करण कर उसे उदात्त-प्रेम का रूप प्रदान किया गया है। यह प्रेम जीवन में निष्क्रियता नहीं लाता अपितु सक्रियता लाकर सौंदर्य कुंज बनाता है। करील कुंजों, घाट कछारों तथा रानी रनिवासों तक सीमित वासनात्मक प्रेम का इस काल में एकान्त अभाव है। इस प्रेम में लौकिक आदर्श, जीवन को गतिशील बनाने की शक्ति एवं दिव्याभा का पावन पुनीत स्पर्श है। यद्यपि इस काल में अनेक प्रेमाख्यानक काव्य लिखे गये, किन्तु डॉ० श्रीकृष्ण लाल के मतानुसार उसमें प्रसाद का 'प्रेम-पथिक' (१९१४), पं० रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' (१९१७), 'पथिक' (१९२०), सुमित्रा नन्दन पंत की 'ग्रथि' (१९२०) और 'प्रसाद' का 'आसू' सर्वप्रधान है। इनके अतिरिक्त सुभद्रा कुमारी चौहान, गोपालशरण सिंह और 'प्रसाद' के स्फुट गीतिकाव्य और मुक्तकों में भी प्रेम का मुक्त चित्रण मिलता है। प्रसाद जी ने इस काल के प्रेम को स्पष्ट किया—

प्रेम पवित्र पदार्थ न उसमें कही कपट ही छाया हो ।

इसका परिमित रूप नहीं जो व्यक्ति मात्र में बना रहे ।^१

पं० रामनरेश त्रिपाठी स्वच्छन्द धारा के कवि है। उन्होंने प्रेम को पहचाना एवं 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' तीनों प्रेमाख्यानक काव्यों में उसके रूपों का विस्तार किया है। उनके काव्यों में प्रेम ही जीवन का आदर्श बिन्दु होता है। नायक प्रियतमा का परित्याग कर विश्व-प्रेम (Universal love) में विश्राम पाता है। उनका प्रेम साधारण प्रेम नहीं, वह भगवान् का प्रतिरूप है।

गध-विहीन फूल है जैसे चन्द्र चन्द्रिका हीन ।

योंही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन ॥

प्रेम स्वर्ग है स्वर्ग प्रेम है प्रेम अशंक अशोक ।

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम मे प्रेम हृदय आलोक ॥^२

उस मानव का संसार में जीवन नहीं, व्यर्थ है, जिसके हृदय ने प्रेम का अनुभव नहीं किया। प्रेम मे अमृत के समान शक्ति है।

प्रेम-भरी चितवन प्राणी को है पीयूष समान ।

और घृणा की एक दृष्टि से विकराल कृपाण ॥^३

प्रेम की अपरिमित शक्ति से त्रिपाठीजी परिचित हैं। उनका कहना है कि—

प्रेम विचित्र वस्तु है जग मे अद्भुत शक्ति निधान ।

१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६४—डॉ० श्री कृष्णलाल

२. मिलन, पृ० २६—पं० रामनरेश त्रिपाठी

३. वही, पृ० १५

सोना-जगना दोनों उससे हो जाते हैं दूर ॥^१

अहा ! प्रेम का राज्य परम सुन्दर अतिशय सुन्दर है ॥^२

जहाँ शब्द चातुर्य सत्य है, भ्रमोत्पत्ति निर्णय है ॥³

होता नहीं विचार प्रेम के शासन में निज-पर का ॥४

अहो, प्रेम में तृप्ति नहीं है केवल है अनन्त आकर्षण !^५

मिलन अन्त है मधुर प्रेम का,

और विरह जीवन है ।

विरह प्रेम की जागृति गति है,

और सुषुप्ति मिलन है ॥^६

१. मिलन, पृ० २८,—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक, पृ० १८

३. वही, पृ० २३

४. वही, पृ० ४२

५. स्वप्न, पृ० ६१

६. पथिक, पृ० ५४

उनके तीनों खण्डकाव्यों में वासनात्मक प्रेम को विरहदग्ध कर स्वदेश-प्रेम में परिणित किया गया है। 'स्वप्न' में विलासी नायक वसन्त जो भ्रूकनीनिका, प्रियम्बदा की पृथुल जाँघ की, विद्युत्-सी खिलखिला पड़ी वह आदि कहकर उसके कपोलों की लालिमा में ही अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। उसका यह कहना, "मन कहता है इस भूतल पर सकल सुखो की नारी है निधि" बड़ा ही हास्यास्पद है। 'सुमना' पति की वासना को स्त्री-जाति का कलक समझकर कहती है, "उस स्त्री के रूप एव यौवन को धिक्कार है, जो पति को कर्त्तव्य-भ्रष्ट करे।" अन्त में ग्लानि से भरकर वह वीर रमणी पति का परित्याग कर चली जाती है। स्वदेश की रक्षा में वह प्राण-प्रण से कार्य करती है। 'वसन्त' भी अन्त में रणभूमि में आकर विजय प्राप्त कर पत्नी का आदर्श पाता है। इस प्रकार प्रेम का रूप इस काव्य में बड़ा ही गत्यात्मक है। 'पथिक' में भी प्रकृति-प्रेमी पथिक, जो अपनी पत्नी का परित्याग कर वन में आकर मस्त है। उसकी पत्नी आकर उसे कहती है, "मैं प्रेमाकुल हो वन में भटक रही हूँ।" वह पूर्व स्मृति दिलाती है—

तुम तो मेरे अतुल रूप का यश गाथा करते थे,

× × ×

मेरे मुख को चन्द्र बताकर तुम चकोर बनते थे।^१

किन्तु पथिक उसके प्रेमालाप पर ध्यान न देकर उससे कहता है—“तुम्हारे कारण ही प्रिये मैं सच्चा प्रेम-पथिक बन सका हूँ।” पथिक साधु से मन्त्रणा पाकर अपने प्रेम को व्यष्टि से हटाकर समष्टिगत करता है। पीछे विरहाकुल पथिक-पत्नी कहती है—

“हे भगवान् घास मैं होती प्रिय उस पर पग धरते”^२

प्रेम की पावनता वहाँ है, जहाँ पथिक-प्रिया कामना करती है कि “हे काग ! प्रियदर्शी नयन को छोड़ देना, ताकि वह अन्त समय तक प्रिय का दर्शन कर सके।” अन्त में जब पथिक पर राजकोप होता है, उस समय पति-प्रेम की प्यासी वह आदर्श भारतीय-रमणी हलाहल का पान स्वयं कर दिव्य-रूप दिखलाती है। इस प्रकार यहाँ भी प्रेम का उदात्तीकरण—व्यष्टि को समष्टि रूप देकर किया गया है। ठीक ऐसा ही कथानक 'मिलन' का है। विजया एव आनन्द दोनों ही प्रेम के सागर में लहराते प्राणी हैं। मनुष्यता का कल्याणकेतु लेकर वे दोनों देश-रक्षा में कटिबद्ध हैं। नाव पर यात्रा करते समय नौका टूट जाती है। दोनों अतल जल में एक साथ विश्राम पाते हैं। अचानक मुनिदूर पर बहती तरुणी की लाश को लाकर जीवन-दान देते हैं।

१. पथिक, पृ० १६—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ५०

‘विजया’ पलक खोलते ही प्राणधन, प्राणेश्वर को पुकारती है। उसका विश्वास इस प्रकार है कि—

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ वचन सकेगे प्राण ।^१

पति को वहाँ शीघ्र न पाकर वह स्वदेश-प्रेम में परिवर्तित कर, घर-घर जाकर जनता की सेवा करती है। साधु युवक आनन्द को जीवन-दान देकर देश-प्रेमी बनाता है। दोनों देश को शत्रुरहित कर मिलन की मधुरता का रस लेते हैं।

जड चेतन की एक अकृत्रिम भाषा है ध्वनि-हीन।

उसे बोलते हैं आपस में केवल प्रेम.....प्रवीन।।^२

इस प्रकार तीनों काव्यों का प्रेमाख्यानक धारा में महत्वपूर्ण स्थान है। त्रिपाठी जी ने तीनों में लौकिक प्रेम का अन्वयन कर उदात्त-प्रेम की पावन स्थापना है। इस कारण इनका प्रेमाख्यानक काव्यों में स्थान बड़ा ही महत्वपूर्ण है। सौन्दर्य एव प्रेम के कवि जयशंकर प्रसाद की यह परिभाषा उन तीनों काव्यों पर लागू होती है।

इस पथ का उद्देश्य नहीं है, शान्त भवन में टिक रहना,

किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।

आधुनिक काल में स्थिर प्रेम, अस्थिर प्रेम, एकान्त प्रेम तथा समाज अनुमोदित प्रणय मिलता है। डॉ० श्रीकृष्ण लाल का कहना है कि आधुनिक काल में काव्य रूपों की भाँति ही प्रेम-रूपों का आधिक्य मिलता है। एक तो—‘ग्रन्थि’ तथा ‘प्रेम-पथिक’ की तरह प्रथम दर्शन वाला प्रेम एव दूसरा प्रेम वह जिसका आरम्भ विवाह के उपरान्त होता है। प० रामनरेश में द्वितीय प्रकार का प्रेम मिलता है, जो प्रेम गतिशीलता के साथ-साथ विश्व-प्रेम तक पहुँच जाता है। समाज से अनुमोदित इस प्रेम का आरम्भ विवाह के उपरान्त होता है। प्रेम का यह गतिशील रूप आधुनिक काल में बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि प्रायः सर्वत्र स्थिर प्रेम का ही आदर हुआ है।^३

१. मिलन, पृ० २७—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ७४ ”

३. ‘मिलन’ का आनन्दकुमार और ‘पथिक’ का नायक अपनी प्रियतमा पत्नी से अतिशय प्रेम करते हैं और इसी प्रेम में उन्होंने प्रकृति से, अपनी मातृभूमि से और सम्पूर्ण विश्व से प्रेम करना सीखा। प्रेम यहाँ गतिशील है और एक स्थान से चलकर निरन्तर बढ़ता ही जाता है और अन्त में विश्व-प्रेम तक पहुँच जाता है। प्रेम का यह गतिशील रूप आधुनिक काल में कम पाया जाता है और प्रायः सर्वत्र प्रेम का ही शासन और मान है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ६८—डॉ० श्री कृष्ण लाल

भावाभिव्यञ्जना

कवि नवीन भावों का जन्मदाता होता है। भाव तो प्रत्येक के हृदय में सदैव विद्यमान रहते हैं, परन्तु कवि उन भावों को बड़ा हृदयग्राही रूप देता है। वास्तव में भारतीय आचार्यों के मत से काव्य का मूल तत्त्व तो राग-तत्त्व या भाव-तत्त्व ही है। काव्य में भावों का आधिक्य अत्यावश्यक है, भाव ही काव्य के प्राण है। जिस प्रकार बिना आत्मा के शरीर निरर्थक है, ऐसे ही बिना भाव के काव्य। आचार्यों के मत से भावों में कुछ भाव तो स्थायी भाव होते हैं एवं कुछ संचारी या व्यभिचारी भाव होते हैं। ये भाव सहृदय के चित्त में वासना के रूप में सदैव स्थित रहते हैं। कालिदास ने स्थायी भावों का संकेत इस प्रकार दिया है—

भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ।^१

भावराशि हमारे संस्कारों का निर्माण करती है। ये संस्कार ही जाग्रत होकर भावानुभूति कराने में सहायक होते हैं। हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं, उसे अभिव्यक्त करना चाहते हैं। इसी कारण संवेदनशील कवियों की भावाभिव्यञ्जनाएं अतिशय आकर्षक हुआ करती हैं।

पं० रामनरेश त्रिपाठी जी ने कल्पनात्मक खण्डकाव्यों की सृष्टि की है। कथानक का ऐतिहासिक या पौराणिक आधार न होने से तथा नायक या नायिका प्रख्यात न होने के कारण हमारे संस्कार उनके प्रति नहीं बन पाते हैं, यही कारण है लगभग सभी स्थायी भावों की उनके काव्यों में अवतारणा होने पर भी रस परिपाक ठीक से नहीं हो पाता है। डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल का कहना है कि “इनमें वर्णन सौन्दर्य भरे पड़े हैं, जो रसों के पूर्ण परिपाक में बाधा पहुँचाते हैं।”^२ वर्णनात्मकता के कारण भाव को रसदशा तक पहुँचाने वाले सहायक अनुभाव, उद्दीपन एवं संचारी भाव नहीं आ पाते हैं। अतः उनके भावों का पृथक्-पृथक् स्थानों पर ‘विशेष’, प्रकार का रूप उभरता है।

आधुनिक काल में रस-निष्पत्ति की प्राचीन परिपाटी बदल गई है। बदली हुई चेतना ने नवीन प्रकार के बोध को उत्पन्न किया है। रस-निष्पत्ति का प्राचीन

१. अभिज्ञानशाकुन्तलम् ५।२—कालिदास

२. रामनरेश त्रिपाठी व्यक्तित्व और कृतित्व — डॉ० रामेश्वर प्रसाद अग्रवाल

शास्त्रीय आधार बदल रहा है, उसे बदलने की जरूरत भी महसूस की जा रही है। 'आधुनिकता'-बोध में आदमी ने इतना कुछ नया मिला दिया है कि आज के आदमी के विचार पुराने आदमी के विचारों से भिन्न हैं। इस प्रकार का परिवर्तन स्वाभाविक भी है तथा चेतना की गतिशीलता का सूचक भी। युद्ध, विज्ञान, राजनीति तथा दर्शन ने आदमी के अस्तित्व पर अनेक प्रश्न-चिह्न लगा दिए हैं। बुद्धिवाद की प्रतिष्ठा ने प्राचीन निष्ठा को झकझोर दिया है। मार्क्सवाद, अतिथथार्थवाद, अस्तित्ववाद, फलवाद, व्यवहारवाद, राष्ट्रवाद, मानववाद, मानवतावाद, अराजकतावाद, निराशावाद, व्यक्तिवाद, गांधीवाद तथा अतिमानसवाद ने आदमी को फिर टटोलने का इशारा दिया है। मशीनीकरण तथा औद्योगीकरण ने घुटन, सत्रास, जड़ता, रूक्षता, नीरसता, विसंगति, बिखराव, टूटन, चुभन, असन्तोष, निराशा तथा मृत्युबोध के भावों को उत्पन्न किया है। मशीन में फँसा, धँसा आदमी कुछ सोच नहीं पाता, जीवन कहाँ विश्राम कर रहा है। टूटते हुए रिश्तों के जीवन में आदमी नितान्त असहाय होकर सघर्ष कर रहा है। उसके सवेग तथा सवेदना दोनों में एक मूल परिवर्तन पनपा है। यही कारण है कि प्राचीन भाव-बोध तथा रस-बोध में एक-सी आस्वाद्यता नहीं रही। साधारणीकरण की शक्ति को आज धक्का लगा है तथा भावकत्व-व्यापार में बाधा उपस्थित हो जाने के कारण आज फिर सोचने को विवश होना पड़ा है। द्विवेदी-गुगीन कवियों ने रस को उतना नहीं ललकारा, जितना छायावादोत्तरकाव्य के कवियों ने ललकारा है। आज तो भाव के सम्पूर्ण अंगों का एकत्व न होकर किसी एक भावगण से ही रस का अनुमान कर लिया जाता है। त्रिपाठीजी ने अपने प्रेमाख्यानक काव्यों में दाम्पत्य रति का समावेश किया है। उनके नायक-नायिका समाज का अनुमोदन प्राप्त कर विवाहोपरान्त ही आए हैं। कवि ने सयोग एवं वियोग का वर्णन बड़ी विशदता से किया है। सयोग-वर्णन में माँसल ऐन्द्रिकता अवश्य है, परन्तु एक प्रकार की मर्यादा का कवि ने वहाँ भी पालन किया है। प्रकृति-प्रांगण में नायक एवं नायिका के दर्शन—

मुझे ध्यान से निरत देखकर,
वह गुलाब का फूल तोड़कर ।
मुँह पर मार खिलखिला उठती,
मैं तत्काल भुजाओं में भर ॥
बार-बार चुम्बन करता हूँ,
उससे जो लालिमा उमड़कर ।
निरख कपोलों पर आती है,
क्या है वैसी उषा मनोहर ॥^१

यहाँ 'रति' का बड़ा गुदगुदी उत्पन्न करने वाला चित्र है। "गुलाब का फूल मारकर खिलखिलाना" उद्दीपन है। नायक आश्रय एव नायिका आलम्बन है, अनुभाव चुम्बन आदि हैं। सचारी भावों का विधान पुलक आदि के द्वारा सयोग-शृंगार का तप्त-रूप मिलता है।

दूसरी ओर विरह में मिलन की नायिका एव स्वप्न का नायक बहुत विकल होता है। प्रिय के अभाव में विजया नदी को 'बोली ठगिनी-सा है तेरा सरिते, सुन्दर वेश' कहती है। 'पथिक' में पथिक-प्रिया अपने प्रियतम का बड़ी ही उत्सुकता से प्रतीक्षा करती है। खिड़की के पास खड़ी रहती है, किवाड़ खटकते ही दौड़कर जाती है एव निराश हो लौट जाती है। 'आये पथिक न मेरे' में यहाँ वियोग की एकादश अवस्थाओं में से अभिलाषा चिन्ता, प्रलाप, व्याधि आदि के यहाँ दर्शन होते हैं—

अभिलाषा—काग साध अब पूरी कर लो चुन-चुनकर इस तन को।

देना छोड़ दया करके प्रियदर्शी ब्रती नयन, को ॥^१

चिन्ता— रिमझिम बरस रहे सावन घन उमड़-धुमड़ अलबेले।

तरु तल कहीं भीगते होंगे मेरे पथिक अकेले ॥

प्रलाप— उन्मादिनी विरहिणी यो ही नित प्रलाप करती थी।

रोती कभी, कभी हँसती थी, कभी आह भरती थी ॥

यह विरहिणी अत्यन्त कृश एव प्रिय दर्शन के लिए ही जीवन रखती है 'मिलन' में एक वियोग-चित्र देखिए—

प्रियतम बिना न जी सकती हूँ बच न सकेगे प्राण।

अश्रु गिराकर व्याकुलता का दृग ने दिया प्रमाण ॥

× × ×

देश सरित शोभा विजया के लगी घाव पर ठेस।

बोली ठगिनी-सा है तेरा सरिते सुन्दर वेश ॥^२

कवि का प्रतिपाद्य राष्ट्रीयता है अतः रति के पश्चात् उनकी कृतियों में प्रधान भाव 'उत्साह' है। "साहसपूर्ण आनन्द की उमग का नाम उत्साह है, कर्म सौन्दर्य के उरासक ही सच्चे उत्साही कहलाते हैं।"^३ इस दृष्टि से पथिक के नायक का उत्साह अद्भुत है। मिलन एव स्वप्न में—यही उत्साह मिलता है—

लहूँ गर्म हुआ वीरो का फड़क उठे सब अंग।

नशा वीरता का चढ़ आया देख रक्त का रंग ॥

१. पथिक, पृ० ५०—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. मिलन, पृ० २७

३. चिन्तामणि—प्रथम भाग, पृ० ६—रामचन्द्र शुक्ल

विदेशी शासक आलम्बन, जनशक्ति आश्रय, रक्त का रंग उद्दीपन, अंग फड़कना अनुभाव है। आगे के वर्णन में वेग का नितान्त अभाव है, अतः भाव-रस नहीं बन पाया है।

‘पथिक’ में अन्त बड़ा दुखान्न है। यहाँ पर ‘शोक’ नामक स्थायी भाव के दर्शन होते हैं। पथिक की निर्दयतापूर्वक मृत्यु पर—

विकल हुए विद्वान् खो गया अनुपम रत्न हमारा।

अपढ रो उठे भव-सागर का कहाँ गया ध्रुव तारा ॥^१

‘मानसी’ में ‘विधवा का दर्पण’ कविता में करुणा की धारा अनुपम है—

न जाने कब से चिन्ता-मग्न, विरह-विधुरा भूखी-प्यासी।

कहाँ होगी वह विह्वलव्यथित, हाथ करुणा की कविता-मी ॥^२

पथिक में करुण भाव का भी वर्णन मिलता है। पथिक का पुत्र अपनी मृत माता से कहता है—माँ उठो, उस समय बाल-स्वाभाविकता का स्मरण कर पाठक का हृदय भर आता है—

कहने लगा सो गई क्यों तू माँ, उठ चल अब घर को।

मुझे लगी है भूख, अकेला जाऊँ कहाँ किधर को ॥^३

‘निर्वेद’ नामक स्थायी भाव का वर्णन भी कई स्थानों पर मिलता है। शान्त-रस का स्थायी भाव शम या निर्वेद है। यह निर्वेद भाव तत्त्वज्ञान से प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ, ‘पथिक’ में, आरम्भ में इस भाव का दर्शन होता है, जहाँ पथिक ससार को नश्वर घोषित करता हुआ प्रकृति की गोद में जाता है। यथा—

माया, मिथ्या, मृगतृष्णा, घोर प्रलोभन बल है।

यह ससार विषाद निराशा का बस क्रीडा-स्थल है ॥

× × ×

थके पथिक को आकर्षित कर देता कष्ट विषम है।

इसी भाँति ससार बड़ा धोखा है भीषण भ्रम है ॥^४

यद्यपि त्रिपाठी जी सौन्दर्य को अतिशय आदर देते हैं। प्रकृति का सौन्दर्य उन्हें बड़ा प्रिय है। सौन्दर्यवादी इस युग में ‘जुगुप्सा’ का वर्णन अत्यल्प मिलता है। ‘काश्मीर-वर्णन’ नामक कविता में इस भाव का दर्शन होता है। यथा—

१. पथिक, पृ० २४—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. मानसी, पृ० ५२ „

३. पथिक, पृ० ५४ „

४. वही, पृ० २३-२४ „

भूत भरी गलियाँ, पुरीष भरे घर द्वार,
 गन्दी हवा, वादीजल देश उजबक है ।
 लोग बड़े झूठे महा मलिन लुगाइयाँ हैं,
 सौ में यहाँ नब्बे को सुजाक आतशक है ॥
 खाने को करम माँस मछली पनीर भात,
 काँगड़ा का कंठहार आठ माँस तक हैं ।
 काश्मीर देखा सब बूझ लिया लेखा,
 यदि स्वर्ग है यही तो फिर कौन-सा नरक है ॥^१

मानसी की व्यंग्यपरक कविताओं में 'हास्य' का बड़ा सुन्दर पुट है । हैट के गुण, नया नखशिख आदि पद्य इसके उदाहरण हैं । यथा—

जिसके उरोज मिश्र देश के पिरामिड हो,
 ध्रुव की निशा-सी केश-राशि सिर पर हो ।
 ऊँट ऐसी गति हो, नितम्ब हो पहाड़ ऐसे,
 चीन की दीवार मेखला-सी जिस पर हो ॥
 साहब के दिल में दिमाग में दिखाव में भी,
 हिन्द की भलाई के ख्याल-सी कमर हो ।
 ऐसी नायिकाओं का निवास भगवान् करे,
 हिन्दी के कवित्त प्रेमियों के घर-घर हो ॥^२

वास्तव में प्राचीन पद्धति से त्रिपाठी जी के काव्यों का रस-विवेचन नहीं किया जा सकता । उनका उद्देश्य भी रस-निष्पत्ति नहीं, अपितु विषय का उद्घाटन करना होता है । विषय के उद्घाटन में त्रिपाठी जी बड़े कुशल हैं । संयोग एवं वियोग के भाव कवि उभारता अवश्य रहा है ; परन्तु वे केवल भावोदय की स्थिति तक ही सीमित हैं । अनुभाव एवं संचारी भावों के अभाव में वे रस-दशा तक प्रायः पहुँच ही नहीं पाये । 'रस्यते इति रसः या आस्वाद्यते इति रसः' कहा गया है । काव्य का रस न लौकिक है न आध्यात्मिक, वह लोकोत्तर है । इस रसाभिव्यक्ति के लिए उनके भावपूर्णतः सक्षम हैं । 'पथिक' का अंगीरस, वीररस एवं पाश्चात्य मत से उदात्त-रस (Sublime) कहा जायेगा । 'मिलन' एवं 'स्वप्न' में विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है । वहाँ संयोग का भाव प्रारम्भ में अल्परूप में आया है । "भाव के इन सशक्त संकेतों

१. मानसी, पृ० ७५—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ७४

द्वारा त्रिपाठीजी की भावाभिव्यञ्जना बड़ी आकर्षक है।^१ यद्यपि वर्णनात्मकता का वेग स्थान-स्थान पर भाव की गति अवश्य अवरुद्ध करता है, परन्तु वर्णन-पटुता में सौन्दर्य के कारण उधर ध्यान कम ही जाता है।

-
१. “त्रिपाठी जी के खण्डकाव्यों में कल्पना एवं भावुकता का अनुपम योग पाया जाता है। ये उदात्त भावनाओं के पुंज हैं। वीर, करुणा, शृंगार एवं शान्त-रस के अद्भुत झरने हैं। पराधीन देश के नवयुवकों को जागरण का सन्देश देने और नवजीवन का संचार करने में ये रचनाएँ सदैव समर्थ रहेंगी।”

मानव—हमारे प्रतिनिधि कवि, पृ० २४०—विश्वम्भर

प्रकृति-चित्रण

प० रामनरेश त्रिपाठी का प्रकृति के प्रति प्रगाढ़ अनुराग उनके समस्त काव्यों में बड़े ही हृदयाकर्षक रूप से व्यक्त हुआ है। उनका कहना है कि—“मैं प्रकृति का पुजारी हूँ।”^१ प्रकृति-मुन्दरी के नैसर्गिक सौन्दर्य के दर्शन से उनका हृदय पूरित है, जो उनके प्राणों का गान बन गया है। उनके खण्डकाव्य ‘पथिक’, ‘मिलन’ एवं ‘स्वप्न’ में यद्यपि देश-प्रेम की भावना अत्यन्त प्रखरता से प्रस्फुटित हुई है तथापि उनके देश-नुराग में कर्तव्य एवं प्रेम की वीणा का स्वर ही अधिक मुखर है। इनके काव्य का नायक या प्रधान चरित्र सदैव प्रकृति का अनन्य उपासक होता है। इस पात्र के द्वारा त्रिपाठी जी अपने प्रकृति-प्रेम को साकारता प्रदान करते हैं। द्विवेदी-युग के कवियों में वे अपने प्रकृति-चित्रण की विशेषता के कारण विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। कवि ने अपने प्रकृति-प्रेम को भावना से स्निग्ध तथा कल्पना से सज्जित कर उपस्थित किया है।

आधुनिक युग में कवियों का दृष्टिकोण प्रकृति के प्रति महत्वपूर्ण दिखाई देता है। भारतेन्दु जी से पूर्व रीतिकाल के कवियों ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में अथवा अलंकार रूप में ही प्रायः अपनाया है। लेकिन नवजागरण काल, भारतेन्दु युग में प्रकृति को आलंबन बनाकर अनेक हृदयग्राही चित्र उपस्थित किये गए। द्विवेदी-युग के कवियों की वृत्ति ने भारतेन्दु-युग से भी अधिक प्रकृति के सौन्दर्य में रमण किया। इस काल के अधिकांश कवियों ने प्रकृति को काव्य का वर्ण्य-विषय बनाकर स्वतन्त्रता रूप में प्रकृति का वर्णन किया है।^२ आरम्भ में श्रीधर पाठक एक सच्चे प्रकृति के अनुरागी बनकर आए। प्रकृति की रमणीय क्रीड़ास्थली काश्मीर के वर्णन में वे

१. “मैं प्रकृति का पुजारी हूँ”, स्वप्न, पृ० २—रामनरेश त्रिपाठी

२. इस प्रकार प्रकृति के दो पक्ष हैं। मानवीय कार्यों और भावनाओं का स्थान, समय और वातावरण का प्रभाव पड़ता है, अतएव रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय प्रकृति का चित्रण स्थान, समय और वातावरण के रूप में करते हैं।

उनके ललकति, विकलित, पुलकति, निरखति, थिरकति बनठनि, का वर्णन बड़े भव्य रूप से करने में सफल हुए। पाठक जी ने सवेदनात्मक एवं चित्रात्मक प्रकृति के भव्य चित्र प्रस्तुत किए हैं। आचार्य शुक्ल जी ने प्रकृति का आलंबन रूप में बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय, कवि रत्न सत्यनारायण, श्री मैथिली शरण गुप्त ने प्रकृति को पर्याप्त समादर दिया है।^१ परन्तु इन सब कवियों में प्रकृति के प्रति सर्वाधिक अनुराग त्रिपाठी जी के शब्दों द्वारा कल-कल छल-छल गति से प्रवाहित होने वाली सरिता की तरह उन्मुक्त हो फूट पड़ा। इसी कारण इस युग के कवियों में उनका प्रकृति-वर्णन सर्वोत्कृष्ट कहा जा सकता है।

अनुपम छवि से अलंकृत प्रकृति सुन्दरी उनके काव्य में कही आलम्बन रूप में, कही उद्दीपन रूप में, कही चेतना रूप में, कही अचेतन रूप में, कही स्वतन्त्र रूप में, कही परतन्त्र रूप में, कही सवेदनात्मक रूप में, कही प्रतीकात्मक रूप में, कही पृष्ठभूमि के रूप में, कही रहस्यात्मक रूप में—विविध रूपा हो अद्भुत ज्ञांकी के साथ व्यक्त हुई है। भारतीय काव्यों में प्रकृति-वर्णन निम्नलिखित रूपों में मिलता है। स्थूल रूप में—प्रस्तुत रूप एवं अप्रस्तुत द्वारा बात स्पष्ट की जा सकती है तथा प्रकार-भेद से इस प्रकार का वर्गीकरण भी किया जाता है।

१. आलंबन रूप में (क) बिम्ब ग्रहण प्रणाली या सश्लिष्ट रूप में।
(ख) अर्थ ग्रहण प्रणाली या नाम परिणामरूप में।
२. उद्दीपन रूप में।
३. सवेदनात्मक रूप में
४. वातावरण-निर्माण के रूप में
५. रहस्यात्मक रूप में।
६. प्रतीकात्मक रूप में।
७. अलंकार योजना के रूप में।
८. मानवीकरण के रूप में।
९. उद्देशात्मक रूप में।
१०. पृष्ठभूमि के वर्णन के रूप में।
११. दूती के रूप में।

१. प्रस्तुत काल के कवियों ने हिन्दी काव्य साहित्य की परम्पराओं की और रुढ़ियों के प्रति विरोध प्रकट कर प्रकृति, मानव एवं जीवन के सम्बन्ध में व्यापक दृष्टि-कोण ग्रहण किया है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृ० ४०—डॉ० उदयभानु सिंह

त्रिपाठी जी प्रकृति में इतने घुल-मिल गये हैं कि प्रकृति को उन्होंने अनेक रूपों में देखा है। इसी कारण उनका प्रकृति-वर्णन कहीं शुक्ल जी की तरह शुद्ध है, कहीं गुप्त जी की तरह देश-प्रेम युक्त, कहीं छायावादी-काव्य की तरह नारी-रूप में। पथिक में अपने प्रकृति के प्रति अनुराग का कारण उन्होंने स्पष्ट कर दिया। मानव का कंकाल के ढाँचे से निर्मित शरीर अस्थिर सौंदर्ययुक्त है, प्रकृति का सौंदर्य-भण्डार अक्षय एवं शाश्वत है—

परम तुच्छ जड़ा, खग पशु का उपमेय तुम्हारा तन है।

प्रकृति सदा सुन्दरी तुम्हारा यौवन अस्थिर धन है ॥^१

प्रकृति के यथातथ्य चित्रण में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों का वास्तविक चित्रा-कन ही किया है। उन्होंने प्रकृति को अपनी भावना से अनुरजित कर उसमें सौंदर्य वर्द्धन की कही भी कृत्रिम चेष्टा नहीं की, वह स्वयं अपने सौन्दर्य से खिलखिलाती रहती है। प्रत्येक प्राकृतिक घटना, दृश्य एवं वस्तु का वैसा का वैसा ही चित्र उभार दिया है। देश का भ्रमण करते समय 'पथिक' का नायक मार्ग के दृश्य का वर्णन करता है—

बार-बार बक पंक्ति गमन से उज्ज्वल फूलों वाली।

मेघपुष्प वर्षा से धूमिल घटा क्षितिज पर काली ॥

लहराती दृग की सीमा तक धानों की हरियाली।

वारिजनयन गगन छविदर्शक सर की छटा निराली ॥

× × ×

कोकिल का आलाप, पपीहे की विरहाकुल बानी।

तोता-मैना का विवाद, बुल-बुल की प्रेम कहानी ॥

विमलोदक पुष्कर में विकसे चित्रविचित्र कुसुम हैं।

खडे चतुर्दिक शान्त भाव से लतिका लिगित द्रुम है ॥^२

कभी-कभी उनका अनुरागी मन पक्षियों के साथ कल-गान गाता है, मयूरो के साथ भाव-विभोर हो नृत्य करता है, मेघ खण्डों में मिल आकाश में उन्मुक्त नीले प्रांगण में स्वच्छन्द विचरण करता है। उनके उद्गार—

प्रतिक्षण नूतन वेश बनाकर रंग-बिरंग निराला।

रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद माला ॥

नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है।

धन पर बैठ बीच में विचखूँ यही चाहता मन है ॥^३

१. पथिक, पृ० १० —प० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक, पृ० ३८ „

३. पथिक, पृ० १० „

आलंबन रूप में—

आलंबन रूप में प्रकृति, कवि के लिए साधन न बनकर, साध्य बन जाती है।^१ कवि का मन आत्मविभोर हो उसमें रम जाता है। इस रूप में दो प्रणालियों का प्रचलन दिखाई देता है।^२

१. बिम्ब ग्रहण प्रणाली—जिसमें प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र अंकित किये जाते हैं।
२. अर्थ ग्रहण प्रणाली—जिसमें प्राकृतिक पदार्थों के केवल नाम ही गिना दिये जाते हैं।

त्रिपाठी जी प्रकृति के सश्लिष्ट चित्रण में दक्ष हैं। सश्लिष्ट प्रकृति-चित्रण कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिणाम है। रूपक एवं उत्प्रेक्षा के सहारे सश्लिष्ट चित्रात्मक योजना देखिये—

था निर्भय कर्त्तव्य-परायण वीर प्रभावित स्वर से ।
सिन्धुसंतरी गरज रहा था अगणित ऊर्मि अधर से ॥
चचल बीचि मरीचि बसन से सजकर नीले तन को ।
होड़ लगी-सी उछल रही थी चारु-चन्द्र चुम्बन को ॥
सिन्धु विहंग तरंग पंख को फड़काकर प्रतिक्षण में ।
है निमग्न निज भूमि अण्ड के सेवन में रक्षण में ॥

इसी प्रकार नाम-परिगणन या अर्थग्रहण प्रणाली का प्रयोग करते हुए कवि ने प्रकृति के सौम्य नामों का परिष्कृत किया है।^३ कहीं-कहीं कथा-प्रवाह में परिगणन की शैली द्वारा भी उन्होंने प्रकृति के चित्र चित्रण किये हैं—

पंकज, रंभा, मदन मल्लिका, पोस्त गुलाब बबुल का,
खतक कुन्द कुली, पिक, किशुक, नरगिस, मधुकर फुलका ।
संग्रह है चंपक शिरीष का धर्म सुरभिमय नारी ।

परिगणन रूप में—

परिगणन की शैली के अनुसार उन्होंने वन्य पुष्पों तथा भ्रमर के नामों को गिनाया है। शब्द सौन्दर्य, पदलालित्य के चारु-चयन से चमत्कृत परिगणनात्मक चित्रण को देखिये—

१. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० ३२—डॉ० किरण कुमारी गुप्ता
२. प्रियप्रवास में काव्य, संस्कृति और दर्शन, पृ० १३८—डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना
३. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० ३२८—डॉ० किरण कुमारी गुप्ता

भृगमाला विहरित कल कोकिल कूजित कुसुमित वन को,
ललित लहन्ही लता लसित अलि मुखरित कुम्भ भवन को ।

अनुप्रास की कोमल छटा को निखार कर कोमल शब्द चयन से प्रकृति-चित्रण को हृदयग्राही बना दिया है । इस वर्णन से अनायास ही पीयूषवर्षी जयदेव के वे मृदुल भावों में गूँथे गये मधुर शब्द याद आते हैं—

ललित लवंगलता परिशीलन कोमल मलय समीरे ।

मधुर निकर करबित कोकिल कूजित कुंज कुटीरे ॥^१

प्रकृति के सबसे सुकुमार कवि पन्त जी की तरह त्रिपाठी जी को प्रकृति का मधुर-मँजुल, चित्रही रचता है ।^२ वे उसके सुन्दर शान्त रूप के ही उपासक हैं । पन्त जी ने केवल 'परिवर्त्तन' कविता में प्रकृति का उग्र रूप विराटाकार में दिखाया है । इसी प्रकार त्रिपाठी जी ने प्रकृति का उग्र रूप केवल 'मिलन' में एक स्थल पर दिखाया है—अन्य स्थानों पर प्रकृति का उग्र चित्रण नहीं प्राप्त होता—

क्षण में उमड़ घुमड़ गर्जन कर,
घिर आये घन घोर ।

बहा विषम विक्षिप्त प्रभंजन,
वृक्षों को शकशोर ॥

होने लगी वृष्टि रिमझिम कर,
अविरत मूसल धार ।

आन्दोलित लहरे तरणी पर
करने लगी प्रहार ॥^३

पृष्ठभूमि के रूप में

उन्होंने अपने तीनों खण्डकाव्यों—पथिक, मिलन एवं स्वप्न में प्रकृति का वर्णन पृष्ठभूमि के रूप में किया है । पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण मानवीय भावनाओं एवं कार्य व्यापार की भूमिका के रूप में होता है ।^४ ऐसे वर्णन में प्रकृति आगे आने वाले भाव विशेष या घटना के लिये उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करते हैं । प्रबन्ध-काव्यों में इस प्रकार के वर्णनों की प्रचुरता रहती है । 'प्रियप्रवास में' "दिवस का अवमान समीप था गगन था कुछ लोहित हो चला" तथा 'पंचवटी' में 'चारुचन्द्र

१. गीत गोविन्द, पृ० १०—जयदेव

२. त्रिपाठी जी के प्रकृति-चित्रण बड़े सुन्दर एवं सकेतात्मक हैं, पृ० २०८

३. मिलन, पृ० २२—प० रामनरेश त्रिपाठी

४. प्रकृति हिन्दी काव्य—डा० रघुवंश

४. स्वप्न ,

तू" तथा गुप्तजी ने "मुझे मूल मत मारो" कहकर इन्ही भावों का व्यक्त किया है।^१ निम्नलिखित पक्तियों में त्रिपाठीजी ने भी मानव और रमणीय प्राकृतिक उपादानों का भावनिष्ठ संपर्क उपस्थित किया है।

फूल पखुड़ी में, पल्लव में,
प्रियतम रूप विलोक ।
भर जाता है महा मोद से,
प्रेमी का उर ओक ॥
बकली देख करने लगती है,
वह उन्मत्त प्रलाप ।
देखे कब तक इन पत्तों में,
लुके रहेगे आप ॥^२

फूल तथा कली को देखकर उसे अपने प्रियतम की स्मृति हो उठती है एवं इतनी चुभन उत्पन्न होती है कि प्रेमिका बेचैन रहती है।

संवेदनात्मक रूप में प्रकृति—

वियोग की कोमल प्रवृत्ति में, प्रकृति से तादात्म्य करते हुए उन्होंने प्रकृति में, मानव-व्यापारों और मानवीय संवेदनाओं का आभास प्राप्त किया है। मानव को प्रकृति हर्ष में उल्लसित, वियोग में व्यथित प्रतीत होती है, यही प्रकृति उसके साथ रुदन करती है। 'स्वप्न' में वसन्त को अपनी प्रेयसी सुमना के साथ असह्य वियोग में जड़-प्रकृति भी अश्रु गिराकर संवेदना प्रकट करती है।

"पता नहीं किसके वियोग में,
वन में नदी तटों पर तरुवर ।
मेरी तरह रुदन करते हैं,
फूल नाम के अश्रु गिराकर ॥
कोई रोता है अनन्त में,
जिसके अश्रु बिन्दु हैं उड्डगन ।
ओस नाम से तृण तरुओं पर,
बिखरे रहते हैं जिनके कण ॥"^३

१. प्रकृति हिन्दी काव्य, पृ० ११५—डा० रघुवश

२. मिलन, पृ० ३१—प० राम नरेश त्रिपाठी

३. स्वप्न, पृ० ४०

पृथ्वी और उन्मुक्त आकाश पर्यन्त, जड-चेतन, प्रकृति, मानव के साथ सजल अश्रु प्रवाहित करती हुई दृष्टिगोचर होती है। अपने कष्टों का वह प्रकृति के दर्पण में प्रतिबिम्ब देखता है।^१ यह वेदना भूमि तक ही सीमित नहीं, इसका विस्तार गगन तक है। समस्त तारक पुंज इसके अज्ञात किन्तु परम स्नेही है। यद्यपि सभी कवियों ने ओस के बिन्दुओं में अश्रुओं की कल्पना की है, किन्तु त्रिपाठीजी को ओस की बूंदों में नक्षत्ररूपी अश्रु बिन्दुओं के रूप का आभास होता है।

नायक वसन्त दुःखाधिक्य में प्रकृति से एकात्म्य स्थापित कर लेता है। उसकी स्थिति एक वियोगी अधीर प्रमत्त की तरह हो जाती है। प्रियतमा सुमना से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु उसको दुःख देती है। सुमना के वियोग में उसके पति वसन्त की दशा अत्यन्त करुण हो जाती है—

सुमना ने निज कर कमलो से,
निज तरुओं को सीच-सीच कर।
खड़ा किया था उसके तन से,
लिपट-लिपट कर प्रेम पुरस्सर ॥

मुग्ध वसन्त न जाने क्या क्या,
सोचा करता था मन ही मन।^२

दूसरी ओर 'मिलन' की विजया को तो प्रकृति से इतनी घनिष्ठता है कि प्रकृति भी अपने विलास का परिह्राग कर, नीरव, मलिन, दुःखित एवं उदासीन हो जाती है।

शोक मान तेरी विपत्ति में,
सबने तजा विलास।
खग ने गान लता ने हिलना,
मृग ने गमन प्रयास ॥^३

पति से वियुक्त करनेवाली कल-कल निनादिनी सरिता का मोहक रूप उसको प्रवंचिनी एवं ठगिनी की तरह प्रतीत होता है।

रूप गर्विता तरंगिणी का,
था सब सुन्दर अग।
छवि छलकी पड़ती थी मानो,
तट पर चढ़ी तरंग ॥
× × ×

१ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० ३८८—ने० डॉ० किरण कुमारी गुप्ता

२. स्वप्न, पृ० ४५—प० रामनरेश त्रिपाठी

३. मिलन, पृ० ३३

देख सरिता शोभा विजया के,
लगी घाव मे ठेस ।

बोली ठगिनी-सा है तेरा
सरिते । मोहक भेस ।^१

प्रिय के सतत चिन्तन, अनवरत दुःख, कष्ट-कलित-विषाद से उसका मन कह
उठता है—

‘हे भगवान् घाम मैं होती प्रिय उस पर पग धरते ।’^२

‘पथिक’ मे प्रेमाधिक्य इतना बढ़ता है कि वह काग से अपनी प्रियदर्शी आँख
को सब कुछ खा लेने पर भी, छोड़ देने के लिए विनय करती है—

देना छोड़ दया करके प्रिय दर्शन पति-नयन को ।^३

कही भी कवि का प्रेम वासना से कलुषित नहीं हुआ है । उसकी प्रेम-पद्धति
में गंगाजल की निर्मलता तथा पवित्रता है ।

‘पथिक’ की प्रिया अपने प्रियतम की तन-मन-धन से सेवा करने को प्रस्तुत
रहती है । घनघोर घुमड़ कर आने वाली सावन की काली घटाओ को देखकर उसे
चिन्ता होती है—“मेरे प्रिय इस दुर्दिन मे कही कष्ट पाते होंगे ।”

रिमझिम बरस रहे सावन-घन उमड़-घुमड़ अलबेले ।

तरुतल कही भीगते होंगे मेरे पथिक अकेले ॥^४

यहाँ वियोगिनी का कितना स्वाभाविक वर्णन किया है । वह किसी की पद-
चाप से, कही किवाड़ की खटक से, कही पपीहे की ‘पिय पिय’ बोली से, प्रिय का
आगमन समझ कर दर्शन की अभिलाषा ले उन्मत्त हो दौड़ पड़ती है—

आते पास आँख लगते ही खलते ही छिप जाते ।

भूल भुलैया खेल साथ ! क्यों हाय मुझे तरसाते ॥

देता है सूचना पपीहा, हवा किवाड़ बजाती ।

तुझको आया समझ द्वार पर तुरत दौड़ मैं जाती ॥^५

उपदेशात्मक रूप में—

त्रिपाठीजी के प्रकृति-वर्णन की यह विशेषता है कि प्रकृति पर चेतन व्यक्तित्व
का आरोपण करते हुए उसमें उपदेशात्मकता का भी पुट उन्होंने यत्र-तत्र दिया है ।

१. मिलन, पृ० ३३—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक, पृ० ५१ ”

३. वही, पृ० ५१ ”

४. वही पृ० ५१ ”

५. वही, पृ० ५० ”

प्रकृति-नटी अपने पल-पल परिवर्तित वेश के कारण उनको कभी विभ्रमयुक्त जगत् का दिग्दर्शन कराती है तो कभी उत्साह को संचरण कर उपदेश देती है। वे प्रकृति में कर्मठता, उत्साह, कार्य तत्परता, सलग्नता तथा मानवीय चेतना का अनुभव करते हैं।

रवि जग मे शोभा सरसाता सोममुधा बरसाता ।

सब हैं लगे कर्म मे कोई निष्क्रिय दृष्टि न आता ॥

जीवन पर आतप वसुधा पर छाया करता है ।

तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म मे ऐसी तत्परता है ॥^१

मानव अनुभव करता है कि प्रकृति उसके सेवा कार्य में निरत है, मलय समीर सुरभिदान देता है, सागर भूमितल की रक्षा करता है, जलद शस्यश्यामला को यौवन देता है, सूर्य प्रकाश का दान देकर, मानो परोपकार करने का उपदेश देता है। झझावत के थपेड़े खाकर तरुसमूह तो धराशायी हो जाते हैं, लेकिन विघ्न-विनाशक पर्वत दृढता का उपदेश देते हैं।

आते है विघ्नो के झोके,

वारवार प्रचण्ड ।

गिरते है तरु पर रहता है,

गिरिवर अटल अखण्ड ॥^२

मानवीकरण के रूप में—

त्रिपाठीजी प्रकृति का मानवीकरण करने में भी पटु हैं। प्रकृति का यह रूप छायावादी-युग की एक विशेषता, प्रकृति पर मानवीकरण या प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण का पूर्वाभास देता है। प्रकृति पर मानवीय चेतना का आरोप ही मानवीकरण है। इसमें अमूर्त मूर्त रूप धारण कर तथा चेतना बनकर आता है। कही तो उन्हें प्रकृति-नटी रगबिरगी ही वारिद-माला की छाया में क्रीड़ा करती, धिरकती, दृष्टिगोचर होती है, तो कही सिंधु-विहग अपने पखों को फैलाकर उड़ने का प्रयास करता है।

१. सिंधु सतरी गरज रहा था अगणित ऊर्मि अधर से ।^३

२. सिंधु विहग तरंग पख को फड़का प्रतिक्षण में ।

है निमग्न निज भूमि अण्ड के सेवन में रक्षण में ॥^४

१. पथिक, पृ० २१—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. मिलन, पृ० ५५ ”

३. पथिक, ”

४. वही, पृ० २८ ”

३. कुमुद-बन्धु की मुदित कौमुदी भू पर उतर गगन से ।

सोयी थी सिकता समूह पर परम अचिन्तित मन से ॥^१

कौमुदी को भू पर उतरते देखकर निरालाजी की 'सन्ध्यासुन्दरी' कविता की सहज ही स्मृति आ जाती है—

दिवसावसान का समय,

मेघमय आसमान से उतर रही,

वह सन्ध्यासुन्दरी परी-सी धीरे-धीरे-धीरे ।

'सोयी सिकता समूह पर' को पढ़कर सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त की प्रख्यात पक्तियाँ सहसा याद आ जाती हैं ।^२

सैकत शैल्या पर दुग्ध धवल, तन्वगी गगा ग्रीष्म विरल ।

लेटी है श्रान्त, क्लान्त निश्चल ॥ (नौका विहार)

प्रकृति के प्रागण में उनको इन्द्रधनुष बालको की तरह क्रीड़ा-मग्न दिखलाई देता है एव कही प्रियतमरूपी धन में प्रियतमारूपी चपला हँस-हँसकर विनोदपूर्ण ठिठोलियाँ करती है और मुदित भगवान् भुवन भास्कर चिर सुहागिनी सन्ध्या का कर पकड़कर पहुँचाने जाते हैं । देखिए—

१ इन्द्रधनुष खेला करता है झरनो में हिल-मिलकर दिनभर ।

तृप्त नहीं होते हैं दृग यह दृश्य देख अनिमेष अवनि पर ॥

२ धन में किस प्रियतम से चपला,

करती है विनोद हँस-हँसकर ।

किसके लिए ऊषा उठती है,

प्रतिदिन कर शृंगार मनोहर ?^३

३ मुदित सहस्र रश्मि ने पकड़ा,

चिर सुहागिनी सन्ध्या का कर ।

लोट रहा है मानो चेतन,

जगत् अंशु धर को पहुँचाकर ॥^४

प्रतीक रूप में—

प्रतीकों के द्वारा मानव ने आरम्भ में ही आत्माभिव्यक्ति करना सीखा ।

१. पथिक, पृ० २८—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. "द्विवेदी युग के अनुयायी कार्यकर्ताओं की प्रकृति में मानवीकरण की प्रतिष्ठा पं० रामनरेश त्रिपाठी के काव्य में सबसे अधिक लक्षित होती है ।"

हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, पृ० ४७५—ले० डॉ० किरण कुमारी गुप्ता

३. स्वप्न, पृ० २५—पं० रामनरेश त्रिपाठी

४. वही, पृ० २८ ,,

उसने प्रकृति से साहचर्य स्थापित करते हुए वृक्ष-प्रतीको को जन्म दिया । धीरे-धीरे उसकी अभिव्यंजना और शक्तिशाली हो गई, तब उसने प्रतीक रूप में वर्णन खुलकर किए । त्रिपाठी जी ने प्रकृति का प्रतीक रूप में सुन्दर वर्णन किया है । प्रकृति के प्रतीको को अपनाने से उनकी भावाभिव्यजना अत्यन्त ही सबल एवं प्रौढ़ हो गई है । चन्द्र मुख का प्रतीक है, इस प्रकार के दृश्य का एक उदाहरण देखिये—

“चन्द चूम लूँ, बोला मन मे,
जैसे ही आनन्द ।
आकर लगा तुरत ओठो से,
मधुर-मुधाधर चन्द ॥’

रहस्यात्मक रूप में—

रहस्यात्मक रूप में प्रकृति का चित्रण वैदिक-काल से ही होता चला आया है । तारों से खचित आकाश, शस्य यौवना पृथ्वी, इन्द्रधनुष के चटकीले रंग, चाँदनी की रजत साड़ी, ऊँचा का शुभ्र पटल, हास-आकाश की नीलिमा, सन्ध्या की अरुणिमा, नदी की कल-कल छल-छल ध्वनि, पर्वतो की श्यामली समाधि के प्रति, उनके मन में सदैव ही जिज्ञासा का भाव रहा है ।^१ त्रिपाठी जी के हृदय की जिज्ञासा इन शब्दों में व्यक्त होती है—

है वह कौन रूप का आकर,
जिसके मुख की कान्ति मनोहर ।
देखा करती है सागर की,
व्यग्य तरंगे उचक-उचक कर ॥
फूलों के आनन अचरज से,
खुल पड़ते हैं जिसे श्रवण कर ।
थामे नहीं हँसी थमती है,
मुँह मुँदते ही नहीं जन्म भर ॥^२

आश्चर्यचकित हो रहस्यसत्ता पर पुष्पों के मुख का पुनः न बन्द होना कितना स्वाभाविक है, जिसे देखकर—

मारे अचरज के खिले थे 'सो खिले ही रहे,
तब से न मुँदे मुख चकित सुमन के ॥ याद आता है ।

१. “प्रकृतिवादी, रहस्यवादी इसके सौन्दर्य को अपने प्रेम का आधार तो मानते हैं परन्तु केवल इस सौन्दर्य के माध्यम से चरम सौन्दर्य की अनुभूति करने के लिये ।” प्रकृति और हिन्दी काव्य, पृ० ११६—डॉ० रघुवंश

२. स्वप्न, पृ० २४—पं० रामनरेश त्रिपाठी

इस प्रकृति की रहस्य-भावना का उद्घाटन प्रातःस्मरणीय प्रसाद ने बड़ी पटुता से किया है—

हे विराट्, हे विश्वदेव, तुम कुछ हो यह होता भान ।

धीर गम्भीर, शान्त स्वर, संयत यही कर रहा सागर गान ॥

“यही आकर्षण न जाने नक्षत्रों से कौन, मुझे तब इगित करता मौन” के माध्यम से पन्तजी में उमड पड़ता है। महादेवी मे “मैं सरित विकल” का नाम ले यही भावना अपना उभार दिखाती है। अन्त मे त्रिपाठी जी की जिज्ञासा-वृत्ति भी उसी परम विराट् की आराधना मे रत है—

जग क्या है ? किसलिये बना है ?

क्यों है यह इतना आकर्षक ?

कब से हूँ मचेत पर फिर भी,

इसका खुला रहस्य न अब तक ।

मैं जिसके निर्मल प्रकाश मे,

करता हूँ दिन-रात अतिक्रम ।

ज्योति मूल वह कही प्रकट है,

बाहर है किसका छाया-तम ?^१

अद्भुत जग के चित्रण को देखकर उम चित्रकार पर वे आश्चर्य प्रकट करते हैं—

जिसने तुम्हे रचा वह कैसा होगा चारु-चित्तेरा ।^२

मानव-सौन्दर्य उनके लिये गौण हो जाता है। इसी कारण डॉ० किरण कुमारी गुप्ता का कथन है कि चारु-चित्तेरे की कल्पना उन्हें विचार-मग्न बना देती है, वह अखिल विश्व में दृष्टि का प्रसार करता है। प्रकृति के प्रत्येक व्यापार मे नियमन एव सुस्थिर संचालन देखकर वह एक संचालन शक्ति का अनुभव करता है, सर्वत्र उसी की छवि का पान करता है। इस प्रकार रहस्यात्मक प्रकृति-वर्णन मे त्रिपाठीजी ने पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

आलंकारिक रूप में—

त्रिपाठीजी प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी थे। उनके देश-भर के परिभ्रमण ने तथा दक्षिण-यात्रा एवं काश्मीर की यात्रा ने उनपर अत्यधिक प्रभाव डाला है। प्रकृति को आलंकारिक रूप मे उन्होंने बहुत महत्व प्रदान किया। सौन्दर्य की मन-

१. स्वप्न, पृ० २०—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक, पृ० १०

मोहकता का चेतन प्राणी एव अचेतन, प्रकृति पर कितना तीव्र और गहरा प्रभाव है, इसका उन्हें स्वयं गहरा अनुभव है। उनकी सौन्दर्यानुभूति प्रकृति के अवयवों से उपमान, उपमेय चुनकर ही विश्राम पाती है। त्रिपाठीजी ने प्रकृति का चित्रण उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति आदि अलंकारों के द्वारा भी किया है। इनके अलंकार प्रकृति के भार नहीं प्रतीत होते वरन् उनके रूप को निखारने में सहायक हो जाते हैं। प्रकृति का प्रभाव अलंकारों के सहज संयोजन द्वारा बड़ा ही मोहक एव आकर्षक हो जाता है—

विचरण में था निरत एक दिन,
मन्द-मन्द धर चरण कोकनद ।
मानो द्रुम दल लसित शैल पर,
क्षीर कान्तिमय नूतन वारिद ॥

उत्प्रेक्षा के द्वारा लमित शैल का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। उपमा में वे प्रकृति का उपयोग पन्तजी की भाँति ही करते हैं।

तरुवर के छायानुवाद-सी,
कटी-छटी नव कविता-सी ।^१

इसी प्रकार त्रिपाठी जी ने उपमा को प्रकृति के उपकरणों से चुनकर छायावादी कला का आभास दिया है—

करुणा-सी मृदु धर्म गीत-सी,
शुद्ध कल्पना-सी सुख सकुल ।
शुभ्र ऊषा-सी दिव्य हास-सी,
रूपसिन्धु की मणि-सी मन्जुल ।

वसन्त अपनी प्रियतमा सुमना का स्मरण “विद्युत्-सी खिलाखिला पड़ी वह” कहकर करता है।

मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमान देखिए—

१. सुन्दर सर है लहर मनोरथ-सी उठकर गिर जाती ।
२. मुख ऊपर दुःख की छाया थी सन्ध्या-सी उपवन में ।

अमूर्त के लिये मूर्त उपमान का प्रयोग देखिये—

हुई निबिड तम में प्रभात वेला-सी जागृति आशा ।
देख पुष्प का उदय हुई बलवती उच्च अभिलाषा ॥

इस प्रकार मूर्त और अमूर्त के चित्रण में वे असमर्थ नहीं हैं। रूपकातिशयोक्ति

के द्वारा भी उन्होंने मानव के स्थूल सौन्दर्य का बड़ा ही मनोरम दिग्दर्शन प्रस्तुत किया है। वसन्त सुमना के चले जाने के पश्चात् स्मृति-रूपी उपमानो को देखकर दुःखी हो जाता है।

कमल, कलभ, सरिता, राकापति,
परिभूत, लतिका, विद्युत् मधुकर।
रक्त कुसुम दाड़िम गुलाब शुक्ल,
देख महीधर शिखर वारिचर ॥
रुदन किया करता था वन में,
घुटनो पर वसन्त सिर रखकर।^१

सभी उपमान, नवीन न होकर परम्परागत है, जिनका कवि ने वसन्त की खिन्नता को व्यक्त करने के लिये वर्णनो में प्रयोग किया है। कवि बाह्य की अपेक्षा आन्तरिक अंगोच्चर रूप का, मानव के स्थूल एवं मूर्तरूप से साम्य दिखाता है। वसन्त के गोचर रूप का वर्णन वे जिस पटुता से करते हैं, वह सराहनीय है—

सागर-सा गम्भीर हृदय हो,
गिरि-सा ऊँचा हो जिसका मन।
ध्रुव-सा जिसका लक्ष्य अटल हो,
दिनकर-सा हो नियमित जीवन ॥^२

इस प्रकार कवि को आलंकारिक वर्णन में अद्भुत सफलता मिली है। त्रिपाठीजी को मानव के अस्थिर सौंदर्य की अपेक्षा प्रकृति का शाश्वत सौंदर्य प्रिय है। प्रकृति को उन्होंने अनेक रूपों में देखा है, उनका प्रकृति-वर्णन कहीं तो शुक्ल की भाँति शुद्ध एवं यथातथ्य है, कहीं गुप्तजी की भाँति देश के अग्र रूप में है और कहीं परिवर्ती छायावादी काव्यकारों की भाँति भावना से पूर्ण है। वास्तव में इनकी कोमल भावना छायावाद के लिए प्रशस्त मार्ग खोलने में सहायक हुई।^३

स्वयं त्रिपाठीजी ने कहा है कि “पथिक मेरी दक्षिण-यात्रा का प्रतीक है और स्वप्न उत्तर-यात्रा का।” मैं प्रकृति का पुजारी हूँ। इससे प्रकृति के प्रति मेरा आन्तरिक अनुराग जहाँ-तहाँ इसमें भी उमड़ पड़ा है। ‘काश्मीर’ में जिन-जिन प्राकृतिक दृश्यों ने मुझे लुभा लिया था, उसका वर्णन मैंने इसके अनेक पद्यों में किया है।^४ उदाहरणार्थ पथिक में उनका प्राकृतिक प्रेम अत्यधिक प्रबल है, सम्पूर्ण प्रथम सर्ग प्रकृति-वर्णन में

१. स्वप्न, पृ० ५२—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ५८

३. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० ३८३—डॉ० किरण कुमारी गुप्ता

४. स्वप्न, पृ० १६२—प० रामनरेश त्रिपाठी

ही समाप्त हो जाता है।^१ पहला पद्य में वर्णन बहुत रूपकात्मक है कि प्रकृति के सब विभवों से अधिक सुन्दर एक दिन सरस और बहुत प्रसन्न प्रभात रागरूपी रथ पर आरूढ़ सूर्य की लालिमारूपी मार्ग पर चल कर लहरों से बारम्बार चुम्बन किये गये समुद्र-तट पर, धीरे-धीरे पूर्व दिशा से आकर सुख की तरह मिला। इतना होने पर भी उनमें एक अभाव खटकता है कि त्रिपाठी जी के प्रकृति-वर्णन में प्रकृति के सूक्ष्म चित्र उभारना उन्हें नहीं आता, हाँ वे उसका स्थूल सौन्दर्य ही चित्रात्मक एवं सश्लिष्ट शैली में उतार सकते हैं। कहीं-कहीं उनका प्रकृति-वर्णन इतना व्यापक रूप धारण करता है कि भावना और कार्य-वस्तु में आपसी सघर्ष-सा होने लगता है। उनका प्रकृति-वर्णन द्विवेदी-युगीन कवियों में श्रेष्ठ कहा जा सकता है तथा छायावाद के लिए पृष्ठ भूमि भी तैयार करता है। श्री कृष्णलाल ने इसी कारण त्रिपाठीजी के प्रकृति-वर्णन को महाकवि 'हरिऔध' के प्रकृति-वर्णन से श्रेष्ठतर बनलाया है।^२

महाकवि हरिऔध तथा त्रिपाठीजी के प्रकृति-वर्णन में बड़ा अन्तर है। हरिऔध प्रकृति का मात्र वर्णन करते हैं, रमते नहीं। त्रिपाठी जी वर्णन-मात्र नहीं करते रमते हैं, देवों के समक्ष विनयी भक्त की भाँति समर्पित हो जाते हैं। हरिऔध जी अनुमान के आधार पर प्रकृति-वर्णन करते हैं तथा 'प्रियप्रवास' में तो वे कमल में काँटे दिखाते रहे। उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि काँटे तो गुलाब में होते हैं, कमल में नहीं। 'काँटे से कामनीय कज कृति में है क्या न कोई कमी' कहने वाले हरिऔध जी की आलोचकों ने भी खूब खबर ली है। हरिऔध जी ने यहाँ तक आश्चर्य पैदा किया, ब्रज में करील की चर्चा तक नहीं की तथा सागौन और इलायची का नाम गिनाते थके नहीं। हरिऔध जी के इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन से कोई भी व्यक्ति ऊब सकता है तथा कवि की ईमानदारी पर हँस सकता है। अनभूति की प्रामाणिकता का अभाव होने के कारण यह वर्णन खाली बैठे का व्यर्थ कार्य-सा लगता है। लेकिन रामनरेश

१. "आपके साथ रामेश्वर की यात्रा में पर्वत, वन, नदी और समुद्रतट का प्राकृतिक सौन्दर्य देखकर मेरे मन को जो सुख प्राप्त हुआ है, उसकी एक झलक इस पथिक के पद्यों में मैंने लाने की चेष्टा की है। इसका पहला पद्य श्री रामेश्वरम् में समुद्र-तट पर बैसाख कृष्णा ६, सवत् १९७७ शुक्रवार को प्रातःकाल चार बजे रचा गया।"

पथिक, मधुर स्मृति पत्र—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. "जयशंकर प्रसाद, रामनरेश त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त और स्वयं मैथिलीशरण गुप्त के पिछले काव्य में कुछ बातों में विकास के चिह्न मिलते हैं। 'पथिक' का प्रकृति-वर्णन 'जयद्रथ वध' और 'प्रियप्रवास' के प्रकृति-वर्णन से कहीं अधिक श्रेष्ठ था।"

आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १०३—डॉ० श्रीकृष्ण लाल

त्रिपाठी में आपको हरिऔध जी की तरह की भयकर भूले कभी नहीं मिलेगी। उन्हें पढ़कर आप यह विश्वास कर सकते हैं कि जिन क्षणों को कवि ने जिया तथा भोगा है, उन्हीं प्रामाणिक अनुभूतियाँ काव्य में व्यक्त हुई हैं। कवि की अनुराग-शक्ति ने वर्णनों को प्राणवत्ता प्रदान की है। त्रिपाठी जी के समसामयिक कवि गुप्त जी, सियाराम गुप्त, नवीन जी तथा एक भारतीय आत्मा आदि में भी प्रकृति के प्रति अनुराग है, लेकिन, यह अनुराग इतना ग्रहण नहीं है जितना रामनरेश त्रिपाठी के काव्यों में मिलता है। उनके काव्य तो प्रकृति की गोद में ही फले-फूले हैं।^१ अतः उनके मन में प्रकृति के प्रति अथाह विश्वास है जिसे देखकर बड़-सर्वथ की मार्मिक पंक्तियाँ स्मृति में सहसा ही आ जाती हैं—

Nature did never betray,

The heart that loved her.

उनका निश्चिन्त मत है कि प्रकृति स्नेहयुक्त हृदय के प्रति अविश्वास नहीं कर सकती। साथ ही वे पन्त जी की तरह प्रकृति के अनन्य उपासक हैं। हाँ, उनमें पन्त जी की तरह अन्तर्भेदिनी दृष्टि, कल्पना की सूक्ष्मता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि का अवश्य अभाव है पर प्रकृति की मार्मिकता से उनका हृदय पूरित है, इसमें सन्देह नहीं। वास्तव में वे प्रकृति के अनन्य सहचर एवं उपासक हैं। उनका प्रकृति-चित्रण उनके हृदय में प्रवाहित होने वाली अविरल प्रकृति-प्रेम-धारा का परिणाम है। वैसे भी पन्त जी के प्रकृति-चित्रण से उनके प्रकृति-वर्णन की तुलना करना उचित नहीं है। पन्त जी के सुकुमार बिम्ब अपने प्रभाव में दुर्निवार हैं। इस क्षेत्र में उनकी टक्कर का कोई कवि आधुनिक हिन्दी काव्य में ही क्या, समस्त भारत के आधुनिक साहित्य में नहीं है। पन्त जी ने प्रकृति के प्रत्येक रंग का आस्वाद पाठक को कराना चाहा है। इतना सत्य है कि द्विवेदी-युगीन कवियों में त्रिपाठी जी का प्रकृति-प्रेम उल्लेखनीय अवश्य है, क्योंकि उन्होंने प्रकृति के मधुर तथा विराट् बिम्बों को सरलता से प्रस्तुतीकरण दिया है। देश की शोभा को वे लगातार इन्हीं शब्दों में स्मरण करते रहे हैं कि—

मनमोहिनी प्रकृति की जो गोद में बसा है,

जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन-सा है ?

१. “परन्तु हरिऔध वृन्दावन की वनस्थली में लौंग-इलायची के वृक्षों को तो देख लेते हैं, परन्तु वहाँ पग-पग पर खड़े करील उन्हें दिखाई नहीं देते। ऐसा जान पड़ता है कि कवि कभी ब्रजभूमि में नहीं पधारे थे।”

प्रियप्रवास में काव्य सस्कृति और दर्शन, पृ० १५२—डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना

२. “त्रिपाठी जी ने भारत के प्रायः सभी भागों में भ्रमण किया, इससे उनके प्रकृति-वर्णन में स्थानगत विशेषताये अच्छी आ सकी हैं।”

हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७०४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

अभिव्यञ्जना-शिल्प

खड़ीबोली के कवियों में प० रामनरेश त्रिपाठी का नाम अत्यन्त सम्मान एवं गौरव के साथ स्मरण किया जाता है। उन्होंने भाषा के साहित्यिक एवं परिमार्जित रूप के साथ भाषा को भास्वरता प्रदान की। भारतेन्दु-युग में गद्य की भाषा तो खड़ी-बोली हो गई थी, लेकिन पद्य की भाषा ब्रजभाषा ही रही, जो प्रयास हुये भी वे केवल नाममात्र के प्रयास थे। वास्तव में ब्रजभाषा का ही आधिपत्य रहा।^१ भारतेन्दु-युग भाषा का प्रवेश-द्वार था, जिस पर द्विवेदी-युग ने आकर नई भावना, नई भाषा, नये विषय एवं नई चेतना का आरोप किया। स्वनामधन्य आचार्य महावीर प्रसाद ने अवतरित होकर उस युग की भाषा में परिष्करण किया एवं खड़ीबोली के सम्मान को बढ़ाने का स्तुत्यकार्य किया।^२ खड़ीबोली को काव्य भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित कर द्विवेदी जी ने एवं उनके सहयोगी कवियों ने भाषा में परिष्करण, व्याकरणसम्मत, भाषा विषयक स्वच्छता एवं भाषा की कर्कशता को दूर करके भाषा में लालित्य एवं सरसता लाने का प्रयत्न किया गया। द्विवेदीजी ने भाषागत अशुद्धियों की तीव्र आलोचना करते हुये कवियों को शुद्ध परिमार्जित खड़ीबोली में काव्य रचना का मार्ग प्रदर्शन किया। उनके सतत प्रयास से काव्य-भाषा में उत्तरोत्तर, स्वच्छता, सरलता, सरसता, कोमलता, प्रवाहमयता, मधुरता, प्रौढ़ता, शक्तिमत्ता और भावाभिव्यञ्जना की क्षमता का आगमन होता गया। एक ओर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'प्रिय-प्रवास' में संस्कृतनिष्ठ तत्सम पदावली में काव्य-रचना कर रहे थे, दूसरी ओर राष्ट्र कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त भाषा में युगानुकूल प्राञ्जलता एवं प्रौढ़ता ला रहे

१. "बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही कविता की भाषा ब्रजभाषा से खड़ीबोली हो गई। 'स्वयं ब्रजभाषा का शब्द भण्डार बहुत ही सीमित था।'"

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० १३६—डॉ० श्रीकृष्ण लाल

२. "नये विचार और नई भाषा, नया शरीर और नई पोशाक—दोनों ही नई हिन्दी को द्विवेदीजी की देन है। इसी कारण वे नई हिन्दी के प्रथम और युगप्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं।"

आधुनिक साहित्य, पृ० १३—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

थे। माखनलाल चतुर्वेदी, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', श्रीधर पाठक, सियाराम शरण गुप्त, नाथूराम शर्कर 'शर्मा' आदि कवि भाषा में सारल्ययुक्त सरसता तथा भास्वरता लाने का प्रयास कर रहे थे। इस युगीन वातावरण का त्रिपाठीजी पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा तथा उन्होंने खड़ीबोली के साहित्यिक रूप को अपनाया। इसी कारण डॉ० आशा गुप्ता लिखती हैं, "पिछले खेव के कवियों ने खड़ीबोली के इस अस्वाभाविक विकास को पहिचाना और उसकी 'खड़खड़ाहट' को दूर करने का जागरूक प्रयत्न किया। सन् १९१५ के आसपास जब त्रिपाठी जी काव्य-क्षेत्र में आये तो उन्होंने भाषा की आत्मा को परखने की चेष्टा की। उन्होंने समझ लिया कि खड़ीबोली संस्कृत तत्सम प्रधान भाषा की पर्यायवाची नहीं उसका अपना नैसर्गिक एवं स्वतंत्र रूप है, उसकी अपनी प्रकृति एवं अनाव्याकरण है।"^१ इसी कारण त्रिपाठीजी ने भाषा को सहज रूप से अपना कर उसको साहित्यिक स्वरूप प्रदान किया।^२ उनकी इस साहित्यिक भाषा के स्वरूप को हम इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं—

शब्द-विधान—

काव्य में शब्द-विधान का सर्वाधिक महत्त्व है। कवि अपने हृदयस्थ भावों को शब्दों के माध्यम से ही व्यक्त करता है। प्रायः शब्दों का प्रयोग दो रूप से होता है—

१. साकेतिक रूप में
२. बिम्बग्रहण के रूप में

शब्दों की शक्ति से ही भावों के बिम्बग्राही चित्र अंकित होते हैं। शब्द विधान में प्रेषणीयता की कमी होने पर शब्द-विधान लचर हो जाता है। कवि अनुकूल शब्दों के चारु-चयन के लिये अत्यन्त जागरूक रहता है। वैसे भी शब्द को ब्रह्म कहा गया है क्योंकि यही कवि की 'अनन्यपरतन्त्रताम्', 'नियतिकृत नियम रहिताम्' तथा 'आह्लादकारिणाम्' कृति का विधायक होता है। इस कारण कवि के लिए भावानुकूल शब्द-चयन अपेक्षित होता है साथ ही शब्दों में लाक्षणिकता, चित्रोपमता एवं नाद-योजना की भी अपेक्षा रहती है।

चित्रोपमता—

भाषा की मूर्तविधायिनी शक्ति बिम्बों के द्वारा प्रकट होती है। काव्य-बिम्ब भी एक प्रकार में भाव गभित शब्द-चित्र ही होता है। इस शब्द-चित्र का या काव्य-

१. खड़ीबोली काव्य में अभिव्यजना, पृ० ४०६ — डॉ० आशा गुप्ता

२. "सहज भाषा के लिये कठोरता आवश्यक है। जब तक आदमी सहज नहीं होता तब तक भाषा का सहज होना असम्भव है।"

अशोक के फूल, पृ० १८३ — आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

बिम्ब का माध्यम है शब्दार्थ । साथ ही यह भी सत्य है कि प्रत्येक सार्थक शब्द में कोई न कोई बिम्ब या चित्र निहित रहता है । कवि अपनी भावना, कल्पना-शक्ति से भावों को बिम्बित करता है अर्थात् उनमें नवीन-बोध के भाव-चित्र उभारता है । भाषा का यह प्रयोगतब सामान्य कम 'विशेष' ही अधिक हो जाता है तथा इसमें भाव-कल्पनात्मक-रूप भी मिल जाता है । सहजानुभूति, देवकथा (मिथ), रूपक (मेटाफर), अन्योक्ति-रूपक (एलिगरी) के द्वारा कवि अपने सौंदर्य-दर्शन को स्पष्ट करता है । सर्जक-कल्पना के आधार पर कवि लक्षित, उपलक्षित, स्मृति-बिम्ब तथा शुद्ध कल्पित बिम्बों की योजना करता है । लक्षित-बिम्ब भाषा में प्रत्यक्ष चित्रों को सामने लाता है । यथा—
तब उसने अपने समाज के भीषण-दृश्य विलोके ।

उसका हृदय विदीर्ण हो गया, आँसू रुके न रोके ॥^१

यहाँ कवि ने तात्कालिक दुःख की प्रतिक्रिया से उत्पन्न अश्रु-भरी आँखों को लक्षित-बिम्ब प्रस्तुत किया है । त्रिपाठीजी ने लक्षित-बिम्बों को जन्म देने की बड़ी-शक्ति है, उपलक्षित बिम्बों को कम । प्रेरक शब्दों में उन्होंने सरल, मिश्र, जटिल तथा पूर्ण बिम्बों को भी सृजित किया है । सरल-बिम्ब का एक मधुर-चित्र देखिए—
जाता हूँ मैं, जल-विहार को।

तरणी में तरुणी को लेकर ।

इस बिम्ब में कोई उलझन नहीं है और न ही सक्रिय बौद्धिकता की अपेक्षा है । सामान्य रागी व्यक्ति भी इससे सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेगा । व्योक्ति उसका रंग, रूप तथा रेखाएँ स्पष्ट है ।

त्रिपाठीजी चित्रोपमय शब्द-विधान या बिम्ब-विधान में बड़े पटु हैं । चित्रोपम शब्दों में भावानुकूलता के साथ-साथ कवि की प्रौढ़ अभिव्यक्ति एवं व्यंग्यात्मक रचना-शैली विद्यमान है ।^२ उदाहरणार्थ 'पथिक' में देश की निर्धनता को स्पष्ट करने के लिये कवि ने जिस शब्दावली का प्रयोग किया है, उससे मस्तिष्क में अनायास ही दुःख दैन्य का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है । जैसे—

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में ।

माँस नहीं है निरी सास है शेष अस्थि-पजरे में ॥^३

अथवा

हरित तलहटी में गिरवर की समतल निशंर ध्वनित धरा पर ।

छाया में अतिषघन द्रुमों की बैठ विशद हरिताम शिला पर ॥

१. पथिक—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. "कविता के लिये चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है ।"

पल्लव, पृ० २२—श्री सुमित्रानन्दन पन्त

३. पथिक, पृ० ४२—प० रामनरेश त्रिपाठी

‘हरिताम शिला’ के साथ ही सुमित्रानन्दन पन्त की “अब हुआ सान्ध्य स्वर्णाभ लीन” जैसी पक्ति कंसी छटा निखरती है। इसी प्रकार ‘धधक रही’, ‘निरी सांस’ में उन्होंने एक शब्द-चित्रया बिम्ब उपस्थित कर दिया है, जो निर्धनता के वातावरण को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है।^१ हृदय में अनायास भावों का सागर उमड़ने लगता है। इसी प्रकार “मेरे करुणानिधि का आसन गरम होगा कौन जाने कब मेरे शीतल उसास से।”^२ जब कहते हैं तब करुणा का वातावरण साकार हो उठता है तथा स्पष्ट हो जाता है कि कवि विरोप्राभाम के द्वारा अपने ‘कथ्य’ में और अधिक उक्ति-वैचित्र्य ला रहा है।

वर्ण-मैत्री—

कवि ने काव्य को कर्ण-प्रिय एवं सुस्वचिपूर्ण बनाने के लिए स्थान-स्थान पर वर्णमैत्री का अत्यन्त सुन्दर प्रयोग किया है। इस वर्ण-मैत्री में स्वर-मैत्री, व्यञ्जन-मैत्री एवं भाव-मैत्री का विधान आता है। कवि प्रायः इन मैत्रियों को बड़े ही पटुता से निभाता चलता है। कविता में उच्चारण की मधुरता, श्रवण-मनोहरता, सरसता एवं प्रभावोत्पादकता उत्पन्न करने के लिये वर्ण-मैत्री पर विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है। इसी कारण त्रिपाठी जी—चन्द्र-चुम्बन, सुषमा-सौन्दर्य, सौन्दर्य-स्त्रोत, तरल-तरंगित, स्वर्ण-सुमन, सरित-सलित, प्रकृति-प्रति, वेदना व्यथित, विरह-विताण्डित, समुद्र-समीरण, कोकिल-कण्ठा, स्वर्ण-कर्ण, विराव-विहीन, साधु-सयमी, विरह-व्यधि, कीर्ति-कथन जैसे प्रयोगों द्वारा, त्रिपाठीजी के खड़ीबोली काव्य में निश्चय ही मार्दव आ गया है।^३

१. एक दिवस अति मुदित-उदधि के बीच-विचुम्बित तीरे।^४

२. एक पथिक स्वच्छन्द समुद्र-समीरण का अनुरागी।^५

३. प्रेम-रहस्य जान सकते हैं, केवल विरह-व्यथित प्रेमीजन।^६

कवि ने स्थान-स्थान पर वर्ण-मैत्री में मधुरता, सरलता एवं सुकुमारता के लिये मीलित वर्णों को उन्मीलित एवं कर्कश शब्दों की कर्कशता को दूर करने के लिये वर्ण-चयन को चारुत्वपूर्ण ढंग से सुकुमारता प्रदान की है, इसी कारण कई

१. ‘काव्य में अर्थग्रहण मात्र में काम नहीं चलता, बिम्बग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिम्बग्रहण, निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।’

चिन्तामणि कविता क्या है, पृ० १४५—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

२. मानसी, पृ० १५—प० रामनरेश त्रिपाठी

३. स्वप्नों के चित्र—अपनी कहानी, पृ २ ”

४. पथिक, ”

५. वही, ”

६. स्वप्न पृ० ५२ ”

ब्द बड़े ही हृदयग्राही बन गये हैं। यथा—परमारथ, पूरण, सद्गुण, प्रन, छीन, रर, सत्रारथ, सनेह, पयार, परचार आदि तद्भव प्रयोग दृष्टिगोचर होते हैं।

दो एक स्थलो पर कवि ने स्वच्छन्दता का प्रदर्शन करते हुये शब्द-सन्धि रने में शब्द-निर्माण की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का आभास दिया है। इन प्रयोगों पर डॉ० आशा गुप्ता ने भाषा की दृष्टि से असयत प्रयोग का दोष लगाया है, लेकिन वास्तव ऐसा नहीं है। कारण, जब उनकी कल्पना भावों की रसाल डाल में झूला डालकर गें भरती है तो स्वच्छन्द स्वर की साधना के कारण इस प्रकार के प्रयोग बड़े ही हज है, जिन्हें अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता है। स्वयं त्रिपाठी जी कविता में अब को अतिशय प्रधानता देते हैं। उन्हीं के शब्दों में “भाषा तो शरीर-मात्र है, ण तो भाव है।”^१ वे भाव की सदैव रक्षा सचेष्ट होकर करते हैं, इसी कारण इस प्रकार के प्रयोग आ गये हैं।

१. खड़े चतुर्दिके शान्ति-भाव से लतिका लिंगितद्रुम है।^२

२. कुम्हलाये पौधो मे फिर से चेतनता वितरूंगा।^३

३. कुठ-कुछ होने लगी युवक की मूर्च्छा अन्तर्ध्वनि।^४

४. पर प्रेम-पागलिनी, विजया भरती आह उसास।^५

नाद-सौन्दर्य या ध्वन्यात्मकता—वर्ण-मैत्री का विकसित रूप नाद-सौन्दर्य या वन्यात्मकता के नाम से प्रख्यात है।^६ इसके द्वारा शब्दों की ऐसी योजना की जाती, जिससे किसी पदार्थ या व्यापार की विशेष क्रिया स्वयं ध्वनित हो। अग्रेजी में से ओनोमोटोपोइया (ध्वन्यर्थ-व्यञ्जना) कहते हैं। त्रिपाठी जी में यत्र-तत्र इसके दाहरण मिलते हैं। यथा—

१. गिरता उठता फेन बहाता,
करता अति कोलाहल हर-हर।^७

२. विजया हुई विरह से व्याकुल,
श्रान्त क्लान्त उद्भ्रान्त।^८

. स्वप्नों के चित्र—अपनी कहानी, पृ० २—५० रामनरेश त्रिपाठी

. पथिक, ”

. वही, ”

. मिलन, ”

. वही, ”

. “भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है, यह विश्व के हृत्तन्त्री की झकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है।”

पल्लव, पृ० १६—सुमित्रानन्दन पन्त

. स्वप्न, पृ० १७—५० रामनरेश त्रिपाठी

. मिलन, पृ० २८ ”

३. बंजुल-मंजुल सदा सुसज्जित मंजित छदन-विसर से ।
अलिकुल आकुल वकुल मकुल संकुल व्याकुल नभचर से ॥
४. बहुता है अविराम निरन्तर कल-कल स्वर से नाला । (पथिक)

लाक्षणिकता एवं व्यंजनात्मकता—

त्रिपाठी जी ने यत्र-तत्र भावों की गहनता, कलात्मकता एवं चमत्कार प्रदर्शन के लिये लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक शब्दों का भी प्रयोग किया है, वैसे तो सर्वत्र अभिधा को ही प्रधानता दी है। लाक्षणिक-प्रयोगों से भी वे बचते नहीं हैं। स्वयं त्रिपाठी जी लिखते हैं, “प्रसाद-गुण से रहित काव्य को काव्य कहना ही न चाहिये।”^१ एक स्थान पर वे लिखते हैं, “बहुत बड़ी बात को थोड़े में कहना कविता का प्रधान गुण होना चाहिए”.....आनन्द तब मिलता है जब सुनना कम पड़े तथा विचारना अधिक। इसीलिये पते की बात को थोड़े में ही कह देने से कविता में प्राण आ जाता है।”^२ इस प्राण-शक्ति को लाक्षणिकता ही उद्बुद्ध कर सकती है। व्यंजनात्मकता अर्थ-ग्रहण तो कराती ही है, बिम्ब-ग्रहण कराकर पाठक के भाव-जगत् की वीणा के तारों को झंकृत कर देती है—लाक्षणिकता का उदाहरण—

१. विद्युत्-सी खिलखिला पड़ी वह,

हाय भूलता नहीं एक पल।^३

२. उसी समय कमनीय एक स्वर्गीय किरण-सी बामा।^४

‘खिलखिलाना’ शब्द अपनी व्यंजनात्मकता के साथ ही भाव नक्षित-बिम्ब को भी लाक्षणिक वैचित्र्य के साथ उभारता है। त्रिपाठी जी की भाषा की विशेषता है कि उसमें यत्र-तत्र प्रवाहमयता, प्राञ्जलता देखते ही बनती है। कोमल शब्दों का वे ऐसा जुटाव करते हैं कि शब्द अपनी मृदुता के कारण बड़े ही सुन्दर बन जाते हैं। उदाहरणार्थ—

१. सरस किमल निरलस कलरवमय।^५

२. तरल तरंगित सरित-सलिल में उसकी प्रभा ललाम।^६

३. तब कोकिल कण्ठी प्रियतम मनमोहन कला प्रवीणा।

बिरहगीत से लगी जगाने बजा मजु स्वर वीणा ॥

×

×

×

१. कविता-कौमुदी—भाग १, पृ० ३—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ३—भाग १

३. स्वप्न, ”

४. पथिक, पृ० १

५. स्वप्न,

६. मिलन,

”

”

”

”

”

मृगमाला-विहरित कल कोकिल कूजित कुसमित जनको
ललित लहलही लता लसित अलिमुखरित कुज भुवन को ॥^१

अनुप्रासों की छटा से कवि ने भाषा में प्रवाह्यमयता एवं संगीतात्मकता उत्पन्न कर दिया है।

लोकोक्ति एवं मुहावरे—

त्रिपाठी जी लोकोक्ति एवं मुहावरे के प्रयोग में बड़े सिद्धहस्त हैं। द्विवेदी-युग के कवियों से लोकोक्ति तथा मुहावरो के विषय में तुलना करने में हरिऔध जी का नाम अग्रणीय है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'बोल-चाल' नाम का एक ग्रन्थ लिखा है। उसमें जितने मुहावरे प्रयुक्त कर सकते थे, किये हैं। परिणामस्वरूप वहाँ पर अति के कारण साहित्यिकता नष्ट होकर सामान्यता का आगमन हो गया है। लेकिन, त्रिपाठी जी की यह विशेषता है कि वे इनके प्रयोग द्वारा भाषा की शक्ति का सम्बर्द्धन किया करते हैं, उनकी लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे भाषा में चार चाँद लगा देते हैं। लोकोक्तियों एवं मुहावरो के कारण कोई भी भाषा अत्यन्त सरस, सशक्त एवं प्राणवान बन जाती है। उसमें भावाभिव्यञ्जना की एक अद्भुत क्षमता आ जाती है एवं वह अर्थ गाम्भीर्य एवं उक्ति-सौष्ठव से पूर्ण होकर श्रोताओं के हृदय को आह्लादकारिणी प्रतीत होती है। त्रिपाठी जी इस विषय में अत्यन्त सचेष्ट कलाकार हैं, इसी कारण वे 'हिन्दी कविता के नवीन विषय' नामक लेख में लिखते हैं, "भाषा ऐसी बामुहावरेदार और सरल हो कि साधारण पढ़े-लिखे लोग भी कवि का भाव समझ ले।" यही पर उन्होंने भाषा की प्रसाद-गुण सम्पन्नता के साथ हरिऔध जी की तरह मुहावरो एवं लोकोक्तियों को स्थान देने पर बल दिया गया है। "मुहावरे भाषा के प्राण हैं, मुहावरो का ठीक प्रयोग न जानने वाला न अच्छी भाषा बोल सकता है न लिख सकता है।"^२ वास्तव में उन्होंने अपनी कृतियों में इसी कथन को सर्वत्र ध्यान में रखा है। उदाहरणार्थ—

१. अन्धे को बाँख मिलना—अन्धे को दृग महारक को बिद्व सम्पदा सारी।
२. दीवानी हो जाना—दीवानी बन फिरती है मैं प्रेम मगन वन-वन में।
३. माया मोह त्यागना—ममतारहित पथिक-सा घरतज तुम चुपचाप सिधारे।
४. पाप का घर ससार है—यह ससार अपार पाप का बृहत् कारखाना है।
५. कौड़ी के मोल हीरा बेचना—हीरा-सा जीवन ले क्यों कौड़ी के मोल बिकाऊँ?

१. पथिक, पृ० २८—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. कविता-कौमुदी—भाग ३, पृ० ५२ ,,

६. प्रेम में अपना-पराया नहीं होता—होता नहीं विचार प्रेम के शासन में निज-पर का ।
 ७. जुये में सब कुछ हारना —ये आते विकल निरीह जुये मे मानो सब कुछ हारे ।
 ८. गाल बजाना—कुछ है बाह-बाह के प्रेमी निर्भय गाल बजाते ।
 ९. अपने द्वारा अपने पर अत्याचार—अपने ही हाथों अपने को मार-मार मरते है ।
 १०. पराधीनता दुःख का कारण है—पराधीनता से बढ़ जग मे नही दूसरा दुःख है ।
 ११. बाट जोहना—हार गई मैं बाट जोहती आये नाथ न मेरे ।
 १२. ससार स्वार्थी है—मतलब की दुनिया है देखो मैं रह गई अकेली ।
 १३. एक पथ दो काज—ईश्वर भक्ति लोक-सेवा है एक अर्थ दो नाम ।
 १४. प्रेम ही जीवन है—यो ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन ।
 १५. दो तन एक मन होना—दो तन थे पर दोनों के हुए एक मन प्राण ।
 १६. गाज गिरना—हाय-हाय इस अधम स्वार्थ पर पड़ी न अब तक गाज ।
 १७. मन मसोस कर रह जाना—आ जाती है दृग के आगे रह जाता है मन मसोस कर ।
 १८. तीर तरह निकल जाना—निकल जायेगा तीर की तरह पछताओगे तब मन ही मन ।
 १९. दूध की लज्जा रखना—मैंने कहा दूध की मेरे लज्जा रखना रण मे हे सुत !
 २०. मदारी के सकेत पर नाचना—मेरी सब गति विधि निर्भर है जैसे की मदारी के कर ।
 २१. मन की कली खिलना—सुनकर पथिक प्रतीक्षक की द्रुत कली खिल उठी जी की ।
 २२. कौड़ी को मुहताज—किया जिन्होंने स्वर्णभूमि को कौड़ी को मुहताज ।
 २३. फूला न समाना—फूले नहीं समाते थे तुम हे मेरे दुःख हन्ती ।
- फिर भी मुहावरों में लाक्षणिक वैचित्र्य की कमी के कारण लाक्षणिक चमत्कार अधिकतर भाषा को ग्राह्य नहीं हो सके तथा उक्ति-विशेष में जो काव्यस्व उत्पन्न होना चाहिए था, वह नहीं आ सका है ।

उर्दू के शब्द—

तत्सम भाषा में उर्दू का प्रयोग अजीब-सा लगता है । कभी-कभी तो वह मिश्री

में कंकड़ी का काम करता है, परन्तु कभी-कभी भाषा में शक्ति भी देता है। यद्यपि हिन्दी से उसकी आत्मजा उर्दू के शब्दों को निकालना कठिन है, किन्तु एक सचेष्ट कलाकार तत्सम संस्कृत पदावली के मध्य इन शब्दों को स्थान देना उचित नहीं समझता। इसी कारण डॉ० आशा गुप्ता का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है। इस दृष्टि से त्रिपाठी जी की रचनाये पर्याप्त दोषपूर्ण हैं।

१. गुल को हँसा, रुला बुल-बुल को छेड़ लता मण्डल को ।^१

२. सुस्त दुःख से थोड़ी आमद में कट जाता है काल ।

३. ऊँचे स्वर से हुक्म निरकुश उसने बाच सुनाया ।

४. हरदम यह होसला हृदय मे प्रिये भरा रहता है ।

५. रह जाता है मन मसोस कर ।

६. किया जिन्होंने स्वर्ण-भूमि को कोड़ी को मुहताज ।

७. वे हाकिम अन्याय-समर्थक पाये गये तमाम ।

८. जो कुछ कहना था सब मैंने तुमसे कहा खुलासा ।

९. कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना ।

इसी प्रकार—यम, एहसान, दरवाजा, कत्लेआम आदि शब्द उर्दू के प्रयोग किये हैं।

देशज-शब्द—

त्रिपाठी जी एक ओर तो तत्सम संस्कृत-निष्ठ भाषा लिखते हैं, दूसरी ओर इनके काव्य में देशज शब्दों का प्रयोग बहुत है। देशज शब्द उन शब्दों को कहते हैं, जिनकी व्युत्पत्ति उपलब्ध नहीं होती है—पीढ़ाया, अठिलाठी, ठौर मीचु, सेऊंगी आदि शब्द भाषा के अविरल प्रवाह एवं प्राञ्जलता को सिद्ध करते हैं।

उदाहरणार्थ—

१. विजया आ बैठी ढिग उसके थर-थर कम्पित गात ।^२

२. लाने को निज पुण्य भूमि पर लक्ष्मी की असवारी ।

३. ताप तप्त जन यहाँ क्यों न आकर क्षण एक जुड़ाते ।

४. गिर मैदान नगर निर्जन मे एक भाव मे माती ।

५. किससे कहूँ पूछे सन्देशा पाती कहाँ पठाऊँ ।

६. ऊँचे स्वर से हुक्म निरकुश उसने बाँच सुनाया ।

७. फूट के पीछे महा आपत्ति में उलझा रहे । (हिन्दुओं की हीनता)

१. मिलन, —प० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक,

ऐसी साफ भाषा में ढिग, असावरी, बूढ़, जुटाते, माती, पाती, पठाऊँ, वाँचना, नरुमा आदि शब्दों का प्रयोग बेघड़क होकर किया है। नीचे के एक उदाहरण में पंजाबी भाषा का ठेठ उदाहरण देखिये—

‘रही उड़ीक द्वारा पर मैं हूँ अन्त घड़ी जीवन की’

पंजाबी में उड़ीक का अर्थ ‘प्रतीक्षा’ होता है। हिन्दी भाषा में यह सर्वथा अप्रचलित शब्द है। त्रिपाठी जी ने अप्रचलित शब्दों के प्रयोग भी किये हैं—

१. आँखें विष में बूढ़ रही-सी, थी जल-हीन सजल हो’

यहाँ पर ‘विष’ शब्द अश्रुजल का अर्थ देता है। केशवदास ने अवश्य ऐसे अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया था, ‘विषपाइयो’ आदि। लेकिन खड़ी-बोली में इस प्रकार के प्रयोग अत्यल्प मिलते हैं। देशज शब्दों के साथ-साथ एकाध स्थलो पर ‘चुचके-पुचके गाल’ ऐसे प्रयोग भी आये हैं। चुचुकना का अर्थ है, सूखकर अकड़ जाना। त्रिपाठी जी ने उसीके साथ पुचके भी बना लिया। विजया का गाँव-गाँव घूमकर दीनहीन लोगों की दशा को देखकर दयाद्रं होना वर्णित है, किन्तु यह ‘चुचका-पुचका’ तो बड़ा ही बचकाना प्रयोग है, जो स्वयं ही हास्य को उत्पन्न करता है।

तद्भव शब्द—

त्रिपाठी जी की भाषा में तद्भव शब्द अल्प एवं तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। भाषा की कोमलता, सरसता, मृदुलता एवं सुकुमारता की रक्षा के लिए ही कवि ने तत्सम शब्दों को तद्भव रूप प्रदान किया है। इसी कारण परमार्थ का परमार्थ प्रचार का परचार, पूर्ण का पूरण उन्हे करना पड़ता है। ‘ण’ वर्ण की कठोरता को हटाने के लिए इन्होंने ‘न’ शब्द को अपनाया है। यथा—प्रण का प्रन, प्राण का प्रान आदि प्रयोग इसके समर्थक हैं। भाषा के इन प्रयोगों ने भाषा में शक्ति प्रदान की है।

प्रत्यय-प्रयोग—

भाषा को सुष्ठु एवं भास्वर बनाने के लिए कुशल कवि प्रत्यय लगाया करते हैं। इन प्रत्ययों से भाषा में मोहकता एवं आकर्षण तत्त्व का आधिक्य हो जाता है—युग के प्रभाववश त्रिपाठी जी ने इस प्रकार के प्रचुर प्रयोग भाषा में किये हैं। यथा—परिदर्शन, विमोहन, प्रकम्पित, विनिन्दित, विभासित, विलोचन, विबुम्बित, विताड़ित, प्रलम्ब-परिपोषण आदि शब्द।

भाषा-गत पदुता—

त्रिपाठी जी की भाषा स्वच्छ, उत्कृष्ट एवं सुबोध है। भाषा में सरलता, सरसता, सादृश्य, स्वाभाविकता, सुकुमारता, मनोरमता आदि का ध्यान सदैव

रखा गया है ।^१ उनकी भाषा में चित्रणशक्ति अद्भुत है । सरल भाषा एवं संस्कृत प्रधान भाषा दोनों पर उनको समानाधिकार है—

सरल-भाषा—

१. हम प्राण होम देगे, हँसते हुये जलेंगे ।
हर एक साँस पर हम, आगे बढे चलेंगे ॥
जब तक पहुँच न लेगे, तब तक न साँस लेंगे ।
वह लक्ष्य सामने है, पीछे नहीं टलेंगे ॥
२. “हे प्रभो आनन्द दाता, ज्ञान हमको दीजिये ।
शीघ्र सारे दुर्गुणों से, दूर हमको कीजिये ॥”^२

संस्कृत-प्रधान तत्सम भाषा—

मध्वनिशा, निर्मल, निरभ्र नभ, दिशा विराग-विहीना ।
विलसित था अम्बर के डर पर अद्भुत एक नगीना ॥
उसकी विशदप्रभा सर निर्भर तृण लतिका द्रुमदल में ।
करती थी विश्राम, परम अभिराम निशीथ कमल में ॥^३

इन रचनाओं की वाक्य-योजना सरल एवं प्रसादपूर्ण हैं ।^४ इनमें सामान्यतया लिङ्ग, वचन, क्रिया, विभक्ति अथवा दूरान्वय न्यून पदत्व दोष आदि नहीं मिलते हैं ।^५

१. “उनकी भाषा परिमार्जित और सुन्दर है । खड़ीबोली का विशेष आदर्श न उपस्थित होने पर भी उन्होंने उसकी रचना करने में जितनी सफलता लाभ की है, वह कम नहीं । रचनाये भावमयी हैं एवं उनमें आकर्षण और मार्मिकता भी है ।”

हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० ४२३

—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔष

२. स्वदेश गीत—लेखक—पं० राम नरेश त्रिपाठी
३. पथिक, पृ० ६
४. “आपकी कविता प्रसाद-गुण लिये होती है, जिसकी संस्कृत पदावली का सौन्दर्य देखते ही बनता है ।”
आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ० ५५—लेखक विजयेन्द्र स्नातक, क्षेमचन्द्र सुमन
५. “त्रिपाठी जी की कविता की भाषा शुद्ध खड़ीबोली है । अधिकांशतः वह प्रसाद-गुण-पूर्ण, सरल और सरस है । उसमें नित्यप्रति व्यवहार में आने वाले शब्दों का ही प्राधान्य है ।”

कवि—समीक्षा, पृ० २००—प्रो० स्वामबाबू वर्मा

कि रसात्मक काव्य के लिए लक्षणा, व्यञ्जना शक्तियाँ अनिवार्य नहीं हैं, अभिधा-शक्ति द्वारा भी उत्तम काव्य की रचना की जा सकती है।

देख प्रकृति का कोप भयानक बोला प्रणयी वीर।

प्रिये ! हमें अब तजना होगा यह क्षणभंगुर शरीर ॥

देह त्यागने का है मुझको प्रिये न तिल भर खेद।

जागृति और स्वप्न-सा मरने-जीने मे है भेद ॥

यहाँ कवि का वाक्य-विन्यास सरल एव सीधा-सादा है। साधारण शब्द योजना एव वाक्यार्थ से ही कवि ने नेत्रों के समक्ष एक चित्र प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त की है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इनके काव्य में लक्षणा, व्यञ्जना का प्रयोग हुआ ही नहीं, यत्र-तत्र इनके प्रयोग कवि के अभिव्यञ्जना शिल्प को सुन्दर बनाते हैं।

१. प्रयोजनवती लक्षण-लक्षणा—

मुख्यार्थ के त्याग में लक्षण-लक्षणा कार्य करती है—

दिया निकाल देश सीमा से बाहर बड़े जतन से।

उस बबूल तरु को उखाड़ कर फेका नन्दन वन से ॥

यहाँ कवि ने 'बबूल तरु' नृशंस क्रूर राजा का और 'नन्दन वन' पवित्र भारत भूमि का प्रतीक है। समस्त लाक्षणिक होने से काव्यगत लक्षणा है।

२. प्रयोजनवती उपादान मूला-शुद्धा लक्षणा—

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर-घर में।

मांस नहीं है निरी सांस है शेष अस्थि पजर में ॥

क्रोधित शासन को जोको ने विघ्न निरन्तर डाले।

पर उसके अदम्य साहस ने सब दुःख सकट टाले ॥^१

३. प्रयोजनवती सारोपा गौणी लक्षणा—

मुनि के सच्चे वचन पथिक के प्रेम विशुद्ध हृदय में,

सपदि हुये अकुरित पल्लवित प्रधित अल्प समय में।

(रूपक-व्यंग्य है)

४. प्रयोजनवती उपादान मूला गौणी लक्षणा—

जो स्वदेश के लिए अनल में सुख से जल सकता है।

वह निन्दा स्तुति राग-द्वेष से पथ न विचल सकता है।

१. पथिक—प० रामनरेश त्रिपाठी

५. प्रयोजनवती जहत्स्वार्था लक्षण-लक्षणा—

शिक्षा और सुशासन के उस विषम मरुस्थल में वे भी ।

है कुछ विकसित सुमन किसी विविध जीवित निर्जल में भी ॥

देश प्रेम से पूरित प्लावित उनका उच्च हृदय है ।

देश-जाति हित के सन्मुख उनको न मृत्यु का भय है ॥

‘विकसित सुमन’ से सुशिक्षित विद्वान् का अर्थ उन्हें अभिप्रेत है, अतः प्रयोजनवती है । ‘विकसित सुमन’ ने मुख्यार्थ का सर्वथा परित्याग कर दिया है । अतः यहाँ लक्षणा है ।

६. प्रयोजनवती अजहत्स्वार्था गौणी लक्षणा—

चन्द्र चूम लूँ बोला मन में जैसे ही आनन्द,

आकर लगा तुरत ओठों से मधुर सुधाधर चन्द्र ।^१

यहाँ पर विजया के मुख पर—सुधाधर चन्द्र का आरोप है, सौन्दर्य में गुण समानता है, अतः गौणी है । उपमेय का सर्वथा निवारण हो जाने से साध्य बसाना है । ‘मधुर सुधाधर चन्द्र’ में लक्षणा होने से पद आता है ।^२

काव्य-गुण—

इनको रस का घर्म कहा गया है । विभिन्न रसों का आस्वादन करते समय चित्त के भाव भी भिन्न हो जाते हैं । जैसे शृंगार-रस के वर्णन से चित्त में माधुर्य का संचार होता है । वीर-रस के वर्णन द्वारा ओज की दीप्ति फैल जाती है । यह ओज, माधुर्य आदि ही गुण कहलाते हैं । यद्यपि काव्य में गुणों की संख्या के विषय में बड़ा मतभेद है । व्यासजी उन्नीस गुण मानते हैं तो भरत मुनि दस । दण्डी ने गुणों की संख्या दस मानी है । वामन ने दस शब्द गुण, दस अर्थ गुण मानकर उनकी संख्या बीस कर दी और भोजराज ने चौबीस गुणों का निरूपण किया । अलङ्कार सम्प्रदाय के नायक भामह ने ओज, प्रसाद, माधुर्य तीन-गुणों को माना एव मम्मट ने भी तीन गुणों का प्रयोग ही उचित समझा । अधुना उक्त तीन गुणों को ही प्रधानता दी जाती है, लेकिन पं० रामदहिन मिश्र का कथन है, “यद्यपि आचार्यों ने प्रधानतया तीन ही गुण माने हैं, पर आधुनिक रचना पर दृष्टिपात करने से कुछ अन्यान्य गुणों का मानना आवश्यक प्रतीत होता है । आजकल ऐसी अधिकांश रचनाएँ दीख पड़ती हैं, जिनमें न तो प्रसाद-गुण है और न ओजगुण । इसके विपरीत उसके अनेक रूप

१. मिलन, पृ० ५४—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. खड़ीबोली में अभिव्यजना, पृ० ४१०—डॉ० आशा गुप्ता

दीख पड़ते हैं।^१ परन्तु तीन गुणों को ही महत्त्व मिला अन्य किसी गुण को प्रमुखता नहीं दी गई। इसके अतिरिक्त बाबू गुलाबराय का मत है, “मम्मट ने इन दशों को, माधुर्य, ओज, प्रसार, इन तीन गुणों के ही भीतर लाने का प्रयत्न किया है।”^२ गुणों को तीन मानने का कारण एक यह भी है कि चित्त की तीन ही वृत्तियाँ हैं, कोमल, कठोर तथा मिश्रित। इस कारण भी तीन गुण मानना ही उचित है। प्रसाद से चित्त को स्फीति, ओज से दीप्ति एवं माधुर्य से द्रवणता आती है। माधुर्य में चित्त द्रवित हो पिघल कर प्रसन्न हो जाता है।

यदि त्रिपाठी जी के काव्य पर दृष्टिपात करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि त्रिपाठी जी प्रसाद गुण को बहुत आदर देते हैं। इसी कारण वे लिखते हैं, “प्रसाद गुणसे रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिए।”^३ लेकिन उनकी कृतियों में रस एवं भावानुरूप शब्द-चयन होने के कारण कतिपय स्थलों पर माधुर्य एवं ओज का भी विधान हुआ है। भाषा तरल, सरल एवं प्रवाहपूर्ण है अतः रचनाएँ प्रसादगुण पूर्ण हैं। सयोग शृंगार, करुण एवं वियोग आदि भावों की अभिव्यक्ति के लिए कोमल कान्त पदावली का प्रयोग हुआ है, जहाँ भावनाओं में सघर्ष, विद्रोह, उत्साह आदि का प्रतिपादन है, वहाँ भाषा में स्वतः ही पौरुष की दीप्ति का आगमन हो गया है।

प्रसाद-गुण—

एक दिन मोहन प्रभात ही पधारे उन्हें,
देख फूल उठे हाथ पाँव उपवन के।
खोल-खोल द्वार फूल घर से निकल आये,
देख के लुटायें निज कोष सुवरन के ॥
बैसी छवि और कही दूँढ़ने सुगन्ध उड़ी,
पायी न लजा के रही बाहर भवन के।
मारे अचरज के खुले थे सो खुले ही रहे,
तब से मुँदे न मुख चकित सुमन के ॥^४

माधुर्य-गुण—

यद्यपि प्रसाद-गुण की काव्य में प्रधानता है, तथापि माधुर्य को भी वे भावानुसार पर्याप्त आदर देते हैं।

१. काव्य-दर्पण, पृ० ४०६—रामदहिन मिश्र
२. ‘सिद्धान्त और अध्ययन’—भाग १, पृ० १६४
३. ‘कविता-कौमुदी’—भाग १, पृ० ३
४. ‘मानसी’ से

१. चन्द्र कुण्डली-सा बलवित कर,
रमणी कण्ठ ललाम ।
चिबुक प्रस्फुटोन्मुख गुलाब घर,
चूम माल अभिराम ॥^१
२. कोमल मलय पवन घर-घर में सुरभि बाँट आता है ।
सस्य सीचने घन जीवन धारण कर नित आता है ॥^२

ओज गुण—

त्रिपाठी जी ने 'पथिक' के चतुर्थ सर्ग में ओज-गुण का अच्छा प्रदर्शन किया है । देश-सेवी 'पथिक' का नाम आते ही निरकुश अत्याचारी का दृश्य । यथा—

पथिक नाम की सुधि आते ही परम क्रोध चढ आया ।

दृग विस्फारित नाम प्रस्वासित हुई प्रकम्पित काया ॥

अक्षर लगे निकलने मुख से मानो ज्वलित अगारे ।

देखे प्रजा पापिनी क्रोधानल की भभक हमारे ॥^३

उक्त पंक्तियों में परुष पदावली युक्त ऐसी रचना की गई है, जिसे पढ़कर अथवा सुनकर चित्त में स्फूर्ति आ जाती है । दीप्ति जाग्रत् हो आज्ञेग उमड़ आता है, अतः यहाँ ओजगुण विद्यमान है ।

रीतियों में त्रिपाठी जी ने भाषा में वैदर्भी रीति को ही आदर दिया है, यद्यपि यत्र-तत्र गोड़ी एवं पाञ्चाली का भी प्रयोग बढ़ा ही सुन्दर है ।

शैली—

त्रिपाठी जी ने तीन प्रकार की शैलियों को अपनाया है—सरल सरस-शैली, अलंकृत-शैली, तीसरी समास-शैली । उन्होंने अपने काव्य में यद्यपि सरल शैली का ही सर्वाधिक प्रयोग किया है, तथापि उनके खण्ड-काव्यों में अलंकृत-शैली एवं समास-शैली के भी उदाहरण मिल जाते हैं । उन्होंने शैली के प्रयोग में स्वच्छन्दता का पालन किया है ।

सरल-शैली—

तूने दिये अनेको अवसर न मिल सका मैं ।

तू कर्म में मगन था, मैं व्यस्त था कथन में ॥

तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था ।

पर तू फसा हुआ था फरहाद कोहकन में ॥

१. मिलन, पृ० १२—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. पथिक, पृ० २८

३. वही,

”

”

क्रीसस की 'हाय' में था करता विनोद तू ही ।

तू ही विहँस रहा था महमूद के सदन में ॥^१

अलंकृत-शैली—

कुमुद बन्धु की मुदित कौमुदी भूपर उतर गगन से ।

सोयी थी सिकता समूह पर परम अचिन्तित मन से ॥

समास-शैली—

१. पर-पद-दलित पर-मुखापेक्षी,
पराधीन परतन्त्र पराजित ।
होकर कही आर्य जीते है,
पामर, पशुसम-पतित पराजित ॥

२. राग-रथी रविराग पथी अविराम विनोद बसेरा ।
प्रकृति भवन के सब विभवों से सुन्दर सरस सवेरा ॥

शब्दानुप्रास—

भाषा को मधुरता एवं कोमलता प्रदान करने के साथ-साथ कवि ने शब्दानु-प्रासो का प्रयोग बड़ी चतुरता से किया है । अनुप्रास यमक श्लेष आदि के प्रयोग से भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को पुष्ट एवं प्राञ्जल बनाया है ।

अनुप्रास—

मृगमाला विहरित कल कोकिल कूजित कुसमित जन को ।

ललित लहलही लता लसित अलि मुखरित कुंज भुवन को ॥

श्लेष—

आँखें विष में बूढ़ रही-सी थी जलहीन सजल हो ।

इस प्रकार शब्दालंकारों द्वारा भी भाषा की प्रेषणीयता में वृद्धि हुई है । भाषा में शक्तिमत्ता के साथ-साथ गभीर भावों के अभिव्यक्ति की क्षमता से भी इस शक्ति का विकास हुआ है ।

भाषा का स्वरूप—

इनकी भाषा संस्कृत निष्ठ तत्सम खड़ीबोली है, जिसमें यत्र-तत्र तद्भव पदावली का भी आगमन हो गया है । देशज एवं उर्दू शब्दों को भी उन्होंने अपनाया है । साथ ही लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग उसमें चार चाँद लगा देता है । भाषा सरस, सरल, तरल, स्वाभाविक, प्रभावोत्पादक है । प्रभविष्णुता के गुण से पूर्ण प्राञ्जल, परिमार्जित, सुकुमार, सुमुधुर एवं व्यवहारोपयोगी है, जो व्याकरण की अशुद्धियों से मुक्त है । डॉ० रामकुमार वर्मा लिखते हैं—“त्रिपाठी जी की कविता

सरल, स्पष्ट और व्याकरण के आदेशानुसार है। क्रियारूप कभी छूटने नहीं पाये हैं और इसीलिये उनके भाव सदैव स्पष्ट पाये जाते हैं।^१ इसी कारण डॉ० आशा गुप्ता लिखती हैं—“कवि ने सुन्दर शब्द-प्रयोगों द्वारा लालित्य एव सुगठित वाक्य-विन्यास की सहायता से भाषा में लाघव एवं कसावट का सन्निवेश किया है।”^२ वास्तव में अपनी भाषा-शैली के कारण ही वे द्विवेदी-युग के कवियों में विशिष्ट स्थान रखते हैं। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में, “पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम भी खड़ीबोली के कवियों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। भाषा की सफाई एवं कविता के प्रसाद-गुण पर उनका बहुत जोर रहता है।”^३ हाँ, लक्षणा, व्यञ्जना आदि शब्द-शक्तियों की दृष्टि से उनमें कोई उल्लेखनीय सौष्ठव नहीं मिलता। अतएव यह कहना अत्युक्ति न होगी कि समृद्ध काव्य-शैली के प्रारम्भिक विकास में त्रिपाठी जी की रचनाओं का पर्याप्त योगदान है। इस प्रकार उनको खड़ीबोली की प्रयोग कालीन शैली का निर्माता कह सकते हैं, जिसका पूर्ण विकास छायावादी शैली में आगे चलकर हुआ। आधुनिक खड़ीबोली हिन्दी कविता के भाषा सस्कारों, निर्माताओं और विधायकों में त्रिपाठी जी का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। उनकी भाषा ललित एव जनप्रिय होने के कारण ही पाठकों को वश में कर लेती है। भाषा की सरलता के कारण ही इनके काव्य जनता को बहुत समय तक मोहित करते रहे हैं। पक्ति-पक्ति में भाषा की स्वच्छता अपनी झलक दिखाती है। खड़ीबोली के शैशव में श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी की भाषा-शैली का युगीन महत्त्व है। भावों की प्रबलता तथा अभिव्यक्ति कौशल की स्वच्छता के कारण ही इन कवियों का बड़ा मान रहा है। रामधारीसिंह दिनकर ने इन कवियों से प्रभावित होकर स्पष्ट कहा कि “अभिव्यक्ति की सफाई मैं वञ्च चाहता था जो मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी में निखरी थी।”^४ इन कवियों ने पाठकों को हिन्दी भाषा की ओर आकृष्ट किया एव भाषा के कारण ही भारत-भारती तथा पथिक जनता का कण्ठहार बना रहा है।^५ वास्तव में त्रिपाठी जी की अभिव्यक्ति-क्षमता का अपना गौरव एव युगीन महत्त्व है।

१. आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० ७४—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा

२. खड़ीबोली काव्य में अभिव्यञ्जना, पृ० ४२१—डॉ० आशा गुप्ता

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७०४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

४. काव्य की भूमिका, पृ० ५०—रामधारीसिंह ‘दिनकर’

५. “उस युग की कविता कही तो इतिवृत्तात्मक हो जाती है, किन्तु मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी तथा रामचरित उपाध्याय और नाथूराम शर्मा को जितने पाठक मिले, उतने पाठक छायावादी काव्य को न मिल सके। साकेत, यशोधरा, जयद्रथ-वध और पथिक तथा स्वप्न तो आज भी पढ़े जाते हैं।”

काव्य की भूमिका, पृ० ४७—रामधारी सिंह ‘दिनकर’

अप्रस्तुत विधान

श्रेष्ठ कवि अलकारो का प्रयोग साधन रूप में करते हैं, साध्य रूप में नहीं। अलकार काव्य के शोभाकारक धर्म को कहते हैं।^१ अलकारो का प्रयोग अकृत्रिम रूप से जब कभी किया जाता है, तब वे भाव एवं भाषा का परिष्करण करते हैं। जब कवि सप्रयास उनका प्रयोग बलपूर्वक करता है तो वे कोमल-कान्त-कमनीय वाणी पर भार हो आते हैं तथा भाषा के सौंदर्य को नष्ट करते हैं। अलकार सौन्दर्य की श्रीवृद्धि कर सकते हैं, शोभा का निर्माण नहीं। अलकारो का प्रयोग, अभिव्यक्ति की स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता, प्रेषणीयता तथा भाषागत सहज सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए किया जाता है।^२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी कारण, “भावो का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप-गुण-क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में, कभी-कभी प्रयुक्त होने वाली उक्ति ही अलकार है।”^३ अलकारो की काव्य में उपयुक्तता पर विचार करते हुये प्रकृति के सबसे सुकुमार कवि, कवियों में सौम्यसन्त श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा, “अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं।” “जहाँ भाषा की जाली केवल अलकारो के चौखटे में फिट करने के लिए बुनी जाती है, वहाँ भावो की उदारता, शब्दों की कृपण जड़ता में बंधकर सेनापति के ‘दाता और सूम की तरह’ इक्सार हो जाती है।”^४

त्रिपाठी जी ने काव्य में अलंकारो का प्रयोग बड़े सहज रूप में किया है। वे भावाभिव्यक्ति के सहायक साधन रहे हैं। उन्होंने अप्रस्तुत-विधान की समर्थ योजना के द्वारा भाव एवं भाषा की व्यञ्जना-शक्ति की अभिवृद्धि कर, छायावादी अप्रस्तुत-विधान की पूर्वं झलक दिखलाई है। यों तो त्रिपाठी जी ने, सादृश्य, साधर्म्य, प्रभाव-

१. दण्डी-काव्यादर्श काव्य शोभा करान्धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते, पृ० २१-१

२. हिन्दी साहित्य कोश (स० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ६०—डॉ० विजयेन्द्र स्नातक

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

४. पल्लव (भूमिका), पृ० २८—सुमित्रानन्दन पन्त

मूलक आदि अलकारों का बड़ा सुष्ठु विधान किया है। किन्तु उन्हें उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक के प्रयोग में विशेष सफलता मिली है। उनके अलकार-विधान में सदैव उपमान प्रायः नवीन होते हैं। उपमेय के गुण, रूप एवं क्रिया-साम्य के अतिरिक्त उपमान का प्रभाव-साम्य भी बड़ा आकर्षक एवं आह्लादक है। मूर्त-प्रस्तुत के लिए अमूर्त उपमान और अमूर्त-प्रस्तुतों के लिए मूर्त उपमानों का विधान भी बाहुल्य रखता है। उपमाएँ प्रायः नवीन एवं बड़ी ही प्रभावोत्पादक होती हैं। यथा—

(१) विद्युत्-सी खिलखिला पड़ी, वह हाय भूलता नहीं एक क्षण ।^१

(२) करुण-सी मृदु धर्म गीत-सी,

शुद्ध, कल्पना-सी सुख सकुल ।

शुभ्र ऊषा-सी दिव्य हास-सी,

रूप-सिन्धु की मणि-सी मजुल ॥^२

इन उपमाओं को देखकर सुमित्रानन्दन पन्त जी की 'अविदित भावाकुल भाषा-सी, उपमा-सी, नवभावुकता-सी' की स्मृति सहसा आ जाती है। त्रिपाठी जी का आलंकारिक योजना की एक विशेषता उनके मूर्त और अमूर्त उपमान हैं, जो अगामी छायावादी अभिव्यजना शैली का पूर्वाभास देती है। यथा—

(१) सुन्दर सर है लहर मनोरथ-सी उठकर मिट जाती है ।^३

यहाँ मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान का विधान बड़ा सुन्दर है।

हुई निबिड़तम में प्रभात-वेला-सी जागृति आशा ।

देख पुष्प का उदय हुई बलवती उच्च अभिलाषा ॥^४

जड़ प्रकृति के वस्तु व्यापारों में नायक नायिका के आरोप द्वारा रूपक और उत्प्रेक्षा की सहायता से भी बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।

ठीक दो पहर व्योम मध्य रवि प्रसर समुज्ज्वल धूप ।

सरित मुकुट में देख रहे थे दिन नायक निज-रूप ॥

रूप-गविता तरंगिणी का था सब सुन्दर अंग ।

छवि छलकी पड़ती थी मानो तट पर चढ़ी तरंग ॥^५

१. स्वप्न, पृ० ३४ — ५० रामनरेश त्रिपाठी

२. वही, पृ० ३४

३. पथिक, पृ० १०

४. वही, पृ० ५

५. मिलन, पृ० १०

उत्प्रेक्षा अलंकार—

निकल रहा है जलनिधि तल पर दिनकर बिम्ब अधूरा ।
कमला के कचन मन्दिर का मानो कान्त कगूरा ॥

उपमा-रूपक (संसृष्टि)—

पकज माला-सी, प्रणयी के मृदु गल-बहियाँ डाल ।
दृगचकोर से देख चन्द्रमुख, बोली विह्वल बाल ॥

रूपक रूपकातिशयोक्ति (संसृष्टि)

सुन प्रणयी के इन्द्रवदन मे मृदुल कौमुदी हास ।
विकसित हुआ झुकाया उसने शशि को शशि के पास ॥

प्रेम का जीवन का महत्त्व बतलाने दृग्वक्त्रि ने 'उदाहरण' अलंकार की सुन्दर
नियोजना की है—

गन्ध विहीन फूल है जैसे,
चन्द्र चन्द्रिका-हीन ।
योही फीका है मनुष्य का,
जीवन प्रेम-विहीन ॥

प्रतीप—

तुमसे हुआ यशस्वी यश भी,
देख विशुद्ध चरित्र ।

दृष्टान्त अलंकार—

आते है विघ्नो के झोके बारम्बार प्रचण्ड ।
गिरते है तरु पर रहता है गिरवर अटल अखण्ड ॥

रूपकातिशयोक्ति—

मध्य निशा निर्मल निरभ्रनभ, दिशा विराग-विहीना ।
विलसित था अम्बर के उर पर अद्भुत एक नगीना ॥
उसकी विश्व-प्रभा सरनिर्झर तृण लतिका द्रुमदल मे ।
करती थी विश्राम पर अभिराम निशीथ कमल में ॥

उपमेयोपमा—

जहाँ परस्पर उपमेय एव उपमान एक-दूसरे के स्वयं उपमेय एव उपमान

मेरी सब गति विध्वि निर्भर है, जैसे कीश मदारी के कर ।^१

३. मानसी,

छन्द विधान

‘छन्द’ शब्द छद् धातु मे असुन् प्रत्यय लगाकर बना है। ‘छन्द’ धातु के विभिन्न अर्थ है।^१ यथा—आह्लादित करना, आच्छादन करना, बाँधना, फुसलाना, प्रसन्न करना आदि। परवर्तीकाल मे छन्द का सामान्य अर्थ बन्धन या आच्छादन ही लिया गया है। भारतीय वाङ्मय मे वेदाग के अन्तर्गत छन्द को वेद का एक अंग माना गया है। वेद की एक पुरुष रूप मे कल्पना की गई, पैरो को छन्द, हाथो को कल्प, नेत्रों को ज्योतिष, कानो को निरुक्त, नासिका को शिक्षा एव मुख को व्याकरण कहा गया है।^२ शरीर मे चरणो का बड़ा महत्त्व है, इसी प्रकार छन्द-रहित काव्य पगु है। भगवान् शंकर को छन्द-शास्त्र का आदिप्रवर्तक माना जाता है। उनकी ही शिष्य-परम्परा मे विगल मुनि हुए, जो आगे चलकर वैदिक एव लौकिक छन्दो के प्रणेता माने जाते है।^३

कविता एव छन्द का सम्बन्ध प्राचीनकाल से ही बड़ा घनिष्ठ रहा है। ‘भाषा’ जब लय एवं स्वर को अपने क्रीड़ मे धारण करती है, तब उसमे प्रभविष्णुता आ जाती है। जहाँ एक ओर सगीत की रुनझुन सुन पडती है, वहाँ दूसरी ओर लय, स्वर की यति से युक्त कम्पनदार भाव-लहरी उठती है। स्वर लययुक्त भावानुकूल छन्दो से, भाषा मे गति आ जाती है तथा पाठक का आकर्षण बढ जाता है, लय ही प्रत्येक छन्द का प्राण है। तन्त्री-स्वर एव लय प्रधान होती है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक छन्द आ जाता है।^४ छन्द भी कवि के अन्तर्जगत् की वह अभिव्यक्ति है,

१. छन्दति हृष्यति सन बीप्यते पा तच्छद

—पाणिनि मुनि

२. छन्दः पादो तु वेदस्य हस्तो कल्पोऽथ पठ्यते ।

ज्योतिषमयन वक्षुनिरुक्तं श्रोतमुच्यते ॥

शिक्षा ध्राणं तु वेदस्य मुख व्याकरणं स्मृतम् ।

तस्मात् सागमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते ॥ वृत्त रत्नाकर भूमिका, पृ० १

३. वृत्त रत्नाकर भूमिका, पृ० २

४. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० १०—डॉ० पुत्तलाल शुक्ल

जिस पर नियम का ढक्कन डाल दिया गया है।^१

पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र मे अरस्तू छन्द का प्रबल समर्थन करते है। उन्होंने छन्द को महत्त्व दिया एव उद्घोषित किया, “यदि कोई काव्य छन्द मे लिखा जाता है तो वह कविता बन जाता है।”^२ उसने कहा—“लयगत लय में शब्दों से पृथक् एक भिन्न प्रकार का नैतिक गुण रहता है।” काव्य मे छन्द की प्रशंसा करते हुए कालरिज ने कहा—“छन्द सामान्य मनोवेगों को ध्यान सम्बन्धी सजगता तथा सवेदनशीलता की अभिवृद्धि में सहायता करता है।”^३ एम्बरकाम्बी का मत है कि “छन्द द्वारा कवि के मानस मे उद्भूत रचनाकालीन सवेग और सवेदना का अनुभव अखण्ड एव पूर्ण-रूप में मूर्तिवत् होता है।”^४

आदिकाल से ही हिन्दी-साहित्य मे छन्द आवश्यक समझा जाता रहा है। दोहा, चौपाई, छप्पय, पद, कवित्त, सवैया आदि मे कविता होती रही; किन्तु आधुनिक काल के पाश्चात्य साहित्य का हमारे साहित्य पर व्यापक प्रभाव अधिक पड़ा है। पाश्चात्य प्रभाव से कुछ लोगों की धारणा यह भी बनी कि छन्द तो कविता के लिये छन्द बन्धन है, अतः उसे अपनाना आवश्यक नहीं है। हाँ, उन्होंने गति, यति, नियम एव एक क्रम का ध्यान सदैव रखा है। किसी न किसी रूप मे कविता के लिए छन्द की आवश्यकता बराबर समझी जाती रही है। छन्द केवल उत्तेजना, भावोद्दीपन एव प्रभविष्णुता मे ही सहायक नहीं, अपितु वह स्वयं लयाधार निश्चित करता है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का मत है, “जिस समाज मे छन्द नहीं उसमे सन्तुलन भी नहीं और उसमे अध्यात्म-भावना का अभाव हो जाता है। समूची सृष्टि में एक प्रकार की छन्दोमयी गति है।”^५ कविता मे छन्दों की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा—“कविता तथा छन्द के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता हमारे प्राणों का संगीत है एव छन्द हृत्कम्पन कविता का स्वभाव ही छन्द मे लयमान होता है।”^६

१. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त, पृ० १३०—श्री लक्ष्मी नारायण सुधाशु

२. Aristotle's Theory of Poetry and Fine Art., P. 141

३. Principles of Literary Criticism, P. 143

४. “Conception of internal expression, the private expression of the inspiration in the poets own mind by the completion of the imagination process into a stable, isolated and self contrained.” Page. 15.

Lascelles Amborcrombie—Principles of English prosody, Part I.

५. साहित्य का मर्म, पृ० ४६—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

६. ‘पल्लव’ की भूमिका, पृ० २१—सुमित्रानन्दन पन्त

वर्णिक एव मात्रिक दो प्रकार के छन्दो का भारतीय साहित्य में प्रयोग खुलकर हुआ है। सस्कृत साहित्य में वर्णिक छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया गया, लेकिन हिन्दी-जगत् में मात्रिक छन्दो का अत्यधिक प्रयोग किया गया। भारतेन्दु-काल में बालकृष्ण भट्ट ने सस्कृत के वर्णिक छन्दो का विरोध कर मात्रिक छन्दो पर बल दिया।^१ किन्तु स्वनाम धन्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने व्यापक दृष्टि रखते हुए हिन्दी में वर्णिक छन्दो के प्रयोग का आग्रह किया। जिनके परिणामस्वरूप हरिऔध जी ने सम्पूर्ण 'प्रियप्रवाम' नामक महाकाव्य ही वर्णिक छन्दो में लिखा। लेकिन पन्त जी का कहना है, "हिन्दी का सगीत केवल मात्रिक छन्दो में ही अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है वर्णिक छन्दो में नहीं।"^२ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्वयं छन्दो के महत्त्व पर लिखते हैं— "छन्द के बन्धन के सर्वथा त्याग में हमें अनुभूत नाद-सौंदर्य की प्रेषणीयता (Communicability of sound impulse) का प्रत्यक्ष ह्रास दिखाई पड़ता है। हाँ, नये छन्दों के विधान को हम अवश्य अच्छा समझते हैं।"^३

वर्तमान काल की हिन्दी कविता में कवित्त-सवैया, कुण्डलियाँ, दोहा, सौरठा, चौपाई, रोला, बरबै, छप्पय की परम्परा का पालन तो हुआ ही, साथ ही नये मात्रिक छन्द भी दृष्टिगोचर हुए। हरिगीतिका, गीतिका, सखी, शृंगार पीयूष, वीर, रूपमाला, मानव दिगपाल, सार, नाटक आदि का प्रयोग भी होता रहा। द्विवेदी-युग के समस्त कवियों में हरिऔध जी वर्णिक-छन्दो के प्रयोग में एवं मैथिलीशरण गुप्त जी मात्रिक-छन्दों के प्रयोग में सर्वश्रेष्ठ है। गुप्त जी ने डॉ० पुत्तूलाल के शब्दों में मात्रिक छन्दो का प्रयोग अधिकार एव सफलता से किया। वे सस्कृत वृत्तों में सफल नहीं हुए।^४ इसी युग के कवि सियाराम शरण गुप्त जी ने अनुकान्त एव मुक्त छन्दो में अपनी प्रतिभा का विशेष परिचय दिया। प्रसाद जी ने ताबटक, वीर, धीर, शृंगार पादमन्धर, रूपमाला, सार, रोला, गीतिका, हरिगीतिका, चन्द्रभाण, सौरठा, सरसी, पीयूषवर्ष आदि का सफल प्रयोग किया। द्विवेदी-युग के कवियों में अनुप्रास भी छन्द का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग रहा। तुक का आग्रह गुप्त जी में सर्वाधिक है। त्रिपाठी जी

१. "आजकल छन्दो के चुनाव में लोगो की विशेष रुचि हो रही है, इन्द्रवज्रा, शिखरिणी आदि सस्कृत छन्दो का हिन्दी में अनुकरण हम में तो कुठन पैदा करता है।"

द्वितीय हिन्दी साहित्य का कार्य विवरण, भाग २—प० बालकृष्ण भट्ट

२. पल्लव, पृ० २३—सुमित्रानन्दन पन्त

३. चिन्तामणि—भाग २, पृ० १५६—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

४. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना, पृ० २०२—डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल

भी तुक को स्वीकार करते हैं। “ठीक तुक मिलने से पढ़ते समय शब्द कान को बहुत मधुर जान पड़ते हैं।”^१

प० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने युग के अन्य कवियों की तरह मात्रिक-छन्दो को ही अपनाया है। प्राचीन छन्द घनाक्षरी एव नवीन छन्द सार आदि दोनों उन्हे प्रिय हैं। उन्होंने कुछ नवीन छन्दों की उद्भावनाएँ भी अपने खण्डकाव्य—स्वप्न, मिलन तथा मुक्तक कृति मानसी में की हैं। ‘मानसी’ में त्रिपाठी जी ने उर्दू के कुछ छन्दों को भी अपनाया है। शारद-तरंगिनी आदि कविताओं पर संस्कृत के वणिक छन्दो का प्रभाव है।

त्रिपाठी जी के खण्डकाव्य ‘पथिक’ में सार-छन्द का प्रयोग है। प्राचीन नियम से इस छन्द में १६ मात्राओं के पश्चात् यति एव अन्त में दो गुरु होने चाहिएँ। सार छन्द को दोवै तथा नरेन्द्र ललित पद भी कहा जाता है। अन्त में मधुरता एव सुविधा के लिए ॥ ५ और ॥ ५॥ का प्रयोग पूर्वकाल में भी था एव आज भी है। हाँ, नवीन प्रयोगों में कभी-कभी मध्यवर्ती यति को नहीं भी लाते हैं।^२ त्रिपाठी जी यति-भंग बहुत करते हैं, किन्तु लय प्रवाह अखण्ड होने से यह दोष क्षम्य है।

इस छन्द का आधार समप्रवाही अष्टक पर्व है।

उसी समय कमनीय एक, स्वर्गीय किरण-सी बामा।

कवि के स्वप्न समाप्त विश्व के, विस्मय-सी अभिरामा ॥

सिन्धुगोद में लय से पहले, तरंगिता सरिता-सी।

आकर चकित हुई तट पर प्रिय, तम दर्शन की प्यासी ॥^३

प० रामनरेश त्रिपाठी ने ‘पथिक’ में, राष्ट्र-कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ‘बन्धु विद्वेष’ में और द्वापर में, प्रातःस्मरणीय जयशंकर प्रसाद जी ने कामायनी के ‘कर्म’ सर्ग में इसी छन्द का प्रयोग किया है। प० रामनरेश त्रिपाठी ‘पथिक’ के सारछन्द में (१६, १२) मात्रा में १६ मात्राओं के बाद लय यति को अपनाया है।^४ पथिक में स्थान-स्थान पर अन्तर्यति को शब्दों के बीच में डालकर अपनाया है एवं कहीं २८ मात्राओं के बाद यति दी गई है। प्राचीन अर्थशास्त्री (विशेषज्ञ) इसे यति-भंग मानते

१. हिन्दी पद्य रचना, पृ० ६—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द-योजना, पृ० ५३—डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल

३. पथिक, पृ० १५—प० रामनरेश त्रिपाठी

४. यति दो प्रकार की होती है (१) पूर्णक यति (२) लयात्मक यति।

आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना, पृ० २०४—डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल

परन्तु डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल के शब्दों में इस युग के छन्द शास्त्री इसे विविधता (Variation) कहते हैं। पथिक में २८ मात्राओं का चर्तुमात्रिक पर्व है।^१

प्रतिक्षण। नूतन। वेष। बनाकर ॥ रग विरंग निराला।

रवि के। सम्मुख। थिरक रही है ॥ नभ मे। वारिद माला ॥

नीले। नील समुद्र मनोहर ॥ ऊपर। नील गगन है।

घन पर। बैठ बीच मे। विचरूँ। यही चाहता ॥ मन है ॥

‘स्वप्न’ में त्रिपाठी जी ने नवीन-छन्द ‘समान सवाई’ छन्द को अपनाया है। इस छन्द में १६, १६ मात्राओं पर यति होती है और अन्त में एक गुरु एव दो लघु होते हैं। इस छन्द में प्रवाह की गति अद्भुत होती है, लेकिन इसका प्रवाह सम मूलक मात्रा-मैत्री पर आधारित होता है। सिद्ध छन्दों में इसका नाम बड़ा प्रख्यात है। इसका अधिकतर प्रयोग शृंगार-रस या वीर-रस में किया जाता है। ‘स्वप्न’ प्रेममूलक काव्य है, उसमें इस छन्द का लयात्मक विधान चार-चाँद लगा देता है। इस छन्द में त्रिपाठी जी बड़े पटु प्रतीत होते हैं। उन्होंने लय यति गति एव स्वरात्मकता का सदैव ध्यान रखा है। इस छन्द में ३२ मात्राये होती हैं। ३२ मात्राओं के इस छन्द को लाक्षणिक छन्द भी कहा जाता है। यथा—

अतुलनीय जिसके प्रताप का साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।

धूम-धूम कर देख चुका है जिसकी निर्मल कीर्ति निशाकर ॥

देख चुके हैं जिसका वैभव ये नभ के अनन्त तारागण।

अगणित बार सुन-सुन चुका है नभ, जिसका विजयघोष रण गर्जन ॥^२

साहित्य-दर्पण में युगमक सदानितक, कलायक कुलक, (पाँच उससे अधिक श्लोक वाले) छन्दों में सम्बद्ध भाव का सकेन है। ऐसे छन्दों में क्रिया अन्तिम चरण में आती है। त्रिपाठी जी के स्वप्न में ऐसे ही उदाहरण मिलते हैं।

पर्वतशिखरो का हिम गल कर,

जल बनकर नालो में आकर।

छोटे बड़े चीकने अगणित,

शिला समूहो से टकरा कर ॥

डॉ० मोहन अवस्थी का कहना है कि “इस पद्य में चौदह पक्तियों का यह अवतरण एक वाक्य बनता है। यति तुक एव मात्रा का बन्धन न होता, तो यति नियममुक्त इसे बेधड़क नवीन (भावछन्द) कह सकते थे।”^३

१. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना, पृ० २०६—डॉ० पुत्तू लाल शुक्ल

२. स्वप्न, पृ० ४—पं० रामनरेश त्रिपाठी

३. आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प, पृ० २१०—डॉ० मोहन अवस्थी

‘मिलन’ के छन्द में कवि ने अन्तर्यति का ध्यान ही नहीं रखा है। यहाँ ऐसे अनेक दोषपूर्ण स्थल हैं, जहाँ कवि लय की उपेक्षा-सी करता है। यहाँ पर भाव एवं स्वर की अन्विति का भी विस्मरण कवि को रहा है। हाँ, जब वे अर्थ-यति पर आते हैं तो अभिव्यक्ति बड़ी सक्षम है। पर जब भाव-यति से वे आगे बढ़ते हैं, वहाँ अन्तर्यति को छोड़ ही दिया है।

उदाहरणार्थ—

ईश्वर-भक्ति, लोक-सेवा है एक अर्थ दो नाम,
वन में बस कैसे हो सकता है मनुजोचित काम ?

‘मिलन’ कवि का प्रथम प्रयास है। आगे के छन्दों में पर्याप्त प्रौढ़ता आती गई है।

‘मानसी’ में त्रिपाठी जी की प्रवृत्ति विविध छन्दोमयी रही है। कही नीति के दोहे हैं, कही ‘वार्णिक छन्द’ जैसे ‘शारद-तरंगिणी’ में। उर्दू की तर्ज के कई छन्दों का विधान भी किया गया है। ‘मानसी’ में अपनाया गया ‘घनाक्षरी-छन्द’ अद्भुत है। त्रिपाठी जी घनाक्षरी बड़ी पटुता से लिखते हैं। इस छन्द पर उनका अधिकार है। मानसी की स्फुट कविताओं में, जैसे—

चरित्र है मू। लय जीवन का। $(155 \times 2) = 7 \times 7$ मात्राएँ
वचन प्रतिबि। म्ब है मन का। (स्फुट)

इन कविताओं में ‘विधाता-कल्प’ ७ छन्द को अपनाया है। यह भी नवीन प्रयोग है। इसकी प्रथम तथा आठवीं मात्रा लघु होती है। गुप्तजी ने ‘अनघ’ में इसका विस्तृत प्रयोग किया है। ‘मानसी’ में कुछ कविताएँ ऐसे छन्दों में हैं, जिनका प्रयोग उर्दू-छन्दों में ही है। इसी तरह— वह देश कौन-सा है ? उपचार, हार में जीत आदि कविताएँ भी उर्दू-छन्द में हैं। कुछ कविताएँ उर्दू बहारों में हैं, जैसे ‘श्याम’ शीर्षक कविता। ‘मानसी’ में, ‘शारद-तरंगिणी’ में संस्कृत का वार्णिक छन्द-द्रुत विलम्बित भी आया है।

अशनि-पात, भयानक गर्जना,
विषमपात, झड़ी दिन रात की।
मिट गई दिन पावस के गये,
शरद है अब शान्त सुहावना ॥

इस छन्द में न भ भ र (111 111 111 11 1) का योग होता है।

‘मानसी’ में घनाक्षरी-छन्द की अधिकता है। घनाक्षरी मुक्तक वार्णिक छन्द है, इसके दूसरे नाम कवित्त एवं मनहरण भी हैं। मुक्तक रचना के अनुकूल यह छन्द का स्तुत्य प्रयोग है। खड़ीबोली में इस छन्द का प्रयोग त्रिपाठी जी द्वारा बड़ी ही

कुशलता से किया गया है।^१

त्रिपाठी जी के छन्द भाषा की शक्ति है, उनका अपना महत्त्व है। उन्होंने नवीन एवं प्राचीन दोनों प्रकार के छन्दों को अपनाकर प्राचीनता का आदर एवं नवीनता का स्वागत किया है। दोषों के रहते हुए भी उनका 'छन्द-विधान' बड़ा प्रभावशाली एवं गत्यात्मक है। इन छन्दों ने सगीतात्मकता की सहजता के द्वारा जन-प्रियता प्राप्त की है।

-
१. "खड़ीबोली के कवियों ने इस छन्द को एक प्रकार से त्याग ही दिया था। त्रिपाठी जी ने उसी छन्द में ललित भाषा में ऐसे मनोहर भाव भर दिये हैं कि पढ़ते ही मन मुग्ध हो जाता है। ऐसे सुन्दर घनाक्षरी-छन्द खड़ी-बोली में इने-गिने कवियों ने लिखे हैं।"

मानसी—भूमिका द्वारा, पृ० २२ —श्री गोपाल नवेटिया

द्विवेदी-युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ और त्रिपाठी जी का काव्य

आधुनिक काल को पलके खोलते ही स्वर्णिम प्रभात के मनोहर दृश्य दृष्टि-गोचर होने लगे थे। यह परिवर्तन क्षितिज-पट को आन्दोलित करने के साथ प्राचीन रूढ़िगत परम्पराओं को कुचलता हुआ, साहित्य-उपवन में खड़े दुर्बल एवं रुग्ण वृक्षों को शकशोर कर घराशायी करता हुआ आगे बढ़ा। विषाक्त वातावरण में प्रातः की सुन्दर रमणीय त्रिविध समीर का संचरण हुआ एवं पुराने खण्डहरों को हटाकर नवीन आकर्षक प्रासादों का निर्माण किया गया। कुनैन की कड़वाहट को छोड़कर मिश्री की मिठास को आदर मिला। प्राचीनता की खुली कलाई पर नवीनता का अमिट रंग लगाता हुआ युग विशाल आकाश के नीचे वसित मानव में युग-व्यापी आशा का संचरण करता हुआ आगे बढ़ा। भारतेन्दु-युग तैयारी का युग था। इस काल का प्रवर्तन हिन्दी के जनक भारतेन्दु ने किया था। भारतेन्दु-युग के ललाट पर द्विवेदी-युग ने आकर श्रद्धा का चन्दन लगाया एवं पुष्पमालाओं से उसे सम्मानित किया। भारतेन्दु-युग ने जो भूमि तैयार कर रखी थी, उसमें द्विवेदी-युग ने आकर बीज वपन किया। अनुकूल वातावरण देकर उस बीज को अकुरित, पोषित एवं पुष्पित किया गया, जिसका फलितरूप छायावादी-युग में दृष्टिगत होता है। इस युग में आकर कवितारूपी वृक्ष रस-युक्त फलों से लदकर झूमने लगा। परन्तु यह सत्य है कि भारतेन्दु-युग एवं द्विवेदी-युग में भाषागत वैषम्य ही बहुत रहा है।

भारतेन्दु-युग में कविता की भाषा ब्रजभाषा थी। ब्रजभाषा की सुमधुरता पर इस काल के समस्त कवि मनोमुग्ध रहे हैं। प्रताप नारायण मिश्र ने ब्रजभाषा को 'ऊख' तथा खड़ीबोली को 'बाँस' बताया है। इसी समय राधा चरण गोस्वामी ने ब्रजभाषा की सराहना करते हुए लिखा—“ब्रजभाषा के इतने बड़े रत्न-भण्डार को छोड़कर नए कंकर-पत्थर चुनना हिन्दी के लिए कुछ सोभाग्य की बात नहीं वरंच इस ब्रजभाषा के भण्डार को निकाल देने से हिन्दी में क्या गौरव की सामग्री रह जायेगी ?”^१ स्पष्ट है कि भारतेन्दु-काल में कविता की भाषा ब्रजभाषा ही थी।

स्वयं भारतेन्दु ब्रजभाषा में कविता करना अधिक उचित समझते थे। इस कारण 'आधुनिक कवि' की भूमिका में डॉ० रामकुमार वर्मा ने उचित लिखा है, "खड़ी-बोली हिन्दी में कविता की रचना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को किसी प्रकार भी मान्य नहीं थी। उन्होंने अपने नाटकों में जहाँ गद्य की भाषा खड़ीबोली मानी है, वहाँ पद्य में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। पद्य में खड़ीबोली का प्रयोग या तो उन्होंने 'अन्धेर नगरी' प्रहसन में हास्य की सृष्टि करने के लिए किया है अथवा 'चन्द्रावली' नाटिका के चतुर्थ अंक में।" ^१ कही-कही गजलों में भी खड़ीबोली का प्रयोग है। चन्द्रावली नाटिका में खड़ीबोली का प्रयोग-रूप है, जो असफल ही रहा है। वास्तव में भारतेन्दु ब्रजभाषा के प्रेमी थे, "कविता की भाषा निस्सन्देह ब्रजभाषा ही है और दूसरी भाषाओं की कविता इतना चित्त को नहीं पकड़ती।" ^२ भारतेन्दु-काल की बहुत-सी परम्पराएँ प्राचीन ही रही हैं। ब्रजभाषा में वही ठपली एवं वही पुराना राग था। कविता की भाषा भक्ति-काल, रीतिकाल तथा भारतेन्दु-युग तक लगभग तीन सौ वर्ष तक लगातार ब्रजभाषा ही बनी रही। इस कारण से परिवर्तन का होना भी अत्यन्त आवश्यक हो गया क्योंकि उसकी शिराओं का रक्त अब गदला हो गया था। इसी कारण डॉ० श्रीकृष्ण लाल लिखते हैं कि "ब्रजभाषा कविता का प्रवाह तरंगिनी की भाँति न था, वरन् वह एक सीमित सरोवर के तुल्य था, जिसका जल अब गदला भी हो चला था और उसमें सड़े सेवार की दुर्गन्ध आने लगी थी। भाषा पर रूपक उत्प्रेक्षा एवं श्लेष का अत्याचार बढ़ता ही जा रहा था।" ^३ इसी कारण भारतेन्दु-काल में ही श्रीधर पाठक ने 'खड़ीबोली' में 'एकान्त-योगी' की रचना द्वारा कविता के क्षेत्र में खड़ीबोली की उपादेयता स्थापित की, परन्तु खड़ीबोली की कविता को विकास स्थल देने में पाठक जी सफल न हो सके। वास्तव में इसका श्रेय तो युग-प्रवर्तक स्वनाम धन्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को ही है, जिन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों की भाषा को एक रूप कर दिया। कविता की भाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा एवं व्यावहारिकता द्विवेदी-काल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना है। इस काल में भाषा, भाव, शैली, काव्यरूप सभी क्षेत्रों में वैविध्य दृष्टिगोचर हुआ। डॉ० श्रीकृष्ण लाल का यह कथन इसी ओर संकेत करता है कि "मुक्तकों के वनखण्ड के स्थान पर महाकाव्य, खण्डकाव्य, आख्यानक काव्य (Ballads) प्रेम-आख्यानक काव्य (Metrical Romances) प्रबन्धकाव्य, गीतिकाव्य और गीतों से सुसज्जित काव्योपवन का निर्माण होने लगा।" ^४ इस प्रकार नवीन वातायन खुलने

१. आधुनिक कवि, पृ० १ — सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

२. हिन्दी भाषा, पृ० ११ — भारतेन्दु जी — डॉ० रामकुमार वर्मा

३. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० १६ — डॉ० श्रीकृष्ण लाल

४. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० २ —

से स्वच्छन्द गामिनी प्राण-वायु का प्रवेश हो गया। नये काव्य-रूप, नई भाषा, नई शैली एवं नई विषय-व्यवस्था इस युग में अपनाई गई, जो आगे आने वाले युग के लिए पथ-प्रदर्शक बनी है।

आचार्य द्विवेदी खड़ीबोली के शक्तिशाली समर्थक थे। इस कारण आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी का कहना है, “विचारों के क्षेत्र में नई और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है, जिन्होंने हिन्दी के लिए भाषा-सम्बन्धी एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है। नये विचार और नई भाषा, नया शरीर और नई पोशाक—दोनों ही नई हिन्दी को द्विवेदी जी की देन हैं। इस कारण वे नई हिन्दी के प्रथम और युग-प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। द्विवेदी जी एवं उनके साथियों का महत्त्व नये निर्माण के लिए प्रचुर और अनेकमुख सामग्री भेट करने में है। साहित्य के क्षेत्र में किसी एक व्यक्ति पर इतना बड़ा उत्तरदायित्व इतिहास की शक्तियों ने कदाचित् पहली बार रखा था और पहली ही बार द्विवेदी जी ने इस उत्तरदायित्व के सफल निर्वहण का अनुपम निदर्शन प्रस्तुत किया।”^१ आचार्य द्विवेदी जी ने बड़ी सफलता से ‘सरस्वती’ का सम्पादन किया। उनकी प्रेरणा पाकर राष्ट्रीय चेतना के सजग प्रहरी श्री मैथिली शरण गुप्त, श्री अयोध्यासिंह ‘हरिऔध’, रामचरित उपाध्याय, गोपाल शरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवि खड़ीबोली की काव्योपयोगी भाषा बनाने में प्रयत्नशील रहे। परिणामस्वरूप इस युग में खड़ीबोली साहित्यिक काव्य-भाषा बनकर विकासोन्मुख हो गई है।

इस समय तक आकर ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली की ‘प्रतिद्वन्द्वता’ समाप्त हो गई। “द्विवेदी जी ने खड़ीबोली को काफी मात्रा और सवारा और एक प्रकार से काव्य की भाषा के सम्बन्ध में ब्रजभाषा और खड़ीबोली के झगड़ों का सदा के लिये अन्त कर दिया।” उस समय तुकबन्दी के लिए हिन्दी को विकृत करने की प्रवृत्ति अधिक शब्दों की आत्मा का वास्तविक ‘ज्ञानशब्दचयन’ में कसावट एवं उपयुक्तता का उस समय के कवियों का कम ध्यान था। आचार्य द्विवेदी जी ने काव्य-भाषा की अशुद्धियों तथा अन्य दोषों की कटु आलोचना करते हुए कवियों को विशुद्ध, प्राञ्जल, परिमार्जित, सुन्दर वाक्य चुनाव के द्वारा कवियों की सीधे पथ की ओर निर्दिष्ट किया। इसके फलस्वरूप काव्य-भाषा खड़ीबोली उत्तरोत्तर स्वच्छता, शक्तिमत्ता, प्राञ्जलता, पुष्टता, सुघरता एवं भावाभिव्यजना-क्षमता से निखर उठी। अपने ‘आजकल के हिन्दी कवि और कविता’ नामक लेख में वे लिखते हैं, “शुद्ध लिखना तक सीखने के पहले ही वे कवि बन जाते हैं और अनोखे-अनोखे उपनामों का लाल-गुलाल लगाकर अनाप-शनाप

लिखने लगते हैं। आजकल के कुछ कवि, कवि-कर्म में कुशलता प्राप्ति की चेष्टा तो कम करते हैं, आडम्बर रचना ही बहुत।" इस प्रकार के कवियों को उन्होंने एक कटु-फटकार बताई तथा काव्योपवन में फल प्रदायक वृक्षों को लहलहाने का वातावरण दिया।

इस युग में भाषा का केवल व्याकरण की दृष्टि से ही परिष्करण नहीं किया गया, अपितु उसमें साहित्यिक उत्कर्ष, स्वाभाविकता, सुघरता, सरसता सरलता एवं प्रौढ़ता लाने के लिए भी प्रयत्न किया गया। यद्यपि द्विवेदी-युग की आरम्भिक कविताओं में इतिवृत्तात्मकता (Matter of factness) और शुष्कता की प्रधानता रही तथापि धीरे-धीरे भाषा में सुन्दर चमक भी आ गई है। गुप्तजी, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' एक भारतीय आत्मा, रामनरेश त्रिपाठी ने भाषा में परिष्कार किया—प्रमाण रूप में साकेत की निम्नलिखित पंक्तियाँ अद्भुत है—

लोल कुण्डल मण्डलाकृत गोल है,
घनपटल से केश कान्त कपोल है।
देखती है जिस तरफ यह सुन्दरी,
दमकती है दामिनी-सी द्युति-मरी।^१

इसी कारण डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दों में, "खड़ीबोली कविता का वास्तविक आरम्भ श्री मैथिली शरण गुप्त की कविता से मानना चाहिये। श्री मैथिली शरण गुप्त ने गद्य की सुसंस्कृत पदावली को क्रिया रूप के साथ सरस बनाकर स्थान दिया। अतः श्री मैथिली शरण गुप्त खड़ीबोली के प्रथम विशुद्ध कवि है।"^२

'एक भारतीय आत्मा' ने अपनी भाषा में सुन्दरतम रूप दिखाया। यथा—

भूखण्ड बिछा, आकाश ओढ़, नयमोदक ले मोदक प्रहार,
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल, अपना जीवन थम ले निहार।

सुरपुर तज दे आशय्य कहे,

तो चल रौरव के नरक द्वार।^३

चतुर्वेदी जी पौरुष के कवि हैं। उनकी भाषा का तेज छिप नहीं सकता है। यहाँ भी भाषा में भास्वरता, प्रौढ़ता, प्राञ्जलता स्पष्ट झलकती है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने भाषा में संस्कृत-गर्भित प्रौढ़ पदावली को अपनाकर अपनी भाषा

१. साकेत, पृ० १६—मैथिली शरण गुप्त

२. आधुनिक हिन्दी-काव्य, पृ० ५—सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

—डॉ० रामकुमार वर्मा

३. प्रोत्साहन—'एक भारतीय-आत्मा' प्रभा, अगस्त १९२२

में दुरुहता तथा कृत्रिमता को जन्म दिया है। यथा—

रूपोद्यान प्रफुल्ल प्राय-कलिका राकेन्दु विम्बानना,
तनवंगी कल हासिनी सुरसिका क्रीड़ा कला पुत्तली।

भाषा में सुन्दर परिष्कार रामनरेश त्रिपाठी का भी दृष्टव्य है। यथा—
पथिक मे—

मृगमाला विरहित कल कोकिल कूजित कुसुमित जनको।
ललित लहलही लता लसित अलिमुखरित कुंज भुवन को ॥

इन सभी कवियों ने भाषा की कर्कशता दूर करने का प्रयत्न भरसक किया है एव सरलता, स्वाभाविकता, मधुरता की भाषा में सृष्टि भी की है। इस युग की भाषा में प्रसाद गुण की प्रधानता है, लेकिन ओज एव माधुर्य का नितान्त अभाव भी नहीं है। एक ओर गुप्त जी की भारत-भारती, 'जयद्रथ-वध', माखनलाल चतुर्वेदी, श्यामनारायण पाण्डेय, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा नवीन आदि की कविताओं में ओज-गुण की प्रधानता है। दूसरी ओर 'प्रिय-प्रवास', 'साकेत', 'मिलन', 'पथिक -जैसी रचनाओं में माधुर्य-गुण प्रचुरमात्रा में मिलता है। संक्षेप में यह कह सकते हैं कि खड़ीबोली को साहित्यिक काव्योपयोगी, रमणीय, सरस, पुष्ट, प्राञ्जल, स्वाभाविक, सुघर एव मधुर बनाने प्रयत्न किया गया, परिणामस्वरूप खड़ीबोली में कर्कशता नष्ट होकर मिठास का जन्म हुआ है। भाषा अपनी अनगढ़ता को त्याग करती हुई समृद्ध एव समर्थ रूप को प्राप्त करती गई है।

इस काल के कवियों ने शैलीगत नया मोड़ दिया। अधिकांश कवियों ने संस्कृत-गर्भित 'समासबहुला' शैली को आदर से अपनाया। यहाँ तक कि युगप्रवर्त्तक आचार्य द्विवेदी स्वयं समास-बहुला संस्कृत-निष्ठ शैली के पक्षपाती थे। उनकी शैली का एक उदाहरण देखिये—

“सुरभ्य रूपे रसराशि रजिते विचित्र वर्णभरणे कहाँ गई?
अलौकिकानन्दविधायिनी महा कवीन्द्र कान्ते कविते अहो कहाँ?”

इसी प्रकार की शैली को श्री मैथिली शरण गुप्त, हरिओध जी, रामचरित उपाध्याय, श्री रामनरेश त्रिपाठी ने अपनाया है। प्रिय-प्रवास की शैली तो संस्कृत-गर्भित ही नहीं अपितु वह तो संस्कृत से बोझिल हो गई है।

“दिवस का अवसान समीप था,
गगन था कुछ-लोहित हो चला।
तरु शिखा पर थी अब राजती,
कमलिनी कुल-बल्लभ की प्रभा ॥”

इसके दूसरी ओर कही-कही भाषा का स्वरूप विच्छिन्न भी हो गया है। इसी कारण आचार्य वाजपेयी का यह कथन उचित ही है कि “द्विवेदी-शैली को हम खड़ी-

बोली की आरम्भिक प्रयोगात्मक शैली कह सकते हैं। इस युग का काव्य-स्वरूप किसी व्यवस्थित काव्य-रूप में नहीं आता। वह एक प्रकार से विशुद्ध काव्य है भी नहीं”^१। यद्यपि इतना सत्य है कि इस संस्कृतमयी प्रयोगात्मक शैली में मन्थर गति से सरलता, स्वाभाविकता, मधुरता, पुष्टता एवं गतिमयता आती रही और युग के अन्तिम वर्षों में वह आडम्बरविहीन होकर सुघरती गई। इसी कारण डॉ० गोविन्दराम शर्मा लिखते हैं कि “द्विवेदी-युग के अन्त तक गुप्त जी जैसे कवियों के प्रयत्न के फलस्वरूप कविता के क्षेत्र में संस्कृत-गर्भित अलंकृत-शैली के स्थान पर प्रतीकात्मक नवीन अभिव्यजना शैली का आदर होने लगता है।.....वस्तुतः द्विवेदी-युग की काव्य-शैली प्रारम्भ में वाच्यप्रधान, वर्णनात्मक रही; किन्तु अन्त में वह लक्ष्य-प्रधान और प्रतीकात्मक बन गई।”^२ इस कथन से जाहिर है कि द्विवेदी-युग की शैली में निरन्तर प्रौढ़ता आती रही तथा कवियों ने भाषा की शक्ति का विस्तार करने के लिए नवीन से नवीन विधाओं को अपनाया है।

नवीन प्रगति-रूप—

प्रगीत-काव्य व्यक्तिवादी अन्वितयुक्त एवं अन्तर्निष्ठ होता है। उसमें आत्माभिव्यजना के साथ-साथ कवि का व्यक्तित्व भी निखरता है। इस युग में आकर काव्य-रूप के क्षेत्र में परिवर्तन के साथ-साथ सुन्दर प्रगीत भी लिखे जाते रहे हैं। स्वाभाविकता, वैयक्तिकता, आत्माभिव्यजना, संगीतात्मकता एवं कोमल कान्त पदावली, गीत-काव्य की समस्त विशेषताएँ भी उनमें स्वतः ही प्रकट होने लगीं। इन प्रगीतकार कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, मैथिली शरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने सुन्दर प्रगीत लिखे हैं। इसी कारण आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह कथन कि “राजनीतिक और राष्ट्रीय-भावना से अनुप्रेरित ये प्रगीत स्वरूप में अति लघु और सख्या में अति स्वल्प थे, जिससे यह सूचित होता है कि प्रगीत की शैली हिन्दी में अभी-अभी अवतरित हो रही थी।”^३ इस समय का प्रतिनिधि प्रगीत—

चाह नहीं मैं मुरबाला के, गहनो में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं प्रेमी माला में बिँध, प्यारी को ललचाऊँ ॥
चाह नहीं सम्राटो के शव पर, हे हरि डाला जाऊँ।
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इतराऊँ ॥

१. आधुनिक साहित्य, पृ० ४—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

२. हिन्दा साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ, पृ० ३६४—डॉ० गोविन्दराम शर्मा

३. आधुनिक साहित्य, पृ० २५—(भूमिका) आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

मुझे तोड़ लेना बन माली,
उस पथ पर तुम देना फेंक ।
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जाये वीर अनेक ॥^१

इसी प्रकार 'साकेत' तथा 'यशोधरा' में भी सुन्दर प्रगीतों की भरमार है । कथाकार कवियों ने कथा के बीच इन प्रगीतों का प्रयोग किया है । लेकिन इन प्रगीतों में भाव तथा शिल्प का सुन्दर रूप उभर वर आया है ।

समाज-सुधार की भावना—

भारतेन्दु-युग के काव्य की तरह द्विवेदी-युग के काव्य में भी समाज-सुधार की भावना को प्रमुख स्थान मिला है । कुरीतियों, कुप्रवृत्तियों की तीव्र आलोचना द्वारा कवियों ने जनता का ध्यान आकर्षित किया । इस सुधार-भावना में विषय वैविध्य रहा, लेकिन इन कवियों ने समाज-सुधार के उन्हीं विषयों पर अधिक लिखा, जिनका उनपर अधिक प्रभाव पड़ा है । इन कवियों ने भारतेन्दु-युग की तरह सभी ओर अपनी लेखनी नहीं उठाई है । श्रीधर पाठक ने यदि विधवाओं की दीन-हीन दशा देखकर उनकी समस्याओं पर प्रकाश डाला है तो गुप्त जी ने एकता, अछूतोंद्वारा एव नारी-उद्धार का स्वर मुखरित किया है ।

१. नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन है नारी हो को लेकर ।
अपने लिये सभी सुविधाये पहले ही कर बैठे नर ॥^२

२. अबला जीवन हाय ! तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥^३

हरिऔध जी का हृदय समाज-सुधारक की भावना से भरपूर है । वहाँ नाथूराम शर्मा शर्मा सामाजिक कुप्रथाओं की तीव्र आलोचना करते हैं ।^४ इन सुधारों के साथ ही साथ यह भी ध्यान दिया गया है—प्राचीन गौरव की रक्षा सभी भारतवासियों का प्रथम तथा अन्तिम कर्तव्य है—

हम कौन थे क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारे बैठ करके यह समस्याये सभी ॥

१. हिम तरंगिणी, पृ० २५—लेखक माखनलाल चतुर्वेदी

२. पंचवटी, पृ० १५—लेखक मैथिली शरण गुप्त

३. यशोधरा, पृ० ४५

”

४. आधुनिक साहित्य, पृ० २५ (भूमिका)—आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

संसार को पहले हमी ने ज्ञान विद्या दान दी ।
आचार की, व्यवहार की, व्यापार की, विज्ञान की ॥'

रामनरेश त्रिपाठी जी ने भी इस समाज-सुधार-भावना का स्वर मुखरित किया ।

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी ।

यह मनुष्यता पर कलक है, हे प्रिय बन्धु तुम्हारी ॥^२

इस प्रकार भारतेन्दु-युग की तरह इस युग की कविताओं के विषय भी वही रहे—स्त्री-शिक्षा, बाल-विवाह, विधवाओं की दयनीय दशा, दहेज प्रथा, अन्धविश्वास आदि विषयों पर कवियों का ध्यान गया । दोनों युगों की सामाजिक कविता एक-सी रही । द्विवेदी-युग के समाज की दशा लगभग भारतेन्दु के युग जैसी ही रही, इसी-लिए द्विवेदी-युग की सामाजिक कविता में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । अन्तर केवल इतना है कि जहाँ भारतेन्दु-युग के कवियों में सामाजिक कुरीतियों की केवल आलोचना ही की थी वहाँ द्विवेदी-युग के कवियों ने उन कुरीतियों से पीड़ित प्राणियों के प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित की है । गांधीजी के नेतृत्व में सम्पूर्ण देश प्रगति के पथ पर अग्रसर था । समाज-सुधार की भावना ने जनता को निर्माण की नवीन दिशा दी है ।

देश-भक्ति एवं राष्ट्रीय-भावना—

युग-बोध तथा समसामयिक घटनाओं से आक्रान्त इन कवियों ने राष्ट्रवाद का प्रचार जमकर किया । भारतेन्दु-युग की क्षीणधारा यहाँ आकर प्रखर हो गई, उसमें प्रेरणा के प्रभाव से व्यापकत्व आ गया । भारतेन्दु के कवियों की देश-भक्ति जहाँ नैराश्य से युक्त है, वहाँ द्विवेदी-युग की देश-भक्ति आशा के सम्बल पर आधारित है ।

इन कवियों के हृदय में देश-भक्ति का भाव उत्ताल तरंगों के साथ उमड़ रहा है । इसी तथ्य को बाबू गुलाबराय स्पष्ट करते हैं कि “द्विवेदी-युग में राष्ट्रीय-चेतना के बीज अनुकूल वातावरण पाकर अकुरित हो उठे थे । स्वामी दयानन्द के सामाजिक समता मूलक धर्म-प्रचार और अग्नेजी साहित्य के बढ़ते हुये सम्पर्क ने राष्ट्रीय-चेतना एवं स्वातन्त्र्य भावना को विशेष बल दिया ॥”^३ इस प्रकार राष्ट्रीय कविता का स्वर मुखर हो गया तथा कवि पराधीन देश की समस्त निराशा को धोने के प्रयास में अग्रसर दिखाई दिए । इन सभी न तत्कालीन जड़ता से जमकर सघर्ष किया तथा समाज को बदलने की प्रतिज्ञा की । डॉ० श्रीकृष्ण लाल का कहना है कि हिन्दी में राष्ट्रीय कविता के सर्वप्रथम जन्मदाता भारतेन्दु है । राष्ट्रीय कविताओं की उन्होंने

१. भारत-भारती, पृ० ६—मैथिली शरण गुप्त

२. पथिक, पृ० २८—प० रामनरेश त्रिपाठी

३. हिन्दी काव्य विमर्श, पृ० २१५—बाबू गुलाबराय

चार कोटियों स्वीकार की है। यथा—

१. मातृ-भूमि का दैवीकरण।
२. अतीत गौरव का गान।
३. मातृ-भूमि के प्रति प्रेम-भावना।
४. उत्साहवर्द्धक वीर-गीत।^१

इस काव्य में परम्परागत दैवीकरण की प्रवृत्ति का प्रस्फुटन हुआ। आधुनिक काल में आकर जन्म-भूमि को दैवी-रूप प्राप्त हुआ। मैथिली शरण गुप्त को मातृ-भूमि में प्रायः सर्वेश की सगुण मूर्ति के दर्शन होते हैं—

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह फूल तारे मण्डन है।
बन्दी जन खग वृन्द, शेष फल सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक प्रमोद है बलिहारी इस रूप की।
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

इस प्रकार दैवीकरण की प्रवृत्ति को नवीनतम रूप में अपनाया गया, जिसमें भावों को मुक्त प्रकाश मिला है—

श्री पाठक भी इसी प्रकार लिखते हैं—

सुख धाम अति अभिराम गुन निधि नौमिनित-प्रिय भारतम्।
सुठि शकल जगे ससेव्य सुभ-धल सकल-जग सैवारतम्॥
सुजि सुजन सुफल सुसस्प सकुल सकल भुवि अभिवन्दितम्।
नित नवल सुकृतु सुदृश्य सुठि, छवि अवलि, अवनि, अनन्दितम्॥

राष्ट्रीयता को प्रबुद्ध करने के लिए देश की आरती इन सभी कवियों ने की है। देश-सेवा तथा मानव-सेवा की भावना जनता में उद्बुद्ध करते हुए उसे नवीन क्रान्ति के लिए तैयार किया है। यह क्रान्तिकारी स्वर सम्पूर्ण काव्य में तीखा बहुत है। इसी प्रकार माधव शुक्ल, लोचन प्रसाद पाण्डेय, सत्यनारायण कविरत्न आदि ने भी भारत के देवी रूप पर कविताएँ लिखी हैं, जिनमें आत्म-बलिदान की प्रेरणा जाग्रत् की गई है।

राष्ट्रीय कविता का दूसरा पक्ष भारत के अतीत गौरव का गान है, जिसमें वर्तमान अवनति के प्रति विश्वास भावना है क्योंकि “राष्ट्रीय चेतना ने ही हमें एक सूत्र में पिरोया है, हमारा ध्यान प्राचीन गौरव की ओर आकृष्ट किया है।” ‘भारत-भारती’ की रचना इसी बोध का सुपरिणाम थी। एक ओर गुप्त जी अतीतोन्मुखी

होकर वर्तमान का उद्धार करना चाहते हैं, वही पर प० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—

अपना शासन आप करो तुम, यही शान्ति है सुख है।

पराधीनता से बढ जग मे, नही दूसरा दुख है ॥

लोकमान्य तिलक के नारे का विश्वास जनता मे घर कर गया था।

रामचरित उपाध्याय, प० रामनरेश त्रिपाठी, 'त्रिशूल' आदि ने भारत के अतीत-गौरव का गान गाया है। रामचरित उपाध्याय तो भारत की यमरावती को भी अमरावती से श्रेष्ठ बतलाते हैं। कवियों ने प्राकृतिक-वर्णन आदि से मातृभूमि के गौरव को शतशत गीत स्वरो मे गुंजरित किया है।

तीसरा पक्ष मातृ-भूमि की प्रेम-भावना का है। सर वाल्टर स्कॉट ने मातृ-भूमि के लिये लिखा था—

(१) Breaths there the man with soul so dead

Who never to himself hath said—

This is my own my native land.

(२) नदियाँ जहा सुधा की धारा बहा रही है,

सीचा हुआ सलोना वह देश कौन-सा है ?

भगवानदीन पाठक लिखते हैं—

पाई हुई प्रतिष्ठा पुरुषत्व की गँवाई।

जन्म-भूमि से जिसने न लौ लगाई ॥

दूसरी ओर—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।

वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है ॥

रामनरेश त्रिपाठी—

मैं यह जीवन फूल चढाता हूँ,

चरणो पर तेरे।

और भी—

जन्म दिया माता ने जिसमे किया सदा लालन-पालन।

उसकी सेवा में यह मेरा तन है मन सारा जीवन ॥

राष्ट्रीय कविता का चौथा पक्ष सत्याग्राही वीरो का है। माखनलाल चतुर्वेदी, गया प्रसाद शुक्ल त्रिशूल, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, माधव शुक्ल, श्याम नारायण पाण्डेय, सियाराम शरण गुप्त, मैथिली शरण गुप्त, बेचन शर्मा उग्र, राष्ट्रीय-पथिक, मंगल प्रसाद विश्वकर्मा और रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों ने इस प्रकार की रचनायें की हैं। माखनलाल चतुर्वेदी की 'एक फूल की चाह' इसी कोटि

की अमर कविता हैं ।

मुझे तोड़ लेना वन माली,
उस पथ पर तुम देना फेक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जाये वीर अनेक ॥

श्याम नारायण पाण्डेय—

यही-यही हल्दी घाटी है,
उछल कलेजा काट लिया ।
अपनी लोहित जीभ बढ़ाकर,
रक्त हमारा चाट लिया ॥

सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' देखिये—

खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ।
चमक उठी सन् सत्तावन मे वह तलवार पुरानी थी ।
बुन्देले हर बोलो मे मुँह हमने सुनी कहानी थी ॥

'नवीन' जी का स्वर देखिये—

कवि कुछ ऐसी तान मुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये ।
एक हिलोर डधर से आये एक हिलोर उधर से आये ॥

प० रामनरेश त्रिपाठी को देखिये—

तुम अपने सुख के स्वराज्य के हो न पूर्ण अधिकारी ।
यह मनुष्यता पर कलक है, हे प्रिय बन्धु तुम्हारी ॥

सक्षेप मे इस युग की राष्ट्रीय कविता भारतेन्दु-युग की तुलना मे अतीत से वर्त्तमान, कल्पना से यथार्थ, निराशा से आशा, दुःख से सुख, अभाव से भाव, अविश्वास से विश्वास, उपदेश से कर्म की ओर उन्मुख रही हैं ।

धार्मिक मनोदृष्टि—

इस काल में धर्म-भावना सकुचित भारतेन्दु-कालीन दायरे से निकल कर व्यापक एवं उदार हो गई है । वह व्यष्टि तक न रहकर समष्टि तक फैलती है । धार्मिक-भावना का व्यापकत्व राम, कृष्ण, सीता, राधा को पाकर आध्यात्मिक शक्ति के द्वार तक पहुँच गया है ।

यथा—

मैं ढूँढ़ता तुझे था, जब कुँज और वन में,
तू खोजता मुझे था, तब दीन के सदन मे ।

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,
मैं था तुझे बुलाता सगीत के भवन में ।

प० रामनरेश त्रिपाठी ने 'अन्वेषण' नामक इस कविता में अपने विचारों में व्यापक सीमा रखी है। इन कवियों की उदार मनोवृत्ति इन्हें मानवता की सेवा और विश्व-प्रेम की भावना प्रदान करती रही है—

जन सामान्य की सेवा ही सच्ची सेवा है। इसी कारण गोपाल शरण सिंह लिखते हैं—

जग की सेवा करना ही बम है सब सारों का सार।
विश्व-प्रेम के बन्धन में ही मुझको मिला मुक्ति का हार ॥

अपनी युगव्यापी विशाल एवं व्यापकत्व की भावना के कारण ही इन कवियों में कृष्ण एवं राम के चरित्र भी नवीन रूप लेकर आये हैं। प्रिय-प्रवास के कृष्ण लोक-रक्षक, लोक रजक एवं लोक-हितकारी नेता हैं। साकेत के राम मन, कर्म, वचन से लोक-रक्षक एवं धर्म-रक्षक हैं। वे मानव होकर भी ईश्वर के गुणों से विभूषित हैं। कवियों की साकार भावना ईश्वर को कण-कण-व्यापी पाती रही है। द्विवेदी-युग के अन्तिम चरण में सहसा परिवर्तन आया और धार्मिक भावना में कहीं-कहीं रहस्यात्मकता आ गई।

यथा—

अन्धकार का दीप जलाकर किसकी खोज किया करते हो।
तुम खद्योत क्षुद्र हो तब फिर तुम क्यों ऐसा दम भरते हो ॥
तम में ये नक्षत्र आज तक घूम रहे उनके कारण।
उसका पता कहाँ है किसको होगा यह रहस्य उद्घाटन ॥

इस प्रकार इनकी धार्मिक भावना ने मानवतावाद का रूप धारण कर लिया है। इसी मानवतावादी विचारधारा ने धार्मिक कविता को प्रभावशाली, सर्वग्राही एवं उन्नति का पथ दिखलाया है।

प्रकृति-वर्णन—

द्विवेदी-युग में प्रकृति-चित्रण को उन्मुक्त क्षेत्र मिल गया। द्विवेदी-युग से पूर्व स्वतन्त्र प्रकृति-चित्रण का प्रायः अभाव ही रहा। रीतिकाल में “शीतल चन्द्र अग्नि सम लागत” के द्वारा कवियों ने उद्दीपन रूप में ही प्रकृति का अधिक चित्रण किया है। हाँ, सेनापति ने अवश्य कहीं-कहीं आलम्बन रूप से प्रकृति-चित्रण किया है। भारतेन्दु-काल में भी कवियों का ध्यान प्रकृति पर कम ही गया। इस कारण प्रकृति के सौन्दर्य का आन्तरिक उद्घाटन उस समय भी न हो सका। उन्होंने कहीं-कहीं तो परम्परा-मात्र का निर्वाह किया है और कहीं-कहीं अलंकार-युक्त वर्णन। द्विवेदी-काल के

कवियों का हृदय प्रकृति-प्रेम से परिपूरित है, प्रकृति का आकर्षण उन्हें जीवन-ज्योति प्रदान किये है। उनका अनुराग सदैव उनकी कविताओं में खिलखिलाकर हँसने लगता है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों प्रकार का प्रकृति-चित्रण मिल जाता है। प० श्रीधर पाठक के हृदय में भी प्रकृति की सुषमा से अबोध प्रेम है। प्रकृति की मुस्कुरानी भूमि काश्मीर का एक वर्णन देखिये—

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठ निज रूप सँवारति ।

पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन्न-छिन्न धारति ॥

विहरत विविध विलास भरी जोवन में मदसनि ।

ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति थिरकति बनठनि ॥

पाठक जी का प्रकृति-वर्णन संवेदनात्मक और चित्रात्मक दोनों रूपों में पाया जाता है। स्वयं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रकृति को आलम्बन मानकर अनेक स्वतंत्र चित्र प्रस्तुत किये हैं। यथा—

युग भुजा उर बीच समेटि के ।

लखहु आवत गैयनि फेरि के ॥

कपत कबल बीच अहीर है ।

भरत-भूलि गई सब तान है ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध को भी प्रकृति से अथाह प्रेम है। वे तो अपने अमर महाकाव्य 'प्रियप्रवास' का आरम्भ ही प्रकृति की पृष्ठ-भूमि को प्रधान मानकर करते हैं—

दिवस का अवसान समीप था,

गगन था कुछ लोहित हो चला ।

तरु-शिखा पर थी अब राजती,

कमलिनी कुल बल्लभ की प्रभा ॥

फिर भी हरिऔध जी का प्रकृति-चित्रण परम्परागत ही हुआ है। राष्ट्रकवि गुप्त जी ने भी प्रकृति-चित्रण में रमणीय रूप उपस्थित किया है।

चारु-चन्द्र की चंचल किरणे खेल रही है जल-थल में ।

स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बरतल में ॥

पुलक प्रकट करती थी धरती हरित तृणों की नोको से ।

मानो झूम रहे हो तरु भी मन्द पवन के झोको से ॥^१

गुप्त जी का प्रकृति-चित्रण अधिकतर संवेदनात्मक ही रहा है। पंचवटी, मिलन, पथिक, स्वप्न, बुद्धचरित में इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन भरे पड़े हैं, जो मान-

वीय कार्यों की पृष्ठ-भूमि हैं। 'पथिक' का पहला सर्ग तो प्रकृति-वर्णन से ही पूरित है। रामनरेश त्रिपाठी का प्रकृति-प्रेम इस युग में सर्वोत्कृष्ट रहा।

'पथिक' से—

राग-रथी रवि-राग पथी अविराग विनोद-बसेरा ।
प्रकृति-भवन के सब विभवों से सुन्दर सरस सवेरा ॥
एक दिवस अति मुदित उदधि के बीच-विचुम्बित तीरे ।
सुख की भाँति मिला प्राची से आकर धीरे-धीरे ॥^१

डॉ० श्रीकृष्ण लाल का कथन है, "इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण दो प्रकार के हैं, उसके दो पक्ष हैं। मानवीय कार्यों और भावनाओं पर स्थान, समय और वातावरण का प्रभाव बहुत पड़ता है, अतएव रामचन्द्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिली शरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध प्रकृति का चित्रण स्थान, समय और वातावरण के रूप में करते हैं। मिलन में कवि उस समय एवं उस स्थान का वर्णन करता है, जब और जहाँ से आनन्द और विजया मिलन की ओर चले हैं ॥"^२

घोर निशीथ, गभीर तमावृत, शान्त दिशा, आकाश ।
नीरव तारागण करते थे झिलमिल अल्प प्रकाश ॥
प्रकृति मौन, सचराचरनिन्द्रित, अति निस्तब्ध समीर ।
जाग्रत् वन में लता-विनिर्मित केवल एक कुटीर ॥

'पथिक' में तो नायक प्रकृति के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उस पर अपना जीवन न्योछावर करना चाहता है—

प्रति क्षण नूतन वेष बनाकर रग-विरग निराला ।
रवि के सम्मुख थिरक रही थी नभ में वारिद माला ॥
नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है ।
घन में बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है ॥

यहाँ प्रायः मानवीकरण के रूप में प्रकृति-वर्णन किया गया है। इस प्रकार रामनरेश त्रिपाठी का प्रकृति-वर्णन इस युग में सर्वश्रेष्ठ रहा, यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

प्रेम—

इस काल में प्रेम का रूप भी बड़ा ही पुष्ट रहा। भारतेन्दु-काल में शृंगारिकता की प्रवृत्ति जो रीतिकाल में वासना के पंक से दूषित हो गई थी, उसे इस युग के कवियों ने प्रेम का उदात्त रूप दिया। आधुनिक काल में प्रेम-काव्य का विषय हो

१. पथिक—पं० रामनरेश त्रिपाठी

२. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ७५—डॉ० श्रीकृष्ण लाल

गया, लेकिन यह प्रेम रीति-कालीन नायक-नायिका-प्रेम से भिन्न रहा है। श्रीधर पाठक, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, मैथिली शरण गुप्त, हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा शंकर सभी ने प्रेम का वर्णन परिष्करणयुक्त शैली में किया। इसी समय प्रेमाख्यान काव्यों में रामनरेश त्रिपाठी का 'मिलन' (१९१७), जयशकर प्रसाद का 'प्रेम-पथिक' (१९१४), सुमित्रानन्दन पन्त का 'ग्रन्थि' (१९२०) और प्रसाद जी का 'आँसू', हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' गुप्त जी की 'पचवटी' आदि का सृजन भी हुआ। ब्रजनन्दन सहाय का 'प्रेम' देखिये—

शिक्षा स्थली है प्रेम की ससार निश्चय जानिये।

जो प्रेम की शिक्षा न पाता अधम उसको जानिये ॥

नर जन्म उसका व्यर्थ है जो प्रेम का भूखा नहीं।

जो प्रेम का करता निरादर मुख कभी पाता नहीं ॥

मौन्दर्य और प्रेम के कवि प्रातःस्मरणीय जयशकर प्रसाद लिखते हैं—

प्रेम-पवित्र पदार्थ न उसमें कहीं कपट की छाया हो,

उसका परिमित रूप में नहीं जो व्यक्तिमात्र में बना रहे।

सुभद्राकुमारी अपने आराध्य के लिये उत्सुकता और उमग से भरकर प्रेम का ही उपहार चढाती है।

मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी हृदय दिखाने आई हूँ।

जो कुछ है बस यही पास है इसे चढ़ाने आई हूँ ॥

चरणों पर अर्पण है इसको चाहो तो स्वीकार करो।

यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो ॥

दूसरी ओर इच्छा, जो वशीधर विद्यालंकार में प्रबल रूप से उठती है, सराहनीय है, अनुकरणीय है—

प्रेम धार बह-बह कर निकले,

सकल विश्व को व्याकुल कर दे।

बस दिन-रात यही सोचूँ मैं,

बैठ किसी को प्यार करूँ मैं।^१

प्रेम ही जीवन है, प्रेम ही शक्ति है, प्रेम ही सार है, प्रेम ही में जीवन का सुन्दर स्वरूप निखरता है। इसी कारण पं० रामनरेश त्रिपाठी 'मिलन' में लिखते हैं—

गन्ध-विहीन, कुसुम है जैसे चन्द्र-चन्द्रकाहीन।

यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम विहीन ॥

त्रिपाठी जी तो प्रेम को ईश्वर का रूप देते हैं—

‘प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम रूप भगवान् ।’

प्रेम का सुन्दर, पुष्ट, प्राञ्जल रूप उनमें लगातार मिलता है। यही से छायावादी प्रेम के लिये अवर्द्ध मार्ग खोल दिया गया। परिणाम यह हुआ कि छायावाद में यही प्रेम अपना स्वरूप निखार उठा तथा वायवी और अशरीरी प्रेम की उसमें जमकर अभिव्यक्ति हुई।

आदर्शत्मक दृष्टिकोण—

इस युग के सभी कवियों की कविताओं में आदर्शत्मक दृष्टिकोण मिलता है। इस दृष्टिकोण के दो प्रकार हैं।

१. मानव

२. नारी

‘साकेत’, ‘प्रिय-प्रवास’ आदि महाकाव्यों में मानवी-आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है। कृष्ण समाज-मुद्धारक, लोक-रक्षक, लोक-रजक एवं लोकोपकारी बनकर आते हैं। दूसरी ओर राधा लोक-सेविका, देश-प्रेम परायणा, परोपकारनिस्ता, सेवा एवं विश्व-कल्याण की भावना में युक्त है। ‘साकेत’ की सीता भी ‘मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया’ कहकर आदर्श की रक्षा करती है। रामनरेश त्रिपाठी के तीनों खण्डकाव्य—मिलन, पथिक, स्वप्न में यही आदर्श रहा है। ‘पथिक’ का तो आदर्श ही गाँधीवाद की प्रेरणा के साथ जनता का हित करना है। अपने अन्तिम खण्डकाव्य ‘स्वप्न’ में ‘सुमना’ से युद्ध दिखाकर भी नारी-आदर्श की वहाँ रक्षा की है। इस युग में राष्ट्र कवि गुप्त जी की नारी-भावना भी सर्वाधिक सजग रही है। इसी कारण वे व्यथित हो जाते हैं—

अबला जीवन हाथ तुम्हारी यही कहानी।

आँचल में हैं दूध और आँखों में पानी ॥^१

लेकिन मानिनी यशोधरा अन्त तक अपने आदर्श की रक्षा करती है, कर्त्तव्य पालन भी। साकेत की नायिका उर्मिला विरह में डकराती अवश्य है, लेकिन अपने लोकादर्श को वह एक क्षण भी नहीं भूलती।

काव्य रूप—

इस युग में प्रबन्ध तथा मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ की गईं। महाकाव्य एवं खण्डकाव्य की रचना में इस युग के कवियों को अधिक सफलता मिली। साकेत, कृष्णायन,

प्रियप्रवास, वैदेही-वनवास, रामचरित-चिन्तामणि इस युग के अमर महाकाव्य है, और पचवटी, जयद्रथ-वध, वन-वैभव, बकसहार सिद्धराज, कुणलगीत, नहुस, प० रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' मिलन, स्वप्न' जगन्नाथ दास रत्नाकार का 'गगावतरण', सियाराम शरण गुप्त का 'मौर्य-विजय, अनाथ, आत्मोत्सर्ग और उन्मुक्त' खण्डकाव्यों के अच्छे उदाहरण हैं। एक नया काव्य-रूप आख्यानक गीति (Ballads) भी आया, जिसका सर्वश्रेष्ठ रूप मुभद्रा कृमागी चौहान की 'झाँसी की रानी' प्रस्तुत करती है। यह हिन्दी कविता में नवीन प्रगीतो का भी अवतरण-काल था। इस काल के कवियों ने दूसरी ओर मात्रिक तथा वार्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का सफलता से प्रयोग किया। नवरसों में से वीर तथा कृष्ण-रस को विशेष स्थान प्राप्त रहा। इस प्रकार काव्य-रूप एवं रस-विधान भी बहुत गतिशील रहा।

द्विवेदी-युग की कविता पर इतिवृत्तात्मकता, नैतिकता, स्थूलता, उपदेशात्मकता, शुष्कता, नीरसता का आरोप लगाया जाता है। वस्तव में आरम्भिक काल में यह बात अवश्य पाई जाती रही है एवं धीरे-धीरे इसका निराकरण ही होता गया। यहाँ तक स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह छायावाद का जन्म है। उसके भी कुछ लक्षण इस काल में स्पष्ट रूप से गुप्त जी, चतुर्वेदी जी, त्रिपाठी में प्रकट हो गये थे।

कविता का निरन्तर परिष्करण ही होता गया और युग के अन्तिम चरण तक वह ध्वन्यात्मकता, भावमयता और सरसता की भूमि पर आ गई थी, जैसा कि एक उदाहरण से स्पष्ट है—

वजुल मजुल सदा सुसज्जित मजित छदन विसर से।

अलिकुल आकुल वकुल मकुल सकुल व्याकुल नभचर से ॥^१

त्रिपाठी जी की यह प्रौढ़ता अलकारों के क्षेत्र में भी पहुँची। नये उपमान उन्होंने अपनाये—

कृष्ण-सी मृदु, धर्म गीत-सी,

शुद्ध कल्पना-सी सुख सकुल।

शुभ्र ऊषा-सी दिव्य हास-सी,

रूप-सिन्धु-सी मणि-सी मन्जुल ॥^२

इस प्रकार विषयों की विविधता, भावों के उत्कर्ष एवं नवीनता के कारण इस युग की कविता साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। प्रकाशचन्द्र गुप्त का यह कथन सत्य ही है कि—

“द्विवेदी-युग तैयारी का युग था। भारतेन्दु-युग ने भूमि गोड़ी और बीज वपन

१. पथिक, पृ० १४—प० रामनरेश त्रिपाठी

२. स्वप्न, पृ० ३४

किया । द्विवेदी-युग में अनेक तरुतलाओं से उपवन लहलहाने लगा था ।”^१

द्विवेदी-युग का अपना एक विशिष्ट गौरव है । इस काल में समाज-सुधार एवं देशभक्ति का भाव प्रबल रहा है । इस विशेषता का इस युग में समस्त कवियों पर प्रभाव है ।

उपसंहार

आधुनिक खड़ीबोली कविता के क्षेत्र में भाषा के सस्कारो, निर्माताओ एव कला-विधायकों में कविवर त्रिपाठी जी का नाम अत्यधिक सम्मान एव श्रद्धा के साथ स्मरण किया जाता है। द्विवेदी-युग में स्वनाम-धन्य आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने दिव्याभा से आलोकित व्यक्तित्व के कारण, हिन्दी सेवी कवियों का एक कवि-मण्डल बनाया था। राष्ट्र-कवि गुप्त जी, हरिऔध जी, श्री रामचरित्र उपाध्याय, प० लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि कवियों को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने द्विवेदी-मंडल का कवि कहा है। दूसरी ओर स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कवि स्वतंत्र चिन्तन, उन्मुक्त शैली, बंधनों की परिखा से दूर हो साहित्याकाश में स्वच्छन्द विचरण कर रहे थे, जिनमें नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', राय देवी प्रसादपूर्ण, दीन एव त्रिपाठी जी उल्लेखनीय है। स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा में त्रिपाठी जी सर्वाधिक स्मरणीय हैं। डॉ० श्रीकृष्ण लाल ने इन कवियों को ही "स्वच्छन्दतावाद के प्रथम उत्थानकाल का जन्म-दाता" होने का गौरव प्रदान किया है। छायावाद की स्वच्छन्दता-वादी पृष्ठभूमि को छायावाद के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद, कल्पनालोक के कवि पन्त, क्रान्तिकारी व्यक्तित्व से मण्डित निराला एव सवेदना की महारानी महादेवी के लिए तैयार किया था।

त्रिपाठी जी का कृतित्व बड़ा अद्भुत है। उनकी प्रतिभा ने साहित्य के लग-भग सभी अंगों का स्पर्श किया। लेकिन उनका सबसे प्रख्यात रूप, कवि रूप ही है। कविता के क्षेत्र में उन्हें अद्भुत सफलता मिली है। उनके खण्डकाव्य तो जनता को प्रेरणा देने वाले प्रकाशस्तम्भ थे एव उनकी स्फुट कविताएँ शौर्य में जागृति का संचार करने वाली थीं। मनमोहिनी प्रकृति की गोद में बसा हुआ भारतवर्ष उन्हें अतिशय प्रिय है। अपने देश की गौरव-गरिमा का गान वे मुक्त कंठ से करते हैं। युगानुकूल उनकी चेतना सदैव प्रबुद्ध रही और अपनी इसी सजगता के कारण उनकी नारी-भावना बड़ी उदार है। उनकी नारी आधुनिक वीरांगना है जो देश, जाति के कलंक को हटाने के लिए सब कुछ करती है। वे अपने कायर पतियों का परित्याग करने में हिचकिचाती नहीं, साथ ही कायरता धारण कर घर में बैठी नहीं रहती,

अपितु तलवार धारण कर रणक्षेत्र में जाती रहती है एवं वहाँ प्रलय उपस्थित करती हैं। युद्ध में विजय-पताका फहराकर वे हमारे हृदय में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान बना लेती हैं। श्री मैथिली शरण गुप्त की नारी-भावना में सहानुभूति-तत्त्व तथा करुणा की प्रधानता है। वे या तो एक वियोग में डकराती रहती हैं या 'मानिनी' बनकर कुल-मर्यादा का ही पालन करती हैं। रणक्षेत्र में जाकर शौर्य नहीं दिखाती हैं। साकेत में उमिला की रणसज्जा बड़ी उत्साहवर्द्धक है; किन्तु रणप्रयाण गुप्त जी उसे नहीं करने देते हैं। वह राजरानी तडप कर ही रह जाती है। त्रिपाठी जी के नारी-पात्र कायर पति का अनुसरण नहीं करते तथा पति की कायरता उन्हें बड़ा दुःख देती है। वे क्षत्राणी का रूप धारण कर युद्ध करती हैं तथा विजय प्राप्त करके ही उन्हें सन्तोष होता है। हाँ, सभी नारियाँ, अपने पतियों के प्रति बड़ी सम्मान की भावना रखती हैं। वे नारी-जाति पर लगे कलक को हटाने के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। उनका स्थान भारतीय वीरागनाओं में आता है। पति के लिए प्राणों का त्याग करना उन्हें खूब आता है। पथिक-प्रिया प्राण त्याग करती है। विजया, विजय-पताका फहराती है, सुमना पतिपरायण आदर्श नारी है।

त्रिपाठी जी का स्वच्छन्दतावादी कवियों में स्थान अन्यतम है। कुछ त्रिपाठी जी की अप्रकाशित रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें हास्य-व्यंग्य के मार्मिक स्थल हैं, प्राचीन गौरव एवं जन्मभूमि-वन्दना है। अपने तीनों खण्डकाव्यों में उनका आसन वर्त्तमान युग ही है। वर्त्तमान जीवन को गतिशील बनाना ही उनके काव्यों का उद्देश्य है। 'मिलन' वास्तव में राष्ट्रीय धारा की अद्भुत कृति है। इस कृति का शिल्प तो अनगढ़ अवश्य है, परन्तु, भावों का वेग इतना है कि पाठक पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। उनकी विशेषता यहाँ स्पष्ट है कि अतीत के सपनों में अपने को न खोकर वे वर्त्तमान का निर्माण करने एवं भविष्य को गौरवपूर्ण बनाने में तत्पर रहे हैं। 'पथिक' राष्ट्रीय खण्डकाव्य धारा का अमर स्तम्भ है। 'पथिक' का कवि व्यापक मानवतावाद का पुजारी है। 'पथिक' की जनवादी कल्पना, "शासन का सब भार लिया जनता ने अपने कर में" से लगता है कि भविष्य दृष्टा एवं युग स्रष्टा कलाकार थे। सन् १९४७ का स्वप्न वे सन् १९२०-२१ में ही साकार कर चुके थे। 'स्वप्न' में कवि का भविष्य-स्वप्न अद्भुत है, जिसमें पवृत्तिमूलक भावनाओं की प्रधानता है। नारी-जागरण का सन्देश देना ही इस काव्य का उद्देश्य है। 'मानसी' में राष्ट्रीय कविताएँ एवं सरस व्यंग्य बड़े सुन्दर और मधुर हैं। विषय वैविध्य एवं जनप्रियता के कारण मानसी जनमानस में रम गई है। इन मुक्तक कविताओं में भी उनकी दृष्टि, भविष्य के स्वर्णिम दृश्यों का सत्य अवलोकन करती रही है।

त्रिपाठी जी के साहित्य का आधार व्यापक मानवतावाद है। इसी कारण से उनकी कविताओं का आधार व्यापक राष्ट्रीयता है। अपने इस विषय का प्रतिपादन

करना ही उनका लक्ष्य रहता है। उनकी कृतियों का ऐतिहासिक महत्त्व इस कारण और भी बढ़ गया है कि उसमें महामानव की पवित्र वाणी का वैभव तो है ही, सन् १९२१ ई० के असहयोग आन्दोलन का, उस समय की जनता की दयनीय दशा का एवं शासकों की बर्बरता का साकार चित्र है। भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का इतना सजीव रेखा-चित्र हिन्दी के अन्य किसी कवि ने उपस्थित नहीं कर पाया, जितना त्रिपाठी जी ने प्रस्तुत किया है। इस कारण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने त्रिपाठी जी के लिए ठीक ही कहा है कि “स्वदेश-भक्ति की जो भावना भारतेन्दु-युग से चली आती थी, उसे सुन्दर कल्पना द्वारा रमणीय एवं आकर्षक रूप त्रिपाठी ने ही प्रदान किया।”

युगावतार गाँधीजी एवं गाँधीवाद में उन्हें अपार श्रद्धा है। इस कारण उनकी ममस्न कृतियों में गाँधीवाद की सुन्दरतम अभिव्यक्ति हुई है। गाँधीवाद के पावन स्पर्श से ही उनके काव्य का उपवन लहलहाता है। कहा भी जाता है कि “गाँधीवाद यदि सुखी जीवन की कुँजी है तो पथिक उसकी सफल व्याख्या।” जीवन में रक्तपात करना उन्हें पसन्द नहीं, साथ ही वे कायरता के भी विरोधी हैं। उनके काव्यों में मानव-तत्त्व इसी कारण प्रबल है। त्रिपाठी जी का विकट देश-प्रेम गाँधी जी के सम्पर्क का ही प्रभाव है।

उनके खण्डकाव्यों का प्रेमाख्यानक धारा में अपना स्थान है। उनका प्रेम रीतिकालीन शृङ्गारिकता से एकान्त भिन्न है। उसमें मासलता एवं ऐन्द्रियता का सर्वथा अभाव है। प्रेम की पावनता का मन्त्र गुणगुनाती हुई उनकी नारियाँ, आदर्श हैं। प्रेम का यह रूप बड़ा गत्यात्मक है। दो हृदयों का मधुर मिलन, देश-प्रेम में परिणति पाता है। इस प्रकार उनका प्रेम व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख है।

दूसरी ओर खण्डकाव्य धारा में त्रिपाठी जी सदैव स्मरणीय रहेंगे। उनके खण्डकाव्यों में कथा का गठन अनुपम है। मिलन के कथा-विधान में एकाग्र स्थल पर भेदे जोड़ अवश्य लगे हैं वैसे कथा-विधान में सजगता है। कथानक में उपन्यास की रोचकता, कहानी की गत्यात्मकता तथा नाटकीयता है। उन्होंने प्राचीन इतिहास या पुराण की घिसी-पिटी कथाओं को न अपनाकर अपने तीनों काव्यों में (मिलन, पथिक, स्वप्न) काल्पनिक कथानकों का सृजन किया है। इस क्षेत्र में पहली बार नियमों की सकुचित सीमा को पार किया गया। समसामयिक युग उनका आसन था। उनकी स्वच्छन्द विचारधारा के कारण ही उनकी सृजनात्मक कल्पना ऐसे सर्वथा मौलिक एवं वैज्ञानिक कथानक की सृष्टि करती रही है, जो अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल है। किसी भी पराधीन देश को प्रेरणा प्रदान करने के लिए उनके काव्यों की कथावस्तु में शाश्वत-तत्त्व हैं।

भावाभिव्यजना में प्रभावोत्पादक क्षमता अद्भुत है। बात को इस ढंग से

उपस्थित करते हैं कि उसका मानस-पटल पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसी कारण से उनकी कृतियाँ बड़ी जनप्रिय रही हैं। भाव में सत्य को उभारने की शक्ति है। जब वे वीर, शान्त या शृंगार का वर्णन करते हैं, तो पाठक को उनकी अनुभूति के साथ तादात्म्य सहजता से हो जाता है।

प्रकृति-प्रेम कवि के प्राणों में रम चुका है। उनके खण्डकाव्यों का एक बड़ा आकर्षक उनका प्रकृति-चित्रण भी है। “मैं प्रकृति का पुजारी हूँ” कहने वाले त्रिपाठी जी के काव्य से यदि प्रकृति-वर्णन निकाल दिया जाये तो उनके तो काव्य का व्यक्तित्व ही धूमिल पड़ जाता है। उनके काव्य प्रकृति की रमणीय गोद में ही जन्मे हैं; अतः प्रकृति सहचरा ने उन्हें शान्ति प्रदान की है। प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से सुमित्रानन्दन पन्त एव त्रिपाठी जी में अन्तर इतना ही है कि पन्त जी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म चित्र भी बड़ी पटुता से उतारते हैं। वे प्रकृति के बाह्य एव अन्तः दोनों प्रकार के सौन्दर्य चित्र उतारते हैं। परन्तु त्रिपाठी जी स्थूल एव बाह्य वर्णन ही पटुता से कर पाते हैं, आन्तरिक नहीं। जहाँ पन्त जी प्रकृति को एक दार्शनिक एव रहस्यवादी दृष्टि से देखते हैं, वहाँ त्रिपाठी जी प्रकृति के भक्त एवं पुजारी हैं और उसके बाह्य सौन्दर्य की ओर आकृष्ट रहते हैं। यह स्मरणीय है कि द्विवेदी-युग के कवियों में उनका प्रकृति-चित्रण सर्वाधिक समर्थ है। त्रिपाठी जी प्रकृति के सौन्दर्य को यह अवसर देते हैं कि वह उनके व्यक्तित्व को प्रफुल्लित एव अनुरंजित करे।

राष्ट्रीय-पक्ष में त्रिपाठी जी की तुलना मैथिली शरण गुप्त से ही की जा सकती है। इसका कारण स्पष्ट है कि ‘एक भारतीय आत्मा’ एवं बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’ की राष्ट्रीय भावना में चपला की चमक एव त्वरित भावना की आकस्मिक दमक है। गुप्त जी की राष्ट्रीयता में सेवेदनात्मकता, प्रवृत्ति मूलकता, प्राचीनता एव नवीनता का समन्वय है। त्रिपाठी जी प्रत्यक्ष को सर्वाधिक आदर देते हैं। उनकी भावना आने वाले बवण्डर से नहीं घबड़ाती, अपितु वह प्रलय का स्वागत करती है। उस समय भी जबकि विदेशी शासकों के प्रति कुछ भी कहना विपत्ति को निमन्त्रण देना था, वे उनका विरोध करते हुए हिचके नहीं हैं।

खड़ीबोली के शैशव-काल में उनकी अभिव्यजना का ऐतिहासिक महत्त्व है। खड़ीबोली को काव्योचित रूप देने वालों में वे स्मरणीय रहेगे। जिस समय खड़ीबोली पर कर्कशता का झूठा अभियोग लगाया जा रहा था, उस समय भी वे ही माँ भारती के ऐसे लाल थे, जो अपनी भाषा में ब्रजभाषा की-सी लावण्यमयी सुषमा एवं लोच ला रहे थे। खड़ीबोली में कविता इतनी ललित एवं मोहक हो सकती है, इसका प्रमाण भी खड़ीबोली अभिव्यजना के विकास में मैथिली शरण गुप्त जी, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, ‘एक भारतीय आत्मा’ एव त्रिपाठी जी आदि ने ही जमकर दिया है। ये कवि हिन्दी के भाग्यविधाता बनकर आये तथा खड़ीबोली के भविष्य का

स्वर्णिम पृष्ठ इन कवियों ने उस समय ही खोल दिया था। त्रिपाठी जी की भाषा में प्राञ्जलता, भास्वरता एवं प्रवाहमयता है, इसी कारण से उन्होंने ख्याति भी खूब पाई। उनकी भाषा साहित्यिक होते हुए भी जन-भाषा से दूर नहीं है। शैली में सरलता एवं स्पष्टता है। सरल और अलंकृत दोनों प्रकार की शैली का प्रयोग उन्होंने कुशलता से किया है। अलंकार भाषा पर थोपे नहीं गये, वे सहजता से आये हैं। कविता-कामिनी अलंकारों के बोझ से बोझिल कही नहीं है, उसमें प्राकृतिक अलंकरण से नवीनता है। छन्दविधान में गति, यति का ध्यान है। गाने की मधुरता के लिये कवित्त छन्द का खड़ीबोली में उन्होंने बड़ा अनुपम प्रयोग किया है। उर्दू की बहारों की तर्ज पर भी अनेक स्फुट कविताओं की रचना की है। उनकी लोकप्रिय कविता 'अन्वेषण' उर्दू छन्द में ही है। उन्होंने तुकान्त का ध्यान रखते हुए भी कोरी तुकड़ कला का बहिष्कार किया है। इस क्षेत्र में उनपर बगला का प्रभाव है। त्रिपाठी जी के अभिव्यंजना-शिल्प में छायावादी-शिल्प का आरम्भिक रूप मिलता है।

द्विवेदी-युग को त्रिपाठी जी की देन समालोचक, सम्पादक, कहानीकार, उपन्यासकार के रूप में भी अनूठी है, लेकिन उनके काव्य का ही अपना गौरव है। 'कविता-कौमुदी' के सकलन उनको अमर बना चुके हैं। बाल-साहित्य, स्त्री-साहित्य, ग्राम-साहित्य आदिके कारण उनकी सेवाओं का इतिहास में स्मरण बड़े आदर के साथ किया जायेगा।

उनकी काव्य-प्रतिभा, लगन, अद्यवसाय, सेवा, त्याग एवं करुणा के कारण उनका साहित्यिक व्यक्तित्व अमर है, अमर रहेगा। उनके लिए यही कहना उचित है कि वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी कवि हैं।

सहायक ग्रन्थों की सूची

१. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास
२. प० कृष्ण शंकर शुक्ल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास
३. डॉ० श्रोत्रेण लाल—आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास
४. बाबू गुलाब राय—हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास
५. डॉ० उदयभानु सिंह—महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
६. डॉ० सावित्री सिन्हा—आधुनिक साहित्य का इतिहास
७. प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोश भाग—१
८. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—आधुनिक साहित्य
९. श्री रामबहोरी शुक्ल और भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास
१०. अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध—हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास
११. डॉ० श्याम सुन्दर दास—हिन्दी भाषा और साहित्य
१२. डॉ० शम्भूनाथ सिंह—छायावाद युग
१३. दीनानाथ शरण—छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन
१४. आचार्य नगेन्द्र—विचार और विश्लेषण
१५. आचार्य नगेन्द्र—हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ
१६. डॉ० रामचन्द्र मिश्र—श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य
१७. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक—क्षेमचन्द्र सुमन—आधुनिक हिन्दी साहित्य
१८. डॉ० किरण कुमारी गुप्ता—हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण
१९. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी—कवि और काव्य
२०. डॉ० रघुवंश—काव्य में प्रकृति-चित्रण
२१. प्रो० श्याम कान्त वर्मा—कवि-समीक्षा
२२. डॉ० रामेश्वर दयाल खण्डेलवाल—आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य
२३. डॉ० आशा गुप्ता—खड़ी बोली काव्य में अभिव्यञ्जना
२४. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी—रसज्ञ-रजन

२५. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—अशोक के फूल

२६. सुमित्रानन्दन पंत—पल्लव (भूमिका)

२७. प० रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्नों के चित्र

कविता कौमुदी प्रथम भाग

” ” द्वितीय ”

” ” तृतीय ”

” ” चतुर्थ ”

” ” पंचम ”

” ” षष्ठम् ”

” ” सप्तम् ”

ग्राम साहित्य (पाँच भाग)

मिलन

पथिक

स्वप्न

मानसी

फुटकल कविताएँ ।

२८. डॉ० नगेन्द्र—सियाराम शरण गुप्त

२९. ” विचार और विवेचन

३०. प्रो० वामुदेव—विचार और निष्कर्ष

३१. रामदीन गुप्त—प्रेमचन्द और गाँधीवाद

३२. पद्मसिंह शर्मा ‘कमलेश’—मैं इन से मिला

३३. सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० रामकुमार वर्मा—आधुनिक काव्य

३४. जयशंकर प्रसाद—कामायनी

३५. मधुकर शास्त्री—पथिक काव्यम्

३६. माखनलाल चतुर्वेदी—(कविताएँ)

३७. मैथिली शरण गुप्त—पंचवटी

३८. डॉ० ओमप्रकाश—आलोचना की ओर

३९. रामधारी सिंह दिनकर—कवि और काव्य

४०. डॉ० प्रेम नारायण टण्डन—द्विवेदी मोमासा

४१. डॉ० लक्ष्मी सागर वाष्ण्य—आधुनिक हिन्दी साहित्य

४२. कालिदास—अभिज्ञान शाकुन्तलम्

४३. प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—वांगमय विमर्श

४४. जयशंकर प्रसाद—चन्द्रगुप्त

४५. पं० लक्ष्मी नारायण मिश्र—सिद्धर की होली
४६. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि (प्रथम भाग)
४७. विश्वम्भर मानव—हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद और उसके प्रवर्तक
४८. जयशंकर प्रसाद—काव्य-कला और अन्य निबन्ध
४९. श्री सद्गुरुशरण अवस्थी—रहस्यवाद और हिन्दी में उसका स्वरूप
५०. खड़ीबोली आन्दोलन—अयोध्या प्रसाद खत्री
५१. डॉ० ईश्वरी प्रसाद—भारत का इतिहास भाग (२)
५२. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी—हिन्दी भाषा
५३. बाबू गुलाब राय—हिन्दी काव्य विमर्श
५४. पं० श्यामनारायण पाण्डेय—हल्दीघाटी
५५. प्रेमचन्द—रंगभूमि
५६. रामधारी सिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय
५७. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—मध्ययुगीन धर्म साधना
५८. श्री कन्हैयालाल वर्मा—भारतीय राजनीति और शासन-पद्धति
५९. दादा धर्माधिकारी—सर्वोदन दर्शन
६०. श्री जैनेन्द्र कुमार—अकाल पुरुष गांधी
६१. डॉ० घीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा का विकास

पत्र-पत्रिकाएँ

१. आलोचना इतिहास विशेषांक—१९५२—सम्पादक शिवदानसिंह चौहान
२. आलोचना—१९५६—सम्पादक—नन्ददुलारे वाजपेयी
३. आजकल—जुलाई-१९६२
४. सरस्वती अंक—१९५२-१९५६
५. नई धारा—जून १९६२, पृ० ३७
६. हिन्दीस्तान—गुरुवार, ता० ६ अप्रैल, सन् १९६१ ई०
७. आज
८. सम्मेलन पत्रिका ।

शास्त्रीय-आधार

१. दण्डी—काव्यादर्श
२. आनन्द बर्धन—छवन्धालोक

३. राजशेखर—काव्य मीमांसा
 ४. मम्मट—काव्य प्रकाश
 ५. विश्वनाथ—साहित्य-दर्पण
 ६. जगन्नाथ—रस-गंगाधर
 ७. हरिऔध—रस कलश
 ८. रामचन्द्र शुक्ल—चिन्तामणि
 ९. श्यामसुन्दर दास—साहित्यालोचन
 १०. डॉ० नगेन्द्र—रौतिकाव्य की भूमिका
 ११. बाबू गुलाब राय १. काव्य के रूप २. सिद्धान्त और अध्ययन
 १२. भगीरथ मिश्र—काव्य-शास्त्र
 १३. लक्ष्मी नारायण सुधांशु—काव्य में अभिव्यञ्जनावेद
 १४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—वाङ्मय विमर्श ।
-

ENGLISH BOOKS

- | | | |
|---------------------------|---|--|
| 1. Mathew Arnold | — | The study of Poetry in Criticism.
(Second Series) |
| 2. R: N. Bose | — | Gandhian technique and tradition
in Industrial Relation |
| 3. I. A. Richards | — | Principle of Literary Criticism |
| 4. Richards | — | Practical Criticism. |
| 5. Groce | — | Aesthetic |
| 6. Bhagwandas | — | The Science of Emotions |
| 7. S. K. De | — | Sanskrit Poetics |
| 8. Kane | — | Introduction to Sahitya Darpana
in Sanskrit |
| 9. A. Sankaran | — | Some Aspects of Literary
Criticism in Sanskrit |
| 10. P. S. Patter | — | Modern Review |
| 11. Gandhiji | — | Building New India |
| 12. Mathew Arnold | — | The function of the Criticism at
the present time |
| 13. Hyden E. Rollings | — | The Renaissance in England |
| 14. V. A. Smith | — | Oxford History of India |
| 15. R. C. Dutt | — | India in the Victorian age |
| 16. Lajpat Rai | — | Young India |
| 17. Pt. Jawahar Lal Nehru | — | Discovery of India |
| 18. Sitaramayya | — | History of Congress |
| 19. Pantambaker | — | Foundation of Indian Civics |
| 20. Farguhar | — | Modern Religious Movement
in India |
| 21. A. G. Mazumadar | — | Indian National Evolution |
-

प्रत्येक पुस्तकालय के लिए संग्रहणीय साहित्य

पत के दो सौ पत्र	डॉ० हरिवंश राय बच्चन १०००
मैथिली शरण गुप्त के विरह-काव्य	विनोद धर्म १०००
प० रामनरेश त्रिपाठी का काव्य	डॉ० पालीवाल १६००
हिन्दी उपन्यास कला	डॉ० रामलखन शुक्ल १०००
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यासों का	
उद्भव और विकास	डॉ० वेचन २५००
काश्मीरी भाषा और साहित्य	डॉ० रैना २०००
रामचरित्र मानस की पाश्चात्य समीक्षा	मुखवीर सिंह १०००
विद्युत्पति और सूर काव्य में राधा	श्रीमती कृष्णा शर्मा १०००
आधुनिक हिन्दी गीत काव्य	
त्रिषय और शैली	डॉ० जीवनप्रकाश जोशी ३०००
बच्चन पत्रों में	„ १०००
बच्चन व्यक्तित्व और कृतित्व	„ २०००
नीति सूक्ति कोश	डॉ० रामस्वरूप ३०००
भारत और विश्व	डॉ० राधाकृष्णन् १५००
भारत और चीन	„ ७००
भारत की अन्तरात्मा	„ ६००
स्वतन्त्रता और संस्कृति	„ ६००
युवकों से	„ १०००
महाभारत का आधुनिक हिन्दी	
प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव	डॉ० विनय २५००
आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास	डॉ० वेचन २५००
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी साहित्य	„ १५००
व्यक्ति और व्यवित्तत्व	सहृद ८००
गोविन्द रामायण	डॉ० विनोद कुमार ८००

सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली-७

